Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार

7.3
SCANNED
आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ग्रन्यतम विद्वान तथा
ते और उनकी धर्म-
ता द्वारा लिखित यह
एक ऐसा प्रयास है,
की ऐतिहासिक पृष्ठ-
त करता है। इसमें
सेन, बैजू और बख्शू
पय में सप्रमाण और
तथा प्रायः ऐसे चार
र्ग है, जिनके विषय में
इतिहास-ग्रंथों से ली
ष्ट संगीत के इतिहास

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

K. C. GANGRADE
D. Mus.
Reader,
Faculty of Performing Arts
BHU, VARANASI-5

अ: 1/21
आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अ: 1/21
आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतमिलाप, करौंदी
वाराणसी-5

खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

K C Gangoli

खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भरतनिधि, कचौड़ी
वाराणसी-5

सुलोचना यजुर्वेदी
आचार्य बृहस्पति

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली • पटना

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मूल्य : रु० २०·००

© सुलोचना यजुर्वेदी

प्रथम संस्करण : १९७६

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०,
८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२

मुद्रक : सोहन प्रिंटिंग सर्विस
सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ॐ नमो नाद ब्रह्मणे

प्रास्ताविक निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक उन प्रश्नों का समाधान ढूंढने का एक विनम्र प्रयत्न है, जो संगीतज्ञों का इतिहास जानने के इच्छुक जिज्ञासुग्रों के मन में निरन्तर उठते रहते हैं। अमीर ख़ुसरो, बैजू, तानसेन, गोपाल इत्यादि महाविभूतियों के नाम से संगीत न जाननेवाले भी परिचित हैं और उनसे सम्बद्ध अनेक किंवदन्तियों से भी। इन महापुरुषों और इनके समवर्ती अन्य कलाकारों से सम्बद्ध तथ्यों को एकत्र सँजोने का सम्भवतः यह पहला प्रयत्न है।

राजनीतिक दृष्टि से जिन्होंने इतिहास लिखा है, उन्होंने संगीतज्ञों को राजसभाओं का आभूषण मानकर अपना काम चलाया और तानसेन जैसे कलावन्त की चर्चा मात्र कर दी। विभिन्न युगों में अनेक करवटें लेती हुई सांगीतिक प्रवृत्तियों और उनके कारणों पर लेखनी उठाने की आवश्यकता उन्हें न थी। कलाकारों के आश्रयदाता सूफ़ी सन्तों के विषय में उनके जिन भक्तों ने लिखा, उन्होंने भी अपने पूज्य पुरुषों के माहात्म्य का प्रचारात्मक वर्णन तो किया, परन्तु उनके परम कृपापात्र 'क़व्वालों' की चर्चा केवल आपाततः की। भक्तिपरक संगीत को ईश्वरप्राप्ति का साधन माननेवाली चिश्ती-परम्परा के भक्त लेखकों ने भी विभिन्न खानक़ाहों से सम्बद्ध क़व्वालों का इतिहास न लिखा और न जाने क्यों इस पवित्र कार्य के लिए किसी सूफ़ी सन्त ने भी अपने किसी 'मुरीद' को प्रेरणा न दी।

अस्तु, वर्तमान परिस्थिति में इतिहासों और सूफ़ियों के इतिवृत्तों में आयी हुई ये आनुषंगिक चर्चाएं ही संगीतज्ञों के इतिहास-का मेरुदण्ड बन सकती हैं। इस दिशा में सर्वांगीण प्रयत्न सामूहिक रूप से ही सम्भव है, किसी एक व्यक्ति के वश की यह बात नहीं।

प्रस्तुत पुस्तक इस दिशा में एक श्रीगणेश है, यह आशा की जानी चाहिए कि अन्य सहयोगी इस पवित्र कार्य को क्षेत्रीय स्तर पर उठायेंगे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दो

अमीर खुसरो के समकालीन जैन आचार्य 'सुधाकलश' की श्रमण-परम्परा का क्षेत्र गुजरात, सौराष्ट्र, राजस्थान और वर्तमान मध्यप्रदेश का कुछ भाग था, वे अपने ग्रन्थ 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' में कहते हैं : "इस युग में भूतल पर प्रबन्धकार नहीं हैं और न प्रबन्धकों के गानेवाले हैं।"[1] "इस युग में नर्तक मूर्ख हैं, वे विद्वान् साधक नहीं हैं।"[2]

खुसरो के युग में भारतीय संगीत की यह दयनीय स्थिति महमूद ग़ज़नवी के आक्रमणों के बाद की राजनीतिक अस्थिरता का परिणाम थी।

भारतीय संगीत का यह सौभाग्य था कि नवीं शती ई० में शैख जुनैद बग़दादी ने ईश्वरीय प्रेम में मग्न होकर गाना, बजाना, नाचना और भाव-विह्वल होना आवश्यक बताया, क्योंकि उनसे पूर्व ८१९ ई० में मंसूर को फाँसी दे दी गयी थी, जिसने 'अनलहक़' (अहं ब्रह्मास्मि) का नारा लगाया था और जो भारत में रह चुका था। इसी शताब्दी में सलमान पारसी ने ईश्वर को प्रेम या भक्ति का वशवर्ती बताया तो इसी शताब्दी के बायज़ीद बुस्तामी ने अपने देशवासियों को अद्वैतवाद का सन्देश दिया, फलतः बारहवीं शती ई० के अन्त में शैख मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी जैसे सूफ़ी प्रचारक ने भारतीय कीर्तन-पद्धति को निरखा, परखा और भारतीय बोली में गीतों की रचना कराकर भारतीय श्रोताओं के समक्ष भारतीय धुनों में प्रस्तुत किया।

अपने श्रद्धेय गुरु शैख निज़ामुद्दीन चिश्ती के निर्देशन में अमीर खुसरो ने सूफ़ी संगीत को भारतीय जनता के हृदय के अत्यन्त निकट ला दिया, वे पूर्ण-रूपेण भारतीय थे और उन्हें अपने भारतीय होने पर गर्व था। भले ही वे भारतीय संगीतशास्त्र से प्रगाढ़ रूप में परिचित नहीं, परन्तु वे भारत की आत्मा से सुपरिचित थे।

अलाउद्दीन खिलजी के युग में गुजरात, मालवा, बंगाल, अवध तथा देवगिरि के कलाकारों का जमघट दिल्ली में हो गया था, भले ही अलाउद्दीन खिलजी विद्याव्यसनी व्यक्ति न रहा हो। चतुर्दण्डी सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोपाल नायक ने भी एक गीत में अलाउद्दीन खिलजी के प्रताप का वर्णन किया है।[3] इन्हीं सब कारणों से इस पुस्तक में 'अमीर खुसरो' की जीवनी सर्वप्रथम

---

१. "प्रबन्धबन्धकर्तारो विरला भूतलेऽधुना।
तद्गायनाश्च न प्रायो·········॥
संगीतोपनिषत्सारोद्धार, प्रथम अध्याय, श्लोक ३७

२. "कालेऽस्मिन् नर्तका मूर्खा विद्वांसस्साधका न हि।"
वही, षष्ठ अध्याय, श्लोक १२९

३. संगीत-चिन्तामणि, प्रथम संस्करण, पृ० ३१८, संगीत-कार्यालय, हाथरस

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रखी गयी है।

ख़ुसरो ने ऐसी ग़ज़लें कहीं, जिनका वाच्यार्थ तो लौकिक शृंगारपरक था, परन्तु व्यंग्यार्थ भक्तिपरक। गीतों की यह विधा भारत के लिए नयी न थी। खुसरो से पूर्ववर्ती, बारहवीं शती के ग्रन्थकार, महाराज सोमेश्वर ने अपने ग्रन्थ 'मानसोल्लास' में इस प्रकार के गीतों का वर्णन किया है, जिनमें नियोजित पदों का वाच्यार्थ तो सांसारिक सुख का बोधक हो, परन्तु व्यंग्यार्थ परमार्थबोधक और अध्यात्मपरक हो।[४] ग़ज़लों के अनेक छन्द भारतीय छन्दःशास्त्र के लिए नवीन न थे और खुसरो भारतीय ब्राह्मणों के शिष्य थे। वृन्द के द्वारा प्रस्तुत यही ग़ज़लें क़व्वाली कहलायीं।

शासन 'काल' का कारण होता है। पन्द्रहवीं शती के अन्त और सोलहवीं शती के आरम्भ में ग्वालियर के प्रतापी नरेश मानसिंह तोमर ने व्रजभाषा के माध्यम से ध्रुवपद का पुनरुद्धार किया। लोकभाषा पुनः राजसभा में प्रतिष्ठित हुई, बैजू तथा उनके पट्टशिष्य बख़्शू इस पुनीत कार्य में ग्वालियर-नरेश के सहायक थे, अतः इन दोनों पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ भी इस पुस्तक में हैं।

अकबर के दरबार में कण्ठाभरणवाणीविलास 'तानसेन' ने मानसिंह तोमर की परम्परा का ऐसा सफल और समर्थ नेतृत्व किया कि जहाँगीर और शाहजहाँ के दरबार में भी यह परम्परा मूर्धन्य स्थान पर रही, वृन्दावनवासी स्वामी हरिदासजी इस परम्परा के विरक्त सन्त थे। इसीलिए इस पुस्तक में हरिदासजी और तानसेन पर विस्तृत विचार किया गया है। इसी युग के गोपाल 'गुजराती' पर संक्षिप्त टिप्पणी भी है।

इसी युग में कर्नाटक संगीत के पितामह पुरन्दरदास ने उत्तर भारत से प्रभावित होकर कर्नाटक पद्धति के राग-शिक्षण में भैरव ठाठ को आधार बनाया, इसी एकात्मकता को दिखाने के लिए पुरन्दरदास पर भी विस्तृत टिप्पणी यथास्थान दी गयी है।

तानसेन के पुत्र विलास खाँ के दामाद लाल खाँ पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ मुग़ल-दरबार में तानसेन के उत्तराधिकारियों के महत्त्व का दिग्दर्शनमात्र हैं। इसी युग के दाक्षिणात्य कलाकार क्षेत्रज्ञ का परिचय उस समय के तंजौर की परिस्थिति का परिचय कराने के लिए है।

औरंगज़ेब के युग के कलाकारों का परिचय परिशिष्ट 'आ' के अन्तर्गत है। मुहम्मदशाह रंगीले के दरबारी गायक सदारंग पर एक स्वतन्त्र टिप्पणी है,

---

४. गूढार्थैः परमार्थैश्च संसारसुखमुख्यकैः।
पदैर्नियोजितं गीतं साध्यात्म योगिवल्लभम्॥
मानसोल्लास, तृतीय भाग, अध्याय १६, श्लोक १०६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अवशिष्ट कलाकारों का परिचय परिशिष्ट 'आ' के अन्तर्गत दिया गया है।

उन्नीसवीं शती ई० में जिन कलाकारों का स्वर्गवास हुआ अथवा जिन कलाकारों का जन्म उन्नीसवीं शती ई० में हुआ और स्वर्गवास बीसवीं सदी में, उनमें से कुछ कलाकारों की जीवनियाँ भी इस पुस्तक में सम्मिलित की गयी हैं। अनेक कारणों से कुछ जीवनियाँ इस संस्करण में नहीं दी जा सकीं। स्व० उस्ताद रहीमुद्दीन खाँ, स्वर्गीय पं० विनायकराव पटवर्द्धन और स्व० अहमदजान खाँ थिरकुव्वा उस समय दिवंगत नहीं हुए थे, जब यह पुस्तक लिखी जा चुकी थी।

परिशिष्ट 'अ' में कलावन्त, ढारी, दफ़ज़न, नटवा, कीर्तनिया, हुड़किया, क़व्वाल, ठुमरी-गायक, टप्पा-गायक, कवित्त-गायक, नक़्कारावादक, क़ानून-वादक, गिटारवादक ग़िचक़वादक, कुब्सवादक, बरबतवादक, क़रनावादक, तम्बूरवादक, नै-वादक, चंगवादक, ढोलवादक, पखावजवादक, रबाबवादक, बीनवादक, सरोदवादक, सारंगीवादक, सितारवादक और तबलावादक वर्ग में आनेवाले विभिन्न युगीन कलाकारों की चर्चा है, नवीन चिन्तन करनेवाले वर्ग के कलाकारों की ओर भी इस परिशिष्ट में संकेत किया गया है।

मतभेद का अर्थ श्रद्धा या सम्मान का अभाव नहीं होता। श्रद्धेय भातखण्डेजी की चर्चा रामपुर-परम्परा के गुणियों के अन्तर्गत की गयी है, वे केवल पुस्तक-पाठी नहीं थे। कला के वास्तविक आनन्द से परिचित होने पर ही व्यक्ति रागविषयक अनुसन्धान की दिशा में भातखण्डेजी के समान भगीरथ प्रयत्न कर सकता है। आज का प्रत्येक विचारक किसी-न-किसी रूप में उनका ऋणी है।

'प्रियम्वद' और 'प्रशंसाकुशल' व्यक्ति राजसभा में वृत्ति प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु शोधकर्ता में नीरक्षीरविवेक होना चाहिए, अन्यथा तथ्यों तक पहुँचने की आशा व्यर्थ है। सत्य के अनुसन्धान की उत्कट इच्छा किंवदन्तियों और काल्पनिक अनुश्रुतियों का शवच्छेद करने के लिए विवश होती है, इस प्रवृत्ति का कारण किसी भी व्यक्ति, सम्प्रदाय अथवा परम्परा की उपेक्षा या अवमानना का संकल्प कदापि नहीं। जानबूझकर असत्य से चिपटा भी तो नहीं रहा जा सकता।

खुसरो, तानसेन और सदारंग दरबार के भी लाड़ले थे और सूफियों की आँख के तारे भी। इस परिस्थिति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए जीवनियों से पूर्व कुछ महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ दी गयी हैं।

आचार्य सदैव संक्षेपप्रिय होते हैं। इस पुस्तक के मूल रूप में केवल संक्षिप्त जीवनियाँ थीं, परन्तु कुमारी सरयू कालेकर एम० ए०, सीनियर लेक्चरर, गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वीमेन, चण्डीगढ़, के सुझाव पर इस पुस्तक में ऐतिहासिक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पृष्ठभूमि से सम्बद्ध सामग्री, और दो परिशिष्ट तो सम्मिलित किये ही गये, जीवनियों में पर्याप्त परिवर्धन भी किया गया। कुमारी कालेकर के इन बहुमूल्य सुझावों से प्रस्तुत पुस्तक जिज्ञासुओं, संगीत के प्राध्यापकों और उच्चतम कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए अधिक उपादेय हो गयी है।

प्रत्येक कार्य में त्रुटियाँ मानव की अल्पज्ञता का सहज परिणाम होती हैं, प्रस्तुत पुस्तक में भी वे होंगी; आशा है, सहृदय पाठक उन त्रुटियों के विषय में उदारतापूर्वक क्षमा करेंगे।

इस कृति के प्रकाशन का श्रेय 'राजकमल प्रकाशन' को है, जिसके प्रति आभार प्रकट करना हमारा पुनीत कर्तव्य है।

हमारा विश्वास है कि हमारे इस प्रयत्न से उन दिवंगत विभूतियों का वास्तविक तर्पण होगा, जिनकी चर्चा इसमें है।

प्रस्तुत पुस्तक कृपालु पाठकों के करकमलों में सादर समर्पित है।

दौलतराम-कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
दीपमालिका, २२.१०.'७६

सुलोचना यजुर्वेदी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

विषय-क्रम

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय संगीत में चिश्ती-परम्परा के सूफ़ियों का योगदान, पृ० ६,—दास-वंश का अभ्युदय, अन्त और संगीत, पृ० १८,—बलबन, उसके उत्तराधिकारी, सूफ़ी और संगीत, पृ० २२,—खिलजी-वंश, सूफ़ी और संगीत, पृ० २६,—तुग़लक़-वंश, सूफ़ी और संगीत, पृ० ३६,—बहमनी साम्राज्य, सूफ़ी और संगीत, पृ० ४६,—गुजरात में मुस्लिम-शासन, सूफ़ी और संगीत, पृ० ५३,—बंगाल में मुस्लिम-शासन, चिश्ती-परम्परा और संगीत, पृ० ५९,—जौनपुर के सुल्तान, सूफ़ी और संगीत, पृ० ६३,—मालवा में मुस्लिम-शासन, सूफ़ी और संगीत, पृ० ६५,—ग्वालियर-नरेश, सूफ़ी और संगीत, पृ० ६७,—मुग़ल-सम्राट्, सूफ़ी और संगीत, पृ० ७०।

जीवनियाँ

अमीर ख़ुसरो, पृ० ८९,—बैजू, पृ० १०१,—बख्शू, पृ० १०७,—गोपाल (गुजराती), पृ० ११०,—स्वामी हरिदासजी, पृ० ११२,—तानसेन, पृ० ११८,—लाल खाँ, पृ० १३४,—ख़ुशहाल खाँ, पृ० १३५,—नेमत खाँ 'सदारंग', पृ० १३८,—बैराम खाँ, १४२,—रजब अली खाँ बीनकार, पृ० १४३, बड़े मुहम्मद खाँ (क़व्वालबच्चे), पृ० १४४, मुबारक अली खाँ, पृ० १४६,—तानरस खाँ, पृ० १४७,—हद्दू खाँ, पृ० १४९,—घसीट खाँ हुरियारे, पृ० १५०,—इनायत हुसेन खाँ सहसवानवाले, पृ० ११५,—अल्लादिया खाँ, पृ० १५२,—भैया गनपतराव, पृ० १५५, ज़ाकिरुद्दीन खाँ और अल्लाहबन्दे खाँ, पृ० २५६, इनायत खाँ ध्रुवपद-गायक, पृ० १५६,—फ़ैयाज़ खाँ, पृ० १५८,—भास्करराव बखले, पृ० १६१,—मुश्ताक़ हुसेन खाँ, पृ० १६२, अलाउद्दीन खाँ, पृ० १६४,—हाफ़िज़ अली खाँ, पृ० १६८,—भोलानाथ भट्ट, पृ० १६९,—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, पृ० १७१,—ओंकारनाथ ठाकुर, पृ० १७३,—श्रीकृष्णनारायण रातनजनकर, पृ० १७५,—कुछ दाक्षिणात्य विभूतियाँ :—पुरन्दरदास, पृ० १७७,—त्यागराज, पृ० १८१,—क्षेत्रज्ञ, पृ० १८४, (मुहम्मदशाह रंगीले के पश्चात्, पृ० १८६), रामपुर-दरबार के कलाकार :—बहादुर हुसेन खाँ, पृ० १८९,—अमीर खाँ बीनकार, पृ० १९०,—बाक़र अली खाँ (क़व्वालबच्चे) पृ० १९०, हैदरबख़्श सारंगीवादक, पृ० १९०,—मौदू खाँ तबलावादक, पृ० १९१,—अमानीजान, जादी, झूमन, मम्मी, पृ० १९१, नवाब हैदर अली खाँ, पृ० १९१,—सआदत अली खाँ 'छम्मन साहब', पृ० १९३, विष्णु नारायण भातखण्डे, पृ० १९४।

परिशिष्ट 'अ' (कलाकारों के वर्ग)

कलावन्त, पृ० १९९,—ढारी, पृ० २००,—दफ़ज़न, पृ० २०१,—नटवा, पृ० २०२,—कीर्तनिया, पृ० २०२,—हुड़किया, पृ० २०२,—क़व्वाल और क़व्वालबच्चे, पृ० २०२,—ठुमरी-गायक, पृ० २०४,—टप्पा-गायक, पृ० २०६ कवित्त-गायक, पृ० २०७,—नक़्क़ारावादक, पृ० २४९,—नवीन चिन्तन करनेवाले कलाकार, पृ० २१०,—क़ानूनवादक, पृ० २११,—गिटारवादक, पृ० २११,—ग़िचक़वादक, पृ० २११.—क़ुब्सवादक, पृ० २११,—बरबतवादक, पृ० २१२,—क़रनावादक, पृ० २१२,—तम्बूरवादक, पृ० २१२,—नै-वादक, पृ० २१३,—चंगवादक, पृ० २१३,—ढोलवादक, पृ० २१३,—पखावजवादक, पृ० २१३,—रबाबवादक, पृ० २१३,—वीनवादक, पृ० २१४,—सरोदवादक, पृ० २१५,—सारंगीवादक, पृ० २१५,—सितारवादक, पृ० २१६,—तबलावादक, पृ० २१७।

परिशिष्ट 'आ'

प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थों में चर्चित उत्तर भारतीय कलाकारों पर सन्दर्भ-सहित टिप्पणियाँ, पृ० २१८-२५४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
आम्नाय-ग्रन्थालय, वाराणसी-5
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5

भारतीय संगीत में चिश्ती-परम्परा के सूफ़ियों का योगदान

भारत से सम्वद्ध विदेशी मुसलमानों को हम चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

(अ) वे अरब मुसलमान, जो समुद्र-मार्ग से व्यापार के लिए कराँची आते और समुद्र के किनारे-किनारे दक्षिण भारत होते हुए अन्य देशों तक अपना माल ले जाते और वहाँ से व्यापार-सामग्री लाकर, उसी मार्ग से लौट जाते थे। इस्लाम के उदय से सहस्रों वर्ष पूर्व इनके पूर्वज भी भारतीय माल को मिस्र और स्याम के द्वारा यूरोप तक पहुँचाते और वहाँ के माल को भारत, भारत के समीपवर्ती द्वीप-समूह, चीन और जापान तक ले जाते थे। ये लोग विशुद्ध व्यापारी थे और महमूद ग़ज़नवी के आक्रमण से कहीं पूर्व दक्षिण भारत में इनके उपनिवेश स्थापित हो चुके थे। भारत में इन लोगों का कोई राजनीतिक स्वार्थ न था। इन्हें व्यापारी अरब मुसलमान कहा जा सकता है।

(आ) वे अरब मुसलमान, जिन्होंने सिन्ध पर आक्रमण किया। यद्यपि हज़रत मुहम्मद के स्वर्गवास (८ जून, ६३२ ई०) के चार-पाँच वर्ष पश्चात् ही अरबों ने, द्वितीय ख़लीफ़ा के राज्य-काल (६३४-६४४ ई०) के अन्तर्गत ६३६-६३७ ई० में सिन्ध पर आक्रमण किया, परन्तु यह व्यर्थ रहा। मुहम्मद बिन क़ासिम ने ७१२ ई० में सिन्ध पर सफल आक्रमण करके दाहर का वध किया। मुहम्मद बिन क़ासिम के उत्तराधिकारियों को आक्रान्ता अरब मुसलमान कहा जा सकता है। यहाँ इतना लिखना पर्याप्त है कि विजय के पश्चात् मुहम्मद बिन क़ासिम ने ब्राह्मणों को ऊँचे पदों पर नियुक्त करके शासन-कार्य उन्हें सौंप दिया।

(इ) वे ग़ज़नवी मुसलमान, जिन्होंने लूट-पाट, हत्या और मन्दिरविनाश के प्रयोजन से धर्मोन्माद और लोभ के वशीभूत होकर भारत पर आक्रमण किये। इस वर्ग का प्रथम व्यक्ति सुबुक्तगीन है, जिसने ९८६-९८७ ई० में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रथम और ६६७ ई० में द्वितीय आक्रमण किया, भारत के कुछ प्रदेश उसके हाथ में आ गये।

इस वर्ग का दूसरा व्यक्ति सुबुक्तगीन का पुत्र महमूद ग़ज़नवी था, जिसने १००० ई० से १०२६ ईसवी तक भारत पर सत्रह बार आक्रमण किये। इस वर्ग का लक्ष्य न तो भारत में इस्लाम का प्रचार था और न शासन की स्थापना। इस वर्ग को आततायी ग़ज़नवी मुसलमान कहा जा सकता है, जिसकी सेना में इस्लाम के सिद्धान्तों से सर्वथा अपरिचित लोभी लुटेरों की भीड़ थी।

(ई) वे मुसलमान, जिनका लक्ष्य भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना और इस्लाम का प्रचार था। मुहम्मद ग़ोरी जैसे योद्धा तथा सूफ़ी प्रचारक इस वर्ग में आते हैं। इस वर्ग को शासक मुसलमान कहा जा सकता है।

समस्त मुसलमानों के मार्गदर्शक और ईश्वरीय पैग़म्बर, हज़रत मुहम्मद ने कहा था कि मुझे भारत की ओर से ईश्वरीय सुगन्ध आती है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि उन्हें 'भारत' और 'भारतीयों' से अत्यन्त प्रेम था।[1] हज़रत मुहम्मद की मृत्यु से केवल अस्सी वर्ष पश्चात् मुहम्मद बिन क़ासिम ने सिन्ध पर आक्रमण किया था, सम्भवतः उसे पैग़म्बर के शब्दों का स्मरण था, इसीलिए उसने शासन-कार्य ब्राह्मणों को सौंप दिया था। 'आततायी मुस्लिम आक्रान्ता' अरब न थे, हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के सैकड़ों वर्ष पश्चात् उनका जन्म हुआ था, लूट-पाट, हत्या और विनाश उनका लक्ष्य था, अतः उनसे मुहम्मद बिन क़ासिम जैसे व्यवहार की आशा रखना ही निरर्थक है।

हज़रत मुहम्मद के उत्तराधिकारियों के विषय में थोड़ा जान लेना उचित होगा।

हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के केवल दो वर्ष पश्चात् ३३४ ई० में उनके प्रथम 'ख़लीफ़ा' (उत्तराधिकारी) हज़रत अबूबकर का स्वर्गवास हो गया। हज़रत मुहम्मद के दामाद हज़रत अली को उनका वास्तविक उत्तराधिकारी माननेवाले 'शिया' वर्ग ने हज़रत अबूबकर को 'ख़लीफ़ा' कभी नहीं माना।

बहुमत के बल पर हज़रत उमर ने 'ख़लीफ़ा' का पद प्राप्त किया और ईरान को जीत लिया, प्रत्यक्ष रूप में फ़ारसनिवासियों ने भले ही इस्लाम अंगीकृत कर लिया, परन्तु अरबों ने उनके साथ समानता का व्यवहार न किया। उमर के एक फ़ारसनिवासी दास फ़ीरोज ने ६४४ ई० में हज़रत उमर का वध कर दिया था। 'शिया' मुसलमानों की दृष्टि में 'उमर' भी न्यायोचित ख़लीफ़ा न थे।

---

१. 'अरब और हिन्द के तअ़ल्लुक़ात', पृ० ३, ले० मौलाना सैयद सुलेमान नदवी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बहुमत के ही बल पर हज़रत उस्मान 'खलीफ़ा' हुए, परन्तु ६५६ ई० में उनका वध भी उनके महल में ही कर दिया गया। उमैयावंश के संस्थापक मुग्राविया को शंका थी कि उस्मान के वध में ग्रली का हाथ है।

उस्मान के उत्तराधिकारी ग्रली हुए, परन्तु मुग्राविया ने बलात् उनसे 'खिलाफ़त' छीन ली, ग्रली का भी वध कर दिया गया। मुग्राविया खलीफ़ा हो गया।

मुग्राविया के पुत्र मज़ीद के शासन-काल में ग्रली के पुत्र हुसेन ने स्वयं को जब ग्रली का वास्तविक उत्तराधिकारी घोषित किया, तब मज़ीद ने करबला के मैदान में हुसेन ग्रौर उनके साथियों का वध कर दिया।

इस घटना की प्रतिक्रिया में 'मुख्तार' नामक व्यक्ति ने एक दल संघटित करके इराक के एक प्रसिद्ध नगर 'कूफ़ः' पर ग्रधिकार किया ग्रौर मज़ीद के तीन सौ साथियों की हत्या करा दी।

ग्रली ग्रौर उनकी सन्तान के उत्तराधिकार का समर्थन करनेवाले समर्थक मुसलमान 'शिया' कहलाते हैं, इनकी दृष्टि में ग्रबूबकर, उमर ग्रौर उस्मान न्यायोचित खलीफ़ा न होकर ग्रली के न्यायोचित ग्रधिकार का ग्रपहरण करने वाले थे। यदि सत्य पूछा जाये तो पूर्वोक्त हत्या-परम्परा इन तीनों के समर्थकों ग्रौर विरोधियों के पारस्परिक संघर्ष का परिणाम थी। सातवीं शती ई० के ग्रन्तिम भाग में ये घटनाएँ घटित हो चुकी थीं।

ग्राठवीं शती ई० के ग्रारम्भ में मुग्राविया के वंश का शासन समाप्त हो गया। इस वंश के पाँचवें ग्रौर ग्रन्तिम खलीफ़ा हज़रत बिन यूसुफ़ ने एक लाख बीस हजार व्यक्तियों की हत्या करायी थी। इसकी मृत्यु ७१४ ई० में हुई। यह ग्ररब ग्रौर ईरान का शासक था ग्रौर इसने ६९३ ई० में 'काबे' तक को हानि पहुँचायी थी।

शासनसूत्र, मुहम्मद साहब के चाचा ग्रब्बास (मृ० ६५३ ई०) के वंशज ग्रबू मुस्लिम (हत्यावर्ष ७५६ ई०) के हाथ में ग्राया। यही ग्रब्बासिया वंश का संस्थापक था। इस वंश के शासन का ग्रन्त १२५८ ई० में हलाकू ने किया।

प्रसिद्ध ग्रब्बासी खलीफ़ा हारूँ रशीद (राज्य-काल ७८६-८०९ ई०) ग्रत्यन्त विद्याव्यसनी था। इसके काल से पूर्व ही 'बरमक' वर्ग के विद्याव्यसनी फ़ारसी मुसलमानों ने ग्रपने वर्ग के ग्रनेक व्यक्तियों को विद्याध्ययन के लिए भारत भेजा था, भारतीय विद्वानों को इराक की राजधानी बग़दाद में बुलाया, दर्शन, ग्रायुर्वेद, ज्योतिष इत्यादि विषयों के ग्रन्थों का ग्ररबी ग्रनुवाद कराया ग्रौर भारतीय ज्ञान ग्ररबों के लिए सुलभ करा दिया।

बरमक वर्ग के लोग फ़ारसनिवासी थे, इनके पूर्वज बौद्ध थे, ये लोग विश्वसनीय समझे जाते थे, शासन-कार्य में सहायक थे, परन्तु नवीं शती ई० के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आरम्भ में खलीफ़ा हारूँ रशीद ने इस वर्ग के परम विश्वसनीय अनेक व्यक्तियों की हत्या करा दी।

फ़ारसनिवासी अपने अरब शासकों से वैसे ही प्रसन्न न थे, इस क्रूर कृत्य ने उनके हृदय में क्रोध और घृणा की ज्वाला भड़का दी। अतः फ़ारसनिवासी एक अत्यन्त धर्मज्ञ और राजनीतिकुशल व्यक्ति अब्दुल्लाह बिन मैमून अल्कद्दाह ने घोषणा की कि मैं 'शिया' हूँ, अली के वंशजों का समर्थक हूँ और फ़ारस को अरबों की दासता से मुक्त करना चाहता हूँ। फलतः सभी शिया उसके पक्ष में हो गये।

उस समय तक भारतीय दर्शन-ग्रन्थ अरबी में अनूदित हो गये थे, अतः उनसे प्रभावित होकर सलमान पारसी नामक एक प्रसिद्ध शिया विचारक ने घोषित किया—'खुदा (व्यक्ति न होकर) निर्गुण है, उसे मानव केवल प्रेम द्वारा प्राप्त कर सकता है।'

सलमान पारसी के इन विचारों पर गीता के 'ज्ञानयोग' और 'भक्तियोग' का सम्मिलित प्रभाव है।

अब्दुल्लाह के राजनीतिक आन्दोलन और सलमान पारसी के दार्शनिक विद्रोह ने परस्पर एक-दूसरे का समर्थन किया। अब्दुल्लाह का देहान्त ८७४ ई० में हुआ। इस युग में बायज़ीद बुस्तामी (मृ० ८७५ ई०) ने कहा—'विविध रूपों में मैं ही परमेश्वर हूँ, मेरे अतिरिक्त और कोई दूसरा परमेश्वर नहीं। इस कारण मेरी उपासना करो।—मैं ही मदिरा, मैं ही मदिरा पिलानेवाला और मैं ही मदिरा पीनेवाला हूँ।' इन पंक्तियों में भारतीय अद्वैतवाद के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

इसी युग में शैख़ जुनैद बग़दादी (मृ० ९११ ई०) जैसे सूफ़ी सन्त हुए, जिन्होंने ईश्वरीय भक्ति में मग्न होकर गाना, बजाना, नाचना और भाव-विह्वल होना धार्मिक अनुष्ठान माना।

यद्यपि सूफ़ी लोग स्वयं को मुसलमान ही घोषित करते थे, तथापि 'मौलवियों' (शियाविरोधी विद्वानों) को सूफ़ियों के विचारों में इस्लाम के प्रति विद्रोह की गन्ध आती थी। क्योंकि मौलवियों की दृष्टि में 'खुदा' एक व्यक्ति और संसार का स्रष्टा था, इसके विपरीत सूफ़ियों की दृष्टि में निर्गुण और सर्वव्यापक था। मौलवियों की दृष्टि में ईश्वरी वाणी क़ुरआन के विधि-निषेधों के अनुसार आचरण करने से ही मानव 'हश्र' (अन्तिम न्यायदिवस) में स्वर्ग का अधिकारी हो सकता है, तो सूफ़ियों की दृष्टि में ईश्वर को प्राप्त करने अथवा ईश्वरमय हो जाने के लिए प्रेम ही पर्याप्त है। मौलवियों की दृष्टि में संगीत एक त्याज्य वस्तु है और शैख़ जुनैद जैसे सूफ़ी उसे ईश्वरप्राप्ति का साधन मानते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मौलवियों के इसी दृष्टिकोण के कारण हुसेन बिन मंसूर हल्लाज को ख़लीफ़ा हारूँ रशीद की मृत्यु से दस वर्ष पश्चात् ८१९ ई० में फाँसी दे दी गयी थी। यह भारत में रह चुका था।[1]

मौलवियों और सूफ़ियों का यह संघर्ष चलता रहा।

महमूद ग़ज़नवी के समकालीन इब्नसीना (मृ० १०३६ ई०) की दृष्टि में परमसत्ता शाश्वत और सुन्दर है, आत्माभिव्यक्ति उसकी विशेषता और प्रकृति है, वह अपना रूप सृष्टि में प्रतिबिम्बित करके देखती है। आत्माभिव्यक्ति ही प्रेम है और संसार में व्याप्त है। प्रेम 'सौन्दर्य' का आस्वादन होने के कारण पूर्ण है, क्योंकि सौन्दर्य भी पूर्ण है। प्रेम के द्वारा ही मानवात्मा 'परमात्मा' से एकत्व की अनुभूति करती है।

ग्यारहवीं शताब्दी में इब्नसीना की मृत्यु से पूर्व शैख इस्माईल नामक सूफ़ी लाहौर आकर बस गये थे। इसी शताब्दी में शैख जुनैद जैसे संगीतानुरागी सूफ़ी की परम्परा के सन्त दाता गंजबख्श (शैख अली हजूरी, मृ० १०७२-१०७९ ई० के मध्य में) लाहौर में स्वर्गवासी हो चुके थे।

सूफ़ियों के हृदय में भारत के प्रति यह अनुराग आकस्मिक नहीं था।

करबला के अमरशहीद और मुहम्मद साहब के दौहित्र हज़रत इमाम हुसेन के पुत्र हजरत जैनुल् आबिदीन की माँ सिन्ध की थीं[2], अतः अली और उनकी सन्तान के अनुयायियों का भारत के प्रति विशेष लगाव होना आश्चर्यजनक नहीं।

११८६ ई० में मुहम्मद ग़ोरी की सेनाओं के साथ शैख मुईनुद्दीन चिश्ती भारत आये। लाहौर और दिल्ली की यात्रा करते हुए वे अजमेर जाकर बसे और उन्होंने एक शिया मुसलमान की पुत्री से विवाह किया।

इस समय तक सूफ़ियों में अनेक सम्प्रदायों और परम्पराओं का जन्म हो चुका था।

आवश्यकता होने पर अपने 'शिया' होने को छिपाना शियाओं की दृष्टि में वैध है, इस आत्मगोपन को 'तक़य्या' करना कहा जाता है। ग़ोरी, गुलाम, खिलजी और तुग़लक़ शासक सुन्नी मुसलमान थे, इनके हृदय पर क्रमशः शैख मुईनुद्दीन चिश्ती, उनके ख़लीफ़ा क़ुतुबुद्दीन बख्तयार काकी, उनके ख़लीफ़ा बाबा फ़रीदुद्दीन गंजशकर और उनके ख़लीफ़ा शैख निज़ामुद्दीन चिश्ती शासन करते रहे। क़ाज़ी और मौलवी लोग इन सूफ़ी प्रचारकों और उनके संगीतानुराग के विरोधी रहे।

---

१. अरब और हिन्द के तअ़ल्लुक़ात, पृ० २४९

२. वही, पृ० ४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुईनुद्दीन चिश्ती ने शिया मुसलमान की पुत्री से विवाह किया, ईरान के एक शिया शाहज़ादे हसन को मुईनुद्दीन चिश्ती ने दक्षिण का शासक होने का आशीर्वाद दिया, वह बहमनी वंश का संस्थापक बना, फ़ीरोज़शाह बहमनी पर शैख नसीरुद्दीन ने चिराग़देहली के ख़लीफ़ा शैख़ बन्दानवाज़ गेसूदराज़ ने अनुग्रहों की वर्षा कर दी, यह स्थिति सूफ़ी चिश्तियों के मन में शिया मुसलमानों के प्रति अनुराग प्रकट करती है।

पूर्वोक्त सूफ़ी प्रचारक शिया थे या नहीं, यह कहना कठिन है।

हमारे लिए तो इतना जानना पर्याप्त है कि प्रथम सूफ़ी सलमान पारसी शिया था। उसका राजनीतिक सहयोगी अब्दुल्लाह भी शिया था। इन लोगों से पूर्व भारतीय ज्ञानी बग़दाद पहुँच चुके थे, अनेक व्यक्ति विद्याध्ययन के लिए भारत आ चुके थे, भारतीय विद्वान् अरब पहुँच चुके थे। सलमान पारसी और अब्दुल्लाह के युग में ही शैख जुनैद जैसे सूफ़ी भक्तिमय संगीत को वैध एवं ईश्वरप्राप्ति का साधन मान चुके थे, इनकी परम्परा के सन्त दाता गंजबख्श लाहौर में आकर बसे और ग्यारहवीं शती के उत्तरार्ध में स्वर्गवासी हो चुके थे।

यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि महमूद ग़ज़नवी के जीवन-काल में ही सैयद नतहरशाह (मृ० १०३९ ई०) त्रिचनापल्ली पहुँचकर खुत्तन जाति के पर्याप्त व्यक्तियों को मुसलमान बना चुके थे। बोहरा जाति के भारतीयों को मुसलमान बनाने का कार्य १०६५ ई० में गुजरात आकर अब्दुल्लाह ने किया था, दाता गंजबख्श तो ग्यारहवीं शती ई० के आरम्भ में लाहौर आ ही चुके थे और बारहवीं शती के आरम्भ में नूरुद्दीन और मुहम्मद अली भी भारत आकर गुजरात को अपना कार्यक्षेत्र बना चुके थे।

संगीतानुरागी जुनैदी सम्प्रदाय के दाता गंजबख्श का कार्यक्षेत्र लाहौर रहा। संगीतानुरागी सुहरवर्दी-सम्प्रदाय के आदिपुरुष शैख शहाबुद्दीन ख़लीफ़ा शैख जलालुद्दीन तबरेज़ी पृथ्वीराज की पराजय के पश्चात् १२०० ई० में बंगाल पहुँचे। शैख शहाबुद्दीन के दूसरे ख़लीफ़ा क़ाज़ी हमीदुद्दीन नागौरी ने दिल्ली में अपना केन्द्र स्थापित किया, इनके ख़लीफ़ा अहमद ने बदायूँ को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। शैख शहाबुद्दीन के तीसरे ख़लीफ़ा, महाविद्वान्, अनुपम संगीतमर्मज्ञ एवं राजनीतिज्ञ शैख बहाउद्दीन ज़करिया अपने जन्मस्थान मुलतान को केन्द्र बनाकर कार्य कर रहे थे, इनके ख़लीफ़ा सैयद जलालुद्दीन सुर्खपोश ने उच को अपना कार्य-क्षेत्र निश्चित किया, उनके ख़लीफ़ा सैयद जलाल बिन कबीर ने बंगाल और सिन्ध में पर्याप्त कार्य किया।

चिश्ती-सम्प्रदाय के शैख मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी जन्मतः ईरानी थे। इन्होंने हारून, बग़दाद, इस्फ़हान, तबरेज़, ख़रक़ान, अस्तराबाद, हिरात, बल्ख और ग़ज़नी के प्रसिद्ध सूफ़ियों का आशीर्वाद और प्रतिनिधित्व प्राप्त किया था। ये

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुहमद ग़ोरी की सेनाओं के साथ भारत आये थे, इन्होंने पृथ्वीराज की राजधानी अजमेर में बसकर, पृथ्वीराज की पराजय से छः वर्ष पूर्व ही अपना प्रचार-कार्य आरम्भ कर दिया था। पृथ्वीराज की पराजय के पश्चात् शासनसूत्र हाथ में आने पर मुहम्मद ग़ोरी के प्रतिनिधि क़ुतुबुद्दीन ऐबक ने इन्हें जागीर में गाँव दिये थे, अतः इनकी राजनीतिक सूझ-बूझ और प्रचारपटुता स्वयंसिद्ध है। इनके ख़लीफ़ा ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी (मृ० १२३६ ई०) तो दिल्ली के निकट बस गये और क़ुतुबुद्दीन ऐबक के हृदय पर शासन करते रहे।

ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी के ख़लीफ़ाओं में से, बाबा फ़रीदुद्दीन गंजशकर अजोधन (मण्टगुमरी के निकट पाकपट्टन) में, ख़्वाजा इमादुद्दीन और ख़्वाजा सैयद मुहम्मद असग़री बिलग्राम में, ख़्वाजा शैख़ महमूद और शैख़ हामिदुद्दीन नहरवाँ गुजरात में तथा शैख़ बदरुद्दीन ग़ज़नवी और शैख़ माजुद्दीन दिल्ली में प्रचार-कार्य करने लगे।

शैख़ फ़रीदुद्दीन गंजशकर के प्रसिद्ध ख़लीफ़ाओं में शैख़ निजामुद्दीन हाँसी-निवासी और शैख़ बदरुद्दीन इसहाक़ भी हैं, परन्तु शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती और ख़्वाजा अली अहमद साबिर ने प्रचार-कार्य में पर्याप्त सफलता प्राप्त की।

शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के ख़लीफ़ाओं में मौलाना फ़ख़रुद्दीन ज़रादी, मौलाना बुरहानुद्दीन ग़रीब, अमीर हसन अला संजरी और क़ाजी शर्फुद्दीन ने दक्षिण में कार्य किया, मौलाना अख़ी सिराज ने बंगाल में चिश्ती-परम्परा की धूम मचा दी और ख़्वाजा करीमुद्दीन बयाना ने बिहार में कार्य किया।

शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के प्रमुख उत्तराधिकारी शैख़ नसीरुद्दीन चिराग़-देहली ने अपना प्रमुख उत्तराधिकारी किसी को घोषित न किया। शैख़ चिराग़-देहली के स्वर्गवास (१३५६ ई०) से पूर्व ही दिल्ली का केन्द्रीय मुस्लिम शासन बिखर चुका था, दक्षिण में विजयनगर और गुलबर्गा के स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना हो चुकी थी, गुजरात, मालवा और जौनपुर में भी स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो चुके थे। अतः दूरदर्शी शैख़ नसीरुद्दीन चिराग़देहली ने भी चिश्ती-परम्परा के प्रचार-केन्द्र दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता का विभाजन करके पण्डुवा, लखनौती, दौलताबाद, गुलबर्गा, बुरहानपुर, जैनाबाद, माँडा और अहमदाबाद में स्थित ख़ानकाहों के अधीशों को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार कार्य करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया।

इन ख़ानकाहों से सम्बद्ध सूफ़ी साहित्य की सृष्टि इन-इन स्थानों में ही हुई। इन ख़ानकाहों के अधीशों को स्थानीय मुस्लिम शासकों का संरक्षण प्राप्त हुआ।

इन प्रदेशों में जा बसनेवाले क़व्वालों की परम्परा के विस्तृत अध्ययन के लिए इन स्थानों की ख़ानकाहों के रोजनामचों (रजिस्टरों) तथा सूफ़ी सन्तों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के इतिवृत्तों का अध्ययन परमावश्यक है।

यद्यपि हज़रत मुहम्मद को भारत की ओर से ईश्वरीय सुगन्ध आती थी, उनके दौहित्र और करबला के प्रसिद्ध शहीद हज़रत इमाम हुसेन की ससुराल भारत में थी, आठवीं शती ई० के आरम्भ में ही मुहम्मद बिन क़ासिम भारतीय ब्राह्मणों से सुपरिचित होकर उन्हें शासन में उच्च पदों पर नियुक्त कर चुका था, बग़दाद के प्रसिद्ध विद्याव्यसनी अब्बासी ख़लीफ़ा (राज्य-काल ७८६-८०९ ई०) के युग से पूर्व ही भारतीय विद्वान अरब पहुँच गये थे और अरब विद्यार्थी भारत आ चुके थे, तथापि सूफ़ियों के मार्गदर्शक सूफ़ी-मत पर भारतीय प्रभाव मानने के लिए प्रस्तुत न थे। शैख़ अबूतालिब मक्की (मृ० ९९६ ई०) और शैख़ अबूबकर (मृ० १००० ई०) जैसे ग़ज़नवी-युग के सूफ़ी यह सिद्ध करने में लगे थे कि सूफ़ीवाद का वास्तविक उद्गम 'इस्लाम' में ही है।[1] यदि वे ऐसा न करते, तो उनकी गणना इस्लाम के प्रचारकों में न होती। मौलवी लोगों की दृष्टि में तो सूफ़ी इस्लामविरोधी थे ही, यदि सूफ़ी लोग अपने विचारों पर भारतीय प्रभाव स्वयं स्वीकृत कर लेते तो उनके लिए मुस्लिम-जगत में कोई स्थान न रहता।

दाता गंजबख्श ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कश्फ़ुल महबूब' में सूफ़ियों के बारह सम्प्रदायों की चर्चा की है। यद्यपि इन बारहों सम्प्रदायों के प्रवर्तक स्वयं को मुसलमान कहते थे, तथापि पुनर्जन्मवादी 'हलूली सम्प्रदाय' और समाधानकारी 'हल्लाली सम्प्रदाय' को दाता गंजबख्श ने तिरस्करणीय कहा है। पुनर्जन्मवाद को इस्लाम के अनकूल सिद्ध किया जाना कठिन था। अन्य दस सम्प्रदायों के प्रवर्तक बायज़ीद बुस्तामी, शैख़ हम्दून कसार:, शैख़ हारिस बिन असद, शैख़ हारिस बिन असद मजासी, शैख़ सुहेल बिन अब्दुल्लाह तस्तरी, अबी अब्दुल्लाह बिन अली उलू हक़ीम, शैख़ अबू अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन हनीफ़, शैख़ अबू सईद फ़राज़ी और शैख़ अबू अब्बास सयारी थे। दशम शती ई० में ही इन दसों सम्प्रदायों का जन्म हुआ और दाताबख्श की दृष्टि में ये दसों सम्प्रदाय स्वीकरणीय थे, इनमें से 'क़सारिया' सम्प्रदाय कालान्तर में निन्दनीय हो गया था।

अस्तु दसवीं सदी ई० के अन्त में जो सूफ़ी प्रचारक यहाँ आये, वे एकान्तसेवी और ईश्वरीय प्रेम में निमग्न रहनेवाले लोग न थे, अपितु गृहस्थ थे, वे अपने प्रचार-कार्य में शासन का सहयोग चाहते थे।

मुस्लिम आक्रान्ताओं को इनका सहयोग बहुमूल्य प्रतीत होता था। ये सूफ़ी प्रचारक, वाक्पटु, नीतिकुशल, लोक-भाषा में गा-बजाकर अपने चमत्कारों की प्रसिद्धि करके तथा अपने मधुर प्रवचनों से जनता के हृदय को जीतने में निपुण थे। ये लोग अपनी बातों को भारतीय रंग में रँगकर इस प्रकार कहते थे कि

१. अब्दुल ग़फ़ूर, पृ० ६५-६६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भोले-भाले अशिक्षित भारतीय इन लोगों को अपना मुक्तिदाता और उद्धारक मानने लगते थे।

मुस्लिम आक्रान्ताओं और शासकों को ऐसे मौलवियों और क़ाजियों की भी आवश्यकता थी, जो अपने उत्तेजनापूर्ण भाषणों से सैनिकों को 'इस्लाम के लिए' मरने-मारने पर उद्यत कर सकें और विशुद्ध साम्राज्य-स्थापन की इच्छा से किये जानेवाले सैनिक अभियानों को 'धर्मयुद्ध' सिद्ध करें।

मुस्लिम शासक 'सूफ़ियों और मौलवियों' में नीतिपूर्वक सन्तुलन बनाये रखते और इन दोनों का ही उपयोग अपने स्वार्थ के लिए करते थे। वे जब भी कोई नया प्रदेश जीतते, तब मौलवियों को सन्तुष्ट करने के लिए उस प्रदेश में 'मस्जिदें' और 'मदरसे' बनवाते और सूफ़ियों के लिए 'खानकाहें' (सूफ़ी मठ) भी स्थापित करते थे। ये सुल्तान सूफ़ी प्रचारकों को जागीरें भी देते तथा इनके कुटुम्बियों और 'मुरीदों' को शासन में उच्च पद देकर इन पर अंकुश रखते और खानकाहों की आन्तरिक गतिविधियों पर दृष्टि रखते थे।

दूसरी ओर सूफ़ी प्रचारक भी अपने मुरीदों को अपने विरोधी बादशाहों तक की नौकरी करने से न रोकते थे, इस उपाय से उन्हें दरबारी रहस्यों का ज्ञान होता रहता था।

पृथ्वीराज की पराजय के पश्चात् मुहम्मद ग़ोरी के प्रतिनिधि क़ुतुबुद्दीन ऐबक ने शैख़ मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी को जागीर दी थी, ऐबक की मृत्यु के पश्चात् जब अजमेर के स्थानीय शासक ने यह जागीर ज़ब्त कर ली, तब शैख़ मुईनुद्दीन चिश्ती इस जागीर की वापसी के लिए स्वयं दिल्ली गये थे और उनके प्रसिद्ध मुरीद और ख़लीफ़ा क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी ने स्वयं सम्राट शम्सुद्दीन इल्तुतमिश की सेवा में उपस्थित होकर इस जागीर की वापसी के लिए सफल प्रार्थना की थी।[1]

यह एक उदाहरण पर्याप्त है कि सूफ़ी प्रचारकों का पोषण शासन की ओर से होता था।

जलालुद्दीन ख़िलजी, क़ुतुबुद्दीन ख़िलजी और ग़यासुद्दीन तुग़लक़ तीनों ही निज़ामुद्दीन चिश्ती के विरोधी थे, परन्तु अमीर खुसरो को इन तीनों सम्राटों ने ही पुरस्कृत किया था। शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती और उनके प्रियतम शिष्य अमीर खुसरो ने इन सम्राटों के किसी कुत्सित आचार की निन्दा न की, अमीर खुसरो ने इनमें से किसी की नौकरी न छोड़ी और निज़ामुद्दीन चिश्ती ने खुसरो को नौकरी छोड़ने का आदेश न दिया।

भारतीय संगीत के विद्यार्थी के लिए इस परिस्थिति से स्पष्ट रूप में सुपरिचित होना आवश्यक है।

---

१. निज़ामी बंसरी, पृ० ९९-१००

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दास-वंश का अभ्युदय, अन्त और संगीत

(११९२-१२९६ ई०)

शैख मुईनुद्दीन चिश्ती के प्रचार की सफलता में एक प्रमुख कारण यह था कि शैख मुईनुद्दीन चिश्ती गाना सुनते थे, भारतीय जातियों में गाना सुनने की रीतियाँ और गाने के माध्यम से ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की विचारपरम्परा अमुस्लिम जातियों तक पहुँच जाती थी।[1] स्पष्ट है कि इस प्रचार के लिए लोक-भाषा में ऐसे गीतों की रचना की गयी कि जिनमें चिश्ती-विचारधारा का प्रतिपादन हो। निज़ामुद्दीन चिश्ती ने अपने मुरीद ख्वाजा सैयद मुहम्मद मूसा, अमीर खुसरो, हसन संजरी तथा सैयद रफ़ीउद्दीन हारूँ को 'हिन्दवी' भाषा में गीत लिखने के लिए प्रेरित किया था।[2] चिश्ती सूफ़ियों की यह नीति उनकी बुद्धिमत्ता का सिद्ध करती है।

११९२ ई० में पृथ्वीराज मुहम्मद ग़ोरी से पराजित हुआ। मुहम्मद ग़ोरी की मृत्यु १२०६ ई० से पूर्व हाँसी, मेरठ, दिल्ली, रणथम्भौर, कोल, बनारस, अजमेर, कालिंजर, महोबा, बदायूँ, बंगाल, बिहार एवं लखनौती पर मुहम्मद ग़ोरी के प्रतिनिधि क़ुतुबुद्दीन ऐबक के सेनापतियों ने अधिकार कर लिया था। १२१० ई० में क़ुतुबुद्दीन स्वतन्त्र शासक के रूप में गुलाम-वंश का संस्थापक हुआ और १२१० ई० में उसकी मृत्यु हुई।

इस युग में शैख शहाबुद्दीन सुहरवर्दी के खलीफ़ा शैख जलालुद्दीन तबरेज़ी बंगाल में प्रचारकार्य कर रहे थे, दूसरे खलीफ़ा क़ाजी हमीदुद्दीन नागौरी राजपूताना और मारवाड़ में महमूद जैसे क़व्वालों से क़व्वाली के द्वारा भी प्रचारकार्य करा रहे थे एवं तीसरे प्रसिद्ध खलीफ़ा ख्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख्तयार काकी क़ुतुबुद्दीन ऐबक के हृदय पर यहाँ तक शासन कर रहे थे कि उसने शैख की स्मृति में प्रसिद्ध क़ुतुबमीनार का निर्माण आरम्भ करा दिया था। मुईनुद्दीन चिश्ती (मृ० १२३५ ई०) चिश्ती-परम्परा के प्रचारकों का मार्गदर्शन स्वयं कर रहे थे।

---

१. निज़ामी बंसरी, पृ० ११०

२. वही, पृ० १८४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

क़ुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु के पश्चात् साम्राज्य कई खण्डों में बँटा। सिन्ध पर नासिरुद्दीन क़ुबाचा, दिल्ली तथा समीपवर्ती प्रदेशों पर शम्सुद्दीन इल्तुतमिश, लखनौती पर ख़िलजी मलिकों तथा लाहौर पर क्रमशः कई व्यक्तियों का अधिकार हुआ। परन्तु शम्सुद्दीन इल्तुतमिश ने अपने विरोधियों पर विजय प्राप्त करके क़ुतुबुद्दीन ख़िलजी द्वारा अधिकृत प्रदेशों पर शासन तो स्थापित किया ही, मण्डोर, मालवा, भिलसा और उज्जैन पर भी अधिकार कर लिया। शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के राज्य-काल में पेशावर से उज्जैन तक और सिन्ध से लेकर बंगाल तक का भाग दिल्ली साम्राज्य के अन्तर्गत आ चुका था।

साम्राज्य के प्रत्येक भाग में ख़ानक़ाहें थीं, सूफ़ी और क़व्वाल थे, स्थानीय बोलियों में सूफ़ी गेय साहित्य की रचना हो रही थी और क़व्वाल उन्हें गा-गाकर चिश्ती सूफ़ियों के विचारों का प्रचार कर रहे थे।

क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी शम्सुद्दीन इल्तुतमिश की दृष्टि में परम श्रद्धास्पद थे, अतः इनकी स्मृति में बन रहे क़ुतुबमीनार की दूसरी, तीसरी और चौथी मंजिल का निर्माण शम्सुद्दीन इल्तुतमिश ने कराया।

क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी को भी भक्तिपरक संगीत में पर्याप्त रुचि थी। एक बार क़व्वाली सुनते-सुनते ये चार दिन तक भावमग्न रहे और उसी अवस्था में इनका स्वर्गवास हो गया।

शैख़ मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी १२३५ ई० में, शम्सुद्दीन इल्तुतमिश भी १२३५ में और क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी १२३६ ई० में स्वर्गवासी हुए।

क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी के ख़लीफ़ाओं में बदरुद्दीन ग़ज़नवी और माजुद्दीन ने दिल्ली, इमादुद्दीन और सैयद मुहम्मद सग़रः ने बिलग्राम, शैख़ महमूद ने गुजरात, फ़रीदुद्दीन गंजशकर ने अजोधन[1] (जिला मण्टगुमरी के पास पाकपट्टन) तथा शाह अब्दुल्लाह किरमानी ने बंगाल को अपने प्रचारकार्य का केन्द्र बनाया।[2] इन सभी के द्वारा प्रचार के लिए क़व्वाली और क़व्वालों का प्रयोग किया गया।

क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी के केन्द्रीय उत्तराधिकारी बाबाफ़रीदुद्दीन गंजशकर के कार्य का केन्द्र तो अजोधन था, परन्तु इन्होंने स्वयं भी प्रचारकार्य के लिए दक्षिण और बंगाल की यात्राएँ कीं।

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के राज्य-काल में संगीत की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण घटना देवगिरि के यादव-वंशीय नरेश सिंहण के संरक्षण में आचार्य शार्ङ्गदेव के द्वारा संगीत के महान् ग्रन्थ 'संगीत-रत्नाकर' का प्रणयन है। यद्यपि मुस्लिम

---

१. अब्दुल ग़फ़ूर, पृ० १११
२. हि० प्रे० का०, पृ० १२५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आक्रान्ता उस समय दक्षिण में नहीं पहुँचे थे, तथापि हाजी सूफ़ी (मृ० ११६० ई०) और शाह मोमिन आरिफ़ुल्लाह (मृ० १२०० ई०) जैसे सूफ़ी तो मुहम्मद ग़ोरी की मृत्यु (१२०६ ई०) से पूर्व ही दक्षिण भारत में बसकर प्रचार कर चुके थे।

दसवीं शताब्दी ई० के अन्त में प्रसिद्ध कश्मीरी विद्वान् महामाहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्त 'नाट्यशास्त्र' पर अपनी प्रसिद्ध टीका 'अभिनव भारती' की रचना कर चुके थे, ग्यारहवीं और बारहवीं शती ई० में धारा-नरेश महाराज भोज (राज्य-काल ९९८-१०६२ ई०) ने 'शृंगार प्रकाश', मिथिला के कर्णाट जातीय राष्ट्रकूट नरेश नान्यदेव ने १०८० ई० में 'सरस्वती हृदयालंकार', दक्षिण में कल्याणी-नरेश (राज्य-काल ११२७-११३४ ई०) ने 'अभिलषितार्थ चिन्तामणि', प्रताप चक्रवर्ती महाराज जगदेव महल (राज्य-काल ११३४-११४५ ई०) ने 'संगीत चूड़ामणि', कश्मीरी विद्वान् शारदातनय ने 'भाव-प्रकाशम्' और 'शारदीय', चालुक्यवंशीय सौराष्ट्र-नरेश ने ११७५ ई० में 'संगीत सुधाकर' तथा सम्राट अजयपाल और भीमपाल के वेत्राधिपति सोमराजदेव ने 'संगीत-रत्नावली' की रचना की थी। उन लोगों के युग में मुस्लिम प्रभाव की छाया भारतवर्ष की सीमा पर पड़ने लगी थी, परन्तु शार्ङ्गदेव के युग में नर्मदा के उत्तर की ओर सुदृढ़ मुस्लिम साम्राज्य स्थापित हो चुका था।

आचार्य शार्ङ्गदेव के दादा भास्कर को बारहवीं शती ई० में कश्मीर छोड़-कर दक्षिण में आश्रय लेना पड़ा था, परन्तु आचार्य शार्ङ्गदेव के आश्रय-दाता देवगिरि-नरेश सिंहण के तो राज्य की सीमाओं को शम्सुद्दीन इल्तुतमिश का मुस्लिम साम्राज्य छूने लगा था। सूफ़ी प्रचारक दक्षिण में भी पहुँच चुके थे। अतः क्रान्तदर्शी आचार्य शार्ङ्गदेव ने ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति के आश्रित मुमूर्षु संगीत को नवजीवन देने के लिए उसे समर्थ वाणी में एकत्र सँजोकर रख दिया। आचार्य शार्ङ्गदेव 'तुरुष्कों' (मुसलमानों) से यहाँ तक परिचित थे कि उन्होंने 'संगीत-रत्नाकर' के 'रागविवेकाध्याय' में 'तुरुष्कतोडी' की चर्चा की है। 'संगीत-रत्नाकर' के प्रसिद्ध टीकाकार सिंह भूपाल ने ठीक ही कहा है कि शार्ङ्गदेव के उदय के पूर्व समस्त संगीतपद्धति बिखर गयी थी, जिसे 'रत्नाकर'-कार ने एकत्र सँजोकर रखा।

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश की मृत्यु के पश्चात्

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश ने अपने पुत्रों की अयोग्यता के कारण अपनी योग्य पुत्री रज़िया को अपना उत्तराधिकार दिया था। १२३६ ई० में वह सिंहासन पर बैठी, परन्तु 'चालीसिया' नाम से प्रसिद्ध तुर्क सरदारों के षड्यन्त्रों ने १२३९ ई० में उसका अन्त कर दिया। कट्टर मुसलमान एक नारी का शासन अपने लिए अपमान की बात समझते थे और रज़िया के द्वारा पुरुष-वेष धारण करके आना 'इस्लाम' के विरुद्ध मानते थे। रज़िया के पश्चात् उसके मामू बहरामशाह

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ने राजसिंहासन पर अधिकार किया और कुछ दिनों के पश्चात् 'अयूब' नामक दरवेश के कहने में आकर चालीसियों के परम श्रद्धास्पद क़ाजी का वध करा दिया। फलतः १० मई, १२४२ ई० को बहरामशाह बन्दी बनाकर कारागार में डाल दिया गया। उसके स्थान पर इल्तुतमिश के पौत्र अलाउद्दीन मसऊद को सिंहासनासीन किया गया, परन्तु भोग-विलास एवं मद्य-पान के प्रेमी इस शासक को भी १० जून, १२४२ ई० को कारागार में डाल दिया गया, जहाँ कुछ ही दिनों के पश्चात् वह मर गया। तत्पश्चात् इल्तुतमिश के दूसरे पुत्र नासिरुद्दीन महमूद को सिंहासन पर बिठाया गया था। इसकी मृत्यु १२६५ ई० में हुई।

शम्सुद्दीन इल्तुतमिश की मृत्यु (१२३५ ई०) से नासिरुद्दीन महमूद की मृत्यु (१२६५ ई०) तक के तीस वर्षों में हम दिल्ली के अस्थिर सिंहासन पर चिश्तियों का कोई विशेष प्रभाव नहीं पाते। इस युग में क़ुतुबुद्दीन खिलजी के ख़लीफ़ा शैख़ बदरुद्दीन ग़ज़नवी, क़ाज़ी मिनहाजुस्सिराज और मौलाना अनवर जैसे सूफ़ी अपना लक्ष्य एक ओर रख चुके थे।[1] 'तबक़ात-ए-नासिरी' के लेखक क़ाजी-पद पर नियुक्त थे और नासिरुद्दीन महमूद के राज्य-काल में जब बाबा फ़रीदुद्दीन गंजशकर के परम कृपापात्र महामन्त्री बलबन पर सुल्तान नासिरुद्दीन की कोपदृष्टि हुई; तब क़ाजी 'मिनहाजुस्सिराज' को पदच्युत कर दिया गया। बलबन के स्थान पर मुहम्मद जुनैदी (संगीतानुरागी शैख़ जुनैद के सम्प्रदाय के व्यक्ति) को महामन्त्री नियुक्त किया गया। इस समय सुल्तान पर एक नीच-कुलोत्पन्न नौमुस्लिम हिन्दू का अत्यन्त प्रभाव था।

यह स्थिति इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि अव्यवस्था के इस युग में दिल्ली के शासकों पर चिश्तियों का वांछनीय प्रभाव नहीं रहा था। रज़िया के राज्यारोहण से पूर्व कुछ दिनों के लिए रज़िया के एक भाई रुक्नुद्दीन को सिंहासन पर बिठा दिया गया था, रूपवान्, सहृदय एवं उदार होने पर भी जो मूर्ख था और जिसे विदूषकों और सारंगी बजानेवालों की संगति में अत्यन्त आनन्द आता था। अर्थात् शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के पश्चात दरबार में भक्ति-परक संगीत के स्थान पर विलास में सहायक संगीत का प्रवेश हो गया था। ऐसी दशा में बेचारे सूफ़ी विवश हो गये थे। मौलाना अब्दुल ग़फ़ूर कहते हैं—

"इल्तुतमिश की मृत्यु के पश्चात् पर्याप्त समय तक दिल्ली की परिस्थिति चिन्तनीय रही, विद्वानों और सूफ़ियों ने अपने लक्ष्य को भुलाकर स्वयं को राजनीति में लिप्त कर लिया।…इन परिस्थितियों में यह बात अवश्य सिद्ध होती है कि यदि उस समय बाबा फ़रीदुद्दीन गंजशकर दिल्ली में रहते, तो राजनीति उन्हें भी चिश्तिया परम्परा का कार्य न करने देती।[2]

१. इ० ज़ि० त० चि०, ले० अब्दुल ग़फ़ूर, पृ० ११५
२. वही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बलबन, उसके उत्तराधिकारी, सूफ़ी और संगीत

बलबन (राज्य-काल १२६५-१२८६ ई०)

बलबन इलवारी क़बीले का एक तुर्क था। यह युवावस्था में मंगोलों का बन्दी बना और बग़दाद में ख्वाजा जमालुद्दीन बसरी के हाथों बेच दिया गया। ख्वाजा से इसे दयापूर्ण व्यवहार मिला और उन्होंने इसे दिल्ली लाकर शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के हाथों बेच दिया। सुल्तान ने उसे अपना 'खासाबरदार' (व्यक्तिगत अनुचर), बनाकर चालीस दासों के दल में सम्मिलित कर लिया। रज़िया के शासनकाल में बलबन 'अमीर-ए-शिकार' नियुक्त हुआ। बहराम ने हाँसी का जिला और रेवाड़ी की जागीर बलबन को दी। नासिरुद्दीन महमूद का राज्याभिषेक होते ही बलबन मुख्य मन्त्री नियुक्त हुआ। १२५३ ई० में उसे राजसभा से बहिष्कृत करके उसकी जागीर में लौटा दिया गया। १ फरवरी, १२५४ ई० को उसे पुनः दिल्ली बुलाया गया, उसने लौटकर कई विद्रोहों का दमन किया और १२६६ ई० को नासिरुद्दीन महमूद की मृत्यु के पश्चात् वह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। बलबन ने समस्त राज्य में व्यवस्था स्थापित की, शम्सी दासों, मंगोलों और बंगाल के उद्दण्ड शासक तुग़रिल और उसके सहायकों को भयानक दण्ड देकर अपने पुत्र बुग़रा खाँ को बंगाल का शासक नियुक्त किया। १२८५ ई० में बलबन का पुत्र शाहज़ादा मुहम्मद मंगोलों के द्वारा मारा गया और १२८६ ई० में बलबन की मृत्यु हो गयी।

क़ुतुबुद्दीन बख्तयार काकी के भक्त शम्सुद्दीन इल्तुतमिश का व्यक्तिगत अनुचर होने के कारण बलबन में चिश्ती-परम्परा के सन्तों के प्रति उसका अनुराग स्वाभाविक था और संगीत के प्रति भी। उसके उत्सवों की सभा में संगीत होता था।[1]

निज़ामुद्दीन चिश्ती का जन्म (१२३८ ई०) रज़िया के राज्य-काल (१२३६-१२३९ ई०) में बदायूं में हुआ। १२५४ ई० से १२५७ ई० तक

---

१. आदि तुर्ककालीन भारत, पृ० १४६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उनकी उच्च शिक्षा दिल्ली में हुई, यह नासिरुद्दीन महमूद का शासन-काल और बलबन का मन्त्रित्व-काल था। १२६१ ई० में वे बाबा फ़रीदुद्दीन गंजशकर के खलीफ़ा होकर जब दिल्ली आये, तब भी नासिरुद्दीन सम्राट और बलबन महामन्त्री था। बलबन के राज्यारोहण (१२६५ ई०) में अमीर खुसरो और उनके मित्र हसन अला संजरी निज़ामुद्दीन चिश्ती के शिष्य और मुरीद थे। बलबन का ज्येष्ठ पुत्र और मुलतान का शासक शाहज़ादा मुहम्मद १२६९ ई० में अमीर खुसरो और हसन अला संजरी को अपने साथ मुलतान ले गया था, जहाँ ये दोनों संगीत के महान् मर्मज्ञ शैख बहाउद्दीन ज़करिया मुलतानी के पुत्र शैख कदवा के सम्पर्क में रहे, फलतः खुसरो को ईरानी संगीत के रहस्यों का ज्ञान हो गया, कालान्तर में जिसका ऐतिहासिक सदुपयोग हुआ।

बलबन की मृत्यु (१२८६ ई०) के समय शैख निज़ामुद्दीन चिश्ती की आयु अड़तालीस वर्ष और अमीर खुसरो की आयु पैंतीस वर्ष थी। अतः यह सिद्ध है कि नासिरुद्दीन महमूद और बलबन के शासन-काल में निज़ामुद्दीन चिश्ती अमीर खुसरो एवं अन्य अनेक प्रचारकों का निर्माण सफलतापूर्वक कर चुके थे।

शैख निज़ामुद्दीन ने चिश्ती-परम्परा और संगीत के प्रचार की आधार-शिला बलबन के युग में रखी।[1]

कैक़ुबाद का युग (१२८६-१२९० ई०)

यद्यपि बलबन अपने पुत्र कैखुसरो को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर गया था, तथापि सरदारों ने बलबन के पौत्र और बुग़रा खाँ के सत्रहवर्षीय पुत्र कैक़ुबाद को राज-सिंहासन पर बिठाया। विद्यार्थी-जीवन में कैक़ुबाद को किसी सुन्दरी अथवा मदिरा के प्याले की ओर आँख तक न उठाने दी गयी थी और उसे पूर्ण संयम की शिक्षा मिली थी। सम्राट होते ही वह सारा संयम भूल गया।

कैक़ुबाद की माँ हिन्दू थी[2] और खुसरो भी हिन्दू जननी की सन्तान थे,[3] अतः कैक़ुबाद अमीर खुसरो को अत्यन्त स्नेह करता था। कैक़ुबाद लोकभाषा की ओर अत्यन्त रुचि रखता था। उसने यमुना के किनारे एक आलीशान महल बनवाया और उसके लिए अमीर खुसरो से ऐसा नामकरण करने के लिए कहा, जो सार्थक और सरल हो। अमीर खुसरो ने उस महल का नाम 'कैलोकहरि'

---

१. आदि तुर्ककालीन भारत, पृ० २०२
२. चेहलरोज़ा, पृ० ३०
३. वही, पृ० २८, ३०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रखा, जिसमें 'कैलोक' का अर्थ 'कैक़ुबाद का महल' और 'हरि' का अर्थ ईश्वर है। इस नाम में 'लोक' और 'हरि' जैसे सरल संस्कृत शब्द हैं, जो जनसाधारण की समझ के बाहर नहीं थे।[1] जिस स्थान पर यह महल था, वह अब 'किलोखड़ी' कहलाता है, जो 'कैलोकहरि' का अपभ्रंश है।

क़ैक़ुबाद की सभा में अवध से गायक पहुँचते थे, वेश्याओं ने अपनी सुन्दर पुत्रियों को गाने, वजाने, ग़ज़ल पढ़ने, चुटकुले कहने, चौसर और शतरंज खेलने के साथ घुड़सवारी की भी शिक्षा दी थी, हिन्दुस्तानी दासों तथा दासियों को फ़ारसी तथा संगीत की शिक्षा दी गयी थी, सुल्तान की प्रशंसा में 'ग़ज़लों' तथा 'क़ौलों' की रचना की गयी थी। शिक्षित हिन्दू दास और दासियाँ विदेशी सुल्तानों को भी उपहार में भेजी जाती थीं।

कैक़ुबाद का तुर्क मन्त्री मलिक निज़ामुद्दीन भी अत्यन्त संगीतानुरागी था और उसके दरवार में भी संगीतानुरागी क़व्वाल रहते थे।

कैक़ुबाद की यात्राओं में भी प्रत्येक पड़ाव पर संगीत-गोष्ठियाँ होती थीं, चंग़, रबाब, कमांच, मिस्कल (तन्त्रीवाद्य-विशेष), बाँसुरी और तम्बूरों की आवाज़ों से शिविर गूँजता रहता था।"[2]

कैक़ुबाद के दरवार में तुर्कों और खिलजियों के परस्परविरोधी दल हो गये थे, अतः कैक़ुबाद का पिता बुग़रा खाँ बंगाल से आया और उसके मुक़ावले के लिए कैक़ुबाद ससैन्य दिल्ली से चला। अवध में गंगा के किनारे पिता और पुत्र का सामना हुआ। शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के संकेत से अमीर खुसरो ने कैक़ुबाद को समझा-बुझाकर पिता और पुत्र में सन्धि करा दी।[3] इस सन्धि के उत्सव में गायकों, वादकों और नर्तकों ने अपनी कला का भली-भाँति प्रदर्शन किया था।[4]

अपने पिता की सम्मति मानकर कैक़ुबाद ने महामन्त्री मलिक निज़ामुद्दीन को पदच्युत कर दिया, जो तुर्क दल का नेता था और कैक़ुबाद को अलोकप्रिय वनाकर स्वयं सिंहासन पर अधिकार करना चाहता था। यह व्यक्ति दिल्ली के उस कोतवाल मलिक फ़ख़रुद्दीन का दामाद और भतीजा था जिसकी गुप्त मन्त्रणाओं के फलस्वरूप कैक़ुबाद को सिंहासनासीन किया गया था।

अपनी विलासप्रियता के कारण कैक़ुबाद को पक्षाघात हो गया और १२९० ई० में एक खिलजी मलिक ने उसकी हत्या उसी के विलास-स्थान

---

१. वही, पृ० ३०

२. 'आदि तुर्ककालीन भारत, पृ० २३२, २३७, २३९, २५७

३. निज़ामी बंसरी, पृ० ४७

४. आदि तुर्ककालीन भारत, पृ० २५७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शीशमहल में कर दी ।

कैक़ुबाद-युग के इस संक्षिप्त अध्ययन से सिद्ध होता है कि कैक़ुबाद पर तुर्क दल के नेता महामन्त्री मलिक निज़ामुद्दीन का प्रभाव इतना अधिक था कि वह भक्तिपरक संगीत को सर्वथा भूलकर रूपाजीवाओं के मादक संगीत में डूब गया था । खुसरो कैक़ुबाद के पुत्र बुग़रा खाँ की सेवा में, मुलग़ान जाने से पूर्व, रह चुके थे, अतः बुग़रा खाँ और कैक़ुबाद की पारस्परिक सन्धि कराने में सफल हुए । विपरीत परिस्थितियों में भी शेख निज़ामुद्दीन चिश्ती ने खुसरो को दरबार में रहने की अनुमति दी, उचित अवसर आने पर इस नीति से लाभ हुआ ।

संगीत की दृष्टि से देखा जाये, तो दिल्ली इस युग में अवध के गायकों का केन्द्र हो गयी, अनेक हिन्दू दास-दासी प्रशिक्षित हुए, भारतीय गायिकाओं को फ़ारसी का ज्ञान भी कराया गया, वे विदेशों तक पहुँचीं । ऐसे कलाकारों का एक बहुत बड़ा वर्ग तैयार हो गया, जो भविष्य में अमीर खुसरो की संगीत-पद्धति को अपनाकर भारत के मुस्लिम-शासित प्रदेशों में सूफ़ी विचारधारा और खुसरो की गेय रचनाओं का प्रचार कर सके ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ख़िलजी-वंश, सूफ़ी और संगीत
(१२९०-१३२० ई०)

ख़िलजी-सम्राटों के युग में समस्त भारत मुस्लिम सेनाओं से आक्रान्त हुआ, निज़ामुद्दीन चिश्ती के सात सौ समर्थ प्रचारक भारत में फैल गये, अमीर खुसरो के द्वारा संगीत के इन्द्रप्रस्थ-मत का पोषण और संवर्द्धन हुआ, देवगिरि के राजवंश का एक नवयुवक हरदेव शैख़ निज़ामुद्दीन का प्रिय शिष्य एवं मुरीद हुआ, जो कालान्तर में मुहम्मद तुग़लक का दामाद और महामन्त्री बना और इतिहास में ख्वाजाजहाँ अहमद अयाज़ के नाम से जिसकी प्रसिद्धि हुई। इन घटनाओं का संक्षिप्त अध्ययन उचित है।

जलालुद्दीन ख़िलजी (१२९०-१२९६ ई०)

कैक़ुबाद की मृत्यु के साथ ही तुर्क-वंश के शासन का अन्त हुआ और शासन-सूत्र खिलजी-वंश के हाथ में आया। १२९० ई० में जलालुद्दीन खिलजी राजसिंहासन पर बैठा। इसने कैक़ुबाद के अमीरों और अधिकारियों के साथ अत्यन्त उदारता का व्यवहार किया। जलालुद्दीन सत्तर वर्ष का वृद्ध, कोमल-हृदय तथा सर्वथा अयोग्य शासक था। क़ाजी जलाल काशानी के बहकाने से कुछ शक्तिशाली लोगों ने जलालुद्दीन ख़िलजी की हत्या करके शैख़ फ़रीदुद्दीन गंजशकर के एक मुरीद और शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के गुरुबन्धु सीदी मौला को सुल्तान बनाने का षड्यन्त्र किया, जिसका भेद खुल गया और सार्वजनिक रूप से उनका वध करा दिया गया। वध से पूर्व शैख़ अबूबकर तूसी के शिष्यों में एक ने उस्तरे के द्वारा सीदी मौला के शरीर पर अनेक घाव कर दिये। अन्य अपराधियों को क्षमा मिल गयी।[1]

जलालुद्दीन खिलजी ने चंगेज़ ख़ाँ के पौत्र उलग़ू के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। अनेक मंगोल विवाह करके यहीं रह गये और 'नौमुस्लिम' कहलाये।

---

१. मध्ययुग का इतिहास, पृ० २०८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१२९६ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चचा और ससुर जलालुद्दीन खिलजी का वध कर दिया।

फ़रीदुद्दीन गंजशकर के मुरीद सीदी मौला के सार्वजनिक वध ने यह सिद्ध कर दिया कि लोग ऐसे व्यक्तियों को सम्राट बनाने की बात सोच सकते हैं, जो चिश्ती-परम्परा के सन्त हों। जलालुद्दीन खिलजी का ज्येष्ठ पुत्र सीदी मौला का शिष्य बना और उसी के संकेत पर सीदी मौला को हाथियों से कुचलवाया गया।

जलालुद्दीन खिलजी ने शैख़ निज़ामुद्दीन के पास आना चाहा, जब उसने छद्मवेश में आने का संकल्प किया, तब अमीर ख़ुसरो से इसकी सूचना पाकर शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती अजोधन चले गये।[1] यदि न जाते, तो सम्भवतः उनका अन्त भी सीदी मौला जैसा होता।

यह तो भगवान् जाने कि जलालुद्दीन खिलजी भक्तिपरक संगीत का कितना शौकीन था, परन्तु उसकी सभा में अनेकों सुन्दरी मधुबालाएँ थीं। दुख़्तरखासा, नुसरत बीबी और मेहरअफ़रोज जैसी अभिनयकुशल गायिकाएँ जलालुद्दीन खिलजी की संगीत गोष्ठियों का प्राण थीं।[2] यद्यपि जलालुद्दीन खिलजी के युग में अमीर ख़ुसरो शाही पुस्तकालय के अध्यक्ष थे, तथापि उनका कार्य पूर्वोक्त सुन्दरियों के सौन्दर्य एवं हाव-भाव की प्रशंसा में ग़ज़लों की रचना करना भी था।[3] जलालुद्दीन खिलजी ने अमीर ख़ुसरो का अत्यन्त सम्मान किया था।

अलाउद्दीन खिलजी (१२९६-१३१६ ई०)

अलाउद्दीन खिलजी अपने चचा और ससुर जलालुद्दीन खिलजी की हत्या करके राज-सिंहासन पर बैठा। इस हत्या से लोगों के भड़कने की सम्भावना थी, अतः इसी युग के एक अत्यन्त प्रतापी क़लन्दर शैख़ बू अली क़लन्दर को शान्त करने तथा उन्हें गा-बजाकर रिझाने के लिए अमीर ख़ुसरो का उपयोग किया गया। शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के गुरुबन्धु सीदी मौला की हत्या सार्वजनिक रूप में करानेवाले जलालुद्दीन खिलजी का वध चिश्ती-परम्परा के अनुरागियों को तो अच्छा ही लगा होगा, परन्तु उन क़लन्दरों को बुरा लगना चाहिए था, जो सूफ़ियों के परम शत्रु कहे जाते थे। एक महान् क़लन्दर की सम्भावित विरोधभावना को शान्त करने के लिए अमीर ख़ुसरो की प्रतिभा

---

१. निज़ामी बंसरी, पृ० ४७
२. खिलजीकालीन भारत, पृ० १५-१६
३. वही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

काम आयी।

"सजन सकारे जायँगे, नैन मरेंगे रोय।
विधना ऐसी रैन को भोर कधी ना होय॥"

शैख़ शरफ़ुद्दीन वू अली क़लन्दर की ही प्रसिद्ध उक्ति है।[1]

अलाउद्दीन का मन्त्री मलिक ख़तीरुद्दीन, कोतवाल अलाउल् मुल्क़, दो पुत्र ख़िज्र ख़ाँ और शादी ख़ाँ तथा भांजा मलिक नुसरतुद्दीन, सभी ख्वाजा निज़ामुद्दीन चिश्ती के मुरीद थे।[2] प्रसिद्ध इतिहासकार बरनी के अनुसार अलाउद्दीन खिलजी की प्रत्येक सफलता के मूल में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती का अनुग्रह था। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के गुरु बावा फ़रीदुद्दीन गंजशकर दक्षिण की यात्रा करके वहाँ सफल प्रचारकार्य कर ही चुके थे, वहाँ की भौगोलिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति से चिश्ती-परम्परा के प्रचारकों का परिचय हो ही चुका था, अतः दक्षिण भारत-विषयक यह ज्ञान अलाउद्दीन खिलजी के सेनापतियों के लिए वरदान हुआ।

सम्राट् होने से पूर्व जब अलाउद्दीन खिलजी ने १२९४ ई० में देवगिरि पर आक्रमण किया, तब मलिक नुसरतुद्दीन उसके साथ था और फ़िर सम्राट होने पर उसने देवगिरि से कर वसूल करने के लिए अमीर ख़ुसरो के गुरुबन्धु, मित्र, महाकवि, संगीतज्ञ और योद्धा हसन अला संजरी को सेना का अध्यक्ष बनाकर भेजा, जो यादववंशीय एक राजकुमार हरदेव को दिल्ली लाये, और उसे निज़ामुद्दीन चिश्ती का परम कृपापात्र बनाकर मुसलमान करने तथा उसका नाम अहमद अयाज़ रखवाने में सफल हुआ।[3]

अमीर ख़ुसरो ने अलाउद्दीन के शासन को जगमगा दिया था और शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती एवं शैख़ रुक्नुद्दीन (शैख़ बहाउद्दीन ज़करिया के पोते) ने भी अलाउद्दीन के यश का विस्तार करने के लिए अत्यधिक प्रयत्न किया था।[4]

१२९७ ई० में गुजरात, १२९९ ई० में रणथम्भोर, १३०३ ई० में चित्तौड़, १३०६-१३०७ ई० में देवगिरि, १३१० ई० में द्वारसमुद्र, १३११ ई० में मदुरा तथा १३१२ ई० में महाराष्ट्र पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया और चोल, चेर, पाण्ड्य, होयसल, काकतीय एवं यादव जैसे प्राचीन दाक्षिणात्य राजवंश दिल्ली-साम्राज्य के सम्मुख नतमस्तक हो गये। उत्तर में मुलतान,

---

१. अब्दुलहक़, पृ० १४
२. वही, पृ० ४७-४८
३. निज़ामी बंसरी, पृ० २१, २४, १८५
४. मध्ययुग का इतिहास, पृ० २४४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लाहौर और दिल्ली से लेकर दक्षिण में द्वारसमुद्र और मथुरा तक तथा पूरब में लखनौती (गौड़) और सुनारगाँव से लेकर पश्चिम में थट्टा और गुजरात तक अलाउद्दीन के साम्राज्य का विस्तार हो गया। निज़ामुद्दीन चिश्ती ने बड़े-बड़े नगरों में प्रचारकार्य के लिए अपने ऐसे सात सौ 'ख़लीफ़ा' (प्रतिनिधि) प्रचारक नियुक्त किये, जो 'साहबे हाल' (ईश्वरीय प्रेम में मग्न होकर झूमने और नाचनेवाले) और 'बाकरामत' (चमत्कारपूर्ण सिद्धियों से युक्त) थे।[1] स्पष्ट है कि ये भावमग्न होकर नाचनेवाले सूफ़ी जहाँ-जहाँ गये, अपने साथ क़व्वाली भी ले गये।

अलाउद्दीन को गुजरात की विजय (१२९७ ई०) में मलिक काफ़ूर जैसे सुन्दर, कुशल और योग्य दास की प्राप्ति हुई, जो गुजराती और दक्खिनी भाषा में भी निपुण था।[2] इसके साथ ही गुजरात से 'परवार' नामक एक नीच परन्तु अत्यन्त सुन्दर संगीतजीवी वर्ग के असंख्य नर-नारी बन्दी बनाकर दिल्ली लाये गये।[3] इस जाति के रूप और गुण के कारण अलाउद्दीन का पुत्र क़ुतुबुद्दीन खिलजी तक इस जाति के एक नौमुस्लिम युवक खुसरो ख़ाँ के संकेतों पर नाचने लगा। गुजरात के राजा कर्ण की पत्नी बन्दी बनाकर लायी गयी, जो अलाउद्दीन की अंकशायिनी बनने पर विवश हुई। सम्भवतः इसी के मनोविनोद के लिए परवार जाति की नारियों का प्रवेश भी अन्तःपुर में हुआ। देवलदेवी या दिवलरानी इसी रानी की पुत्री थी, जिसका विवाह अलाउद्दीन के पुत्र और शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के मुरीद खिज्र ख़ाँ के साथ हुआ। इस विवाह में दक्षिण भारत की गाने और नाचनेवाली नारियाँ विवाहोत्सव में अपनी कला का प्रदर्शन करने आयी थीं, जिनके सौन्दर्य और संगीत की प्रशंसा° अमीर खुसरो ने अपने ग्रन्थ 'दिवलरानी खिज्र ख़ाँ' में भूरि-भूरि की है।

सारांश यह है कि दास-दासियों के शौकीन मुस्लिम सेनापतियों को विजित प्रदेशों से मनमाने व्यक्तियों को बन्दी बनाकर दासों में परिवर्तन करने का अधिकार भी था और शौक भी। अमीर खुसरो सैनिक अभियानों पर प्रायः मलिक काफ़ूर के साथ रहते थे, संगीतजीवियों को बन्दी बनाकर दिल्ली में लाया जाना स्वाभाविक था, अतः दिल्ली में समस्त भारत के कलाकार एकत्र हो गये, जो शासक जाति के संकेत पर नाचने के लिए विवश थे। फलतः अलाउद्दीन की राजधानी भारतवर्ष-भर के संगीत की केन्द्र-स्थली हो गयी।

एक ओर तो अलाउद्दीन का मन्त्री, सेनापति, दो पुत्र खिज्र ख़ाँ और शादी

१: अब्दुल् ग़फ़ूर, पृ० १२४ पर उद्धृत 'गुलज़ारे अबरार'
२. निज़ामी बंसरी, पृ० २१८
३. वही, पृ० २२८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

खाँ तथा अमीर खुसरो इत्यादि प्रभावशाली व्यक्ति निज़ामुद्दीन चिश्ती के भक्त थे और अत्यन्त कठिन परिस्थिति में मंगोल आक्रामक तरग़ी का संकट भी शैख़ निज़ामुद्दीन की ही कृपा से[१] टलने के कारण अलाउद्दीन खिलजी भी निज़ामुद्दीन चिश्ती का उपकार मानता था, दूसरी ओर उसका प्रतापी सेनानी मलिक काफ़ूर शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती का घोर विरोधी था।[२] निज़ामुद्दीन चिश्ती के भक्तों का विचार यह था कि मलिक काफ़ूर अलाउद्दीन ख़िलजी की हत्या करके स्वयं सम्राट बनना चाहता है। उनका कहना था कि मलिक काफ़ूर ने ही धीरे-धीरे प्रभाव करनेवाला विष देकर अलाउद्दीन को मारने का प्रयत्न किया और उसी विष के प्रभाव से २ जनवरी १३१६ को अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु हो गयी।[३]

अलाउद्दीन की मृत्यु से ही पूर्व ही मलिक काफ़ूर ने निज़ामुद्दीन चिश्ती के मुरीदशाहज़ादा खिज्र खाँ और शादी खाँ और साथ-ही-साथ शाहज़ादा अबूबकर और राजमहिषी को ग्वालियर के दुर्ग में क़ैद करा दिया था। अलाउद्दीन खिलजी के मरने पर मलिक काफ़ूर ने अलाउद्दीन खिलजी के सप्त-वर्षीय पुत्र शहाबुद्दीन उमर को सिंहासनासीन किया और स्वयं उसका संरक्षक बनकर राजसत्ता अपने हाथ में ले ली।

लगता है कि केवल अपने लक्ष्य को दृष्टि में रखकर चलनेवाले शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती और उनके अनुयायियों ने चिश्ती-परम्परानुयायी खिज्र खाँ और शादी खाँ को भाग्य के भरोसे छोड़ दिया और मलिक काफ़ूर की हत्या उसी के अनुचरों के हाथ से होने के पश्चात् जब अलाउद्दीन खिलजी का पुत्र क़ुतुबुद्दीन खिलजी बादशाह हुआ और उसने खिज्र खाँ और शादी खाँ की हत्या करा दी, तब भी अमीर खुसरो क़ुतुबुद्दीन खिलजी की प्रशंसा में क़सीदे लिख-कर प्रभूत पुरस्कार प्राप्त करते रहे।

अपने भक्त सुल्तानों के करुण अन्त पर चुप रहना और अगले शासक का चुपचाप आश्रय लेना अमीर खुसरो का अपना स्वभाव था अथवा शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती की नीति, इसका निर्णय कठिन है।

शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती जन्मत: विशुद्ध भारतीय थे, उनके प्रधान शिष्य, महान कवि, लेखक और संगीतशास्त्री खुसरो जन्मत: भारतीय थे ही, मातृपक्ष से उनमें विशुद्ध भारतीय रक्त का मिश्रण हुआ था, उनके प्रयत्नों से भारतीय मुसलमान भारत को अपनी अध्यात्मक-भूमि मानने लगे,[४] अजमेर में मुईनुद्दीन

१. मध्ययुग का इतिहास, पृ० २१६, निज़ामी बंसरी, पृ० ८४-८६
२. निज़ामी बंसरी, पृ० २२०
३. वही, पृ० २२५
४. मध्ययुग का इतिहास, पृ० २४८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चिश्ती, दिल्ली में क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी और पाकपट्टन में बाबा फ़रीदुद्दीन गंजशकर की समाधि उनके लिए पवित्र तीर्थस्थल एवं श्रद्धा तथा प्रेरणा का केन्द्र बन गयी। न तो अलाउद्दीन ही क़ाजियों और मौलवियों के फ़तवों (धार्मिक व्यवस्थाओं) से बँधा हुआ था और न चिश्ती-परम्पराओं की नीति ही मुल्लाओं और क़ाजियों के दृष्टिकोण से मेल खाती थी, अतः मिश्रित रक्त और विशुद्ध भारतीय रक्त के मुसलमानों में अधिक भारतीयता आयी, इस स्थिति का श्रेय अलाउद्दीन खिलजी को दिया जाना चाहिए।

एक हज़ार दीनार में खम्भात के बाजार से खरीदे हुए दास को महान् सेनानी मलिक काफ़ूर के रूप में बदल देने और अपने रक्त का गर्व करनेवाले उच्च-वंशीय मुसलमानों की अँगुलियों पर न नाचने का काम अलाउद्दीन खिलजी ने किया, यह उस युग में सामान्य बात न थी। हिन्दुओं के साथ अलाउद्दीन खिलजी ने कैसा ही व्यवहार किया हो, परन्तु भारतीय मुसलमानों के साथ भेद-भाव उसने न किया।

उसके शासन के द्वारा स्थापित शान्ति ने दिल्ली को मुसलमान विद्वानों का केन्द्र बना दिया।

अलाउद्दीन खिलजी के मृत्यु-काल (१३१६ ई०) में शेख निज़ामुद्दीन चिश्ती की आयु अठहत्तर वर्ष थी और अमीर खुसरो तिरसठ वर्ष के थे।

अलाउद्दीन खिलजी ने बीस वर्ष (१२९६-१३१६) शासन किया। इन बीस वर्षों में निज़ामुद्दीन चिश्ती ने अपने प्रचारक समस्त भारत में भेजे, समस्त भारत के कोने-कोने से सहस्रों संगीतजीवी दिल्ली लाये गये, उन्हें मुस्लिम आचार-विचार एवं क़व्वाली की शिक्षा मिली। अमीर खुसरो, हसन अला संजरी, सैयद मुहम्मद इमाम, सैयद मुहम्मद मूसा, अहमद अयाज़ इत्यादि मुरीदों ने लोक-भाषा में चिश्ती-विचारों के प्रतिपादक गीतों की रचना निज़ामुद्दीन चिश्ती की प्रेरणा से की, अमीर खुसरो ने खुरासान और भारत के कलाकारों की प्रतियोगिताएँ आयोजित की, भारतीय रागों को मुक़ाम-पद्धति (मेल-पद्धति, संस्थान-पद्धति या ठाठ-पद्धति) में वर्गीकृत किया और ऐसे संकीर्ण रागों को जन्म दिया, जिनमें भारतीय और अभारतीय रागों का संकर था।

इन सब निष्कर्षों को देखते हुए निस्संकोच यह कहा जा सकता है कि भारतीय संगीतज्ञों के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन करने का उत्तरदायित्व अलाउद्दीन खिलजी के शासन-काल पर है।

क़ुतुबुद्दीन खिलजी (१३१६-१३२० ई०)

मलिक काफ़ूर ने अलाउद्दीन खिलजी के पुत्र मुबारक की हत्या का प्रयत्न किया था। परन्तु घातकों को लोभ देकर मुबारक ने अपनी ओर मिला लिया,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

फलतः मलिक काफ़ूर के विश्वनीय दास मलिक मुबश्शिर और बशीर ने निद्रा में निमग्न मलिक काफ़ूर का वध कर दिया और अलाउद्दीन ख़िलजी का पुत्र मुबारक 'क़ुतुबुद्दीन खिलजी' के नाम से गद्दी पर बैठा, उसने तत्काल मुबश्शिर और बशीर के वध की आज्ञा दी, जिन्होंने लोभावश अपने स्वामी मलिक काफ़ूर का वध किया था।

अपने मार्ग को निष्कण्टक करने के लिए क़ुतुबुद्दीन खिलजी ने अपने भाई खिज्र ख़ाँ और शादी ख़ाँ का भी वध करा दिया, खिज्र ख़ाँ के एक दसवर्षीय पुत्र की हत्या उसने स्वयं निर्दयतापूर्वक कर दी।

क़ुतुबुद्दीन खिलजी शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती की ओर से आशंकित था, उनके प्रभाव को कम करने के लिए उसने मुलतान से शैख़ बहाउद्दीन ज़करिया के पौत्र शैख़ रुक्नुद्दीन को दिल्ली में निमन्त्रित किया।[1] क़ुतुबुद्दीन खिलजी को आशंका थी कि अपने मुरीद खिज़्र ख़ाँ और शादी ख़ाँ के वध के कारण कहीं निज़ामुद्दीन चिश्ती उसके राज्य में विरोध न करा दें।[2] यद्यपि उस युग तक चिश्तियों और सुहरवर्दियों में प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गयी थी, तथापि शैख़ निज़ामुद्दीन और शैख़ रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी में संघर्ष न हुआ, क्योंकि अमीर ख़ुसरो क़ुतुबुद्दीन खिलजी के भी लाड़ले थे।

जिस तरह एक नौमुस्लिम मलिक काफ़ूर अलाउद्दीन का प्रेमपात्र, विश्वस्त और अनुग्रहभाजक था, उसी प्रकार परवार नामक संगीतजीवी जाति का एक सुन्दर नवयुवक खुसरो ख़ाँ क़ुतुबुद्दीन खिलजी का परम प्रेमपात्र और अत्यन्त अनुग्रहभाजन था। संगीतजीवी जाति में उत्पन्न होने पर भी खुसरो ख़ाँ ने तैलंगाना पर अत्यधिक सफलतापूर्ण अभियान किया।[3]

निज़ामुद्दीन चिश्ती के मुरीद इतिहासकार बरनी ने क़ुतुबुद्दीन खिलजी की अत्यन्त निन्दा की है। क़ुतुबुद्दीन खिलजी शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती का विरोधी था, अतः बरनी की लेखनी के द्वारा क़ुतुबुद्दीन खिलजी की निन्दा स्वाभाविक है।

क़ुतुबुद्दीन खिलजी स्वयं अच्छा गायक, नर्तक एवं अभिनेता था, सम्भव है खुसरो ख़ाँ एवं उसके सजातीय संगीतजीवी नर-नारियों के निकट-सम्पर्क से उसने संगीत में निपुणता प्राप्त की हो।

अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात जन-जीवन आनन्दपूर्ण बन गया था[4], फलतः संगीतज्ञ दास-दासियों की माँग बढ़ जाने के कारण उनका मूल्य अधिक

१. निज़ामी बंसरी, पृ० २३१
२. वही, पृ० २२८
३. मध्ययुग का इतिहास, पृ० २५१
४. वही, पृ० २५०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हो गया था।

शुष्क इतिहासज्ञों को भी यह मानना पड़ेगा कि भारत को सर्वश्रेष्ठ देश, भारतीय ब्राह्मणों को 'अरस्तू' के समान विचारक और विद्वान् तथा भारतीय संगीत को सर्वोत्तम और स्वयं को विश्व का अद्वितीय महाकवि घोषित करने की स्वतन्त्रता अमीर खुसरो को क़ुतुबुद्दीन खिलजी जैसे महान् संगीत-मर्मज्ञ और कलाकार सुल्तान के समय ही, इस युग में प्रणीत अपने ग्रन्थ 'नूह सिपहर' में मिली। कैक़ुबाद के राज्य-काल (१२८७-१२९० ई०) में विरचित अपने ग्रन्थ 'क़िरानुस्सादैन' में अमीर खुसरो ने स्वयं को ईरानी संगीत का मर्मज्ञ कहा था और क़ुतुबुद्दीन खिलजी के युग तक उनका विकास ऐसे मुसलमान के रूप में हो चुका था, जिसे भारत और भारतीयता पर गर्व था।

क़ुतुबुद्दीन खिलजी के परम कृपापात्र खुसरो खाँ ने एक षड्यन्त्र करके (१३२० ई०) में क़ुतुबुद्दीन खिलजी के शयनागार में उसका वध कर दिया और 'नासिरुद्दीन' के नाम से गद्दी पर बैठा।

नासिरुद्दीन (१३२०-१३२० ई०)

खुसरो खाँ गुजराती था, उसके सजातीय नर-नारियों को बलात् बन्दी बनाकर दिल्ली लाया गया था, उसके राजा को दर-दर का भिखारी बनाकर रानी को बलात् अलाउद्दीन की अंकशायिनी बना दिया गया था। राजपुत्री देवलदेवी को भी खिज्र खाँ के निकाह में दे दिया गया था और खिज्र खाँ की मृत्यु के पश्चात् उसे अपने पति के हत्यारे क़ुतुबुद्दीन खिलजी की भी काम-लिप्सा को शान्त करने का साधन बनना पड़ा था, अतः खुसरो खाँ के मन में अलाउद्दीन खिलजी और उसकी सन्तानों के प्रति घृणा और विद्रोह होना स्वाभाविक था।

'अहमद अयाज़' (भूतपूर्व राजकुमार हरदेव) से क़ुतुबुद्दीन खिलजी के जीवन-काल में ही खुसरो खाँ ने प्रायः कहा था कि ये मुसलमान बाहर से इस देश में आये हैं और इन्होंने हम हिन्दुओं को अपना दास बना लिया है। मैं तुझे दिखा दूँगा कि इन मुसलमानों को कैसा दण्ड दिया जाता है।[1] अनेक इतिहासों में भी यह लिखा है कि क़ुतुबुद्दीन खिलजी के वध में सफल होने के दो वर्ष पूर्व से ही खुसरो खाँ उसकी हत्या करने का प्रयत्न कर रहा था।[2] उसने चालीस हज़ार गुजराती हिन्दू दिल्ली में जमा कर लिये थे।[3]

---

१. चेहलरोज़ा, निज़ामी बंसरी, पृ० २५० पर उद्धृत
२. निज़ामी बंसरी, पृ० २५८
३. वही, पृ० २६७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इब्नेबतूता ने खुसरो को अत्यन्त सुन्दर और वीर युवक कहा है। उसके भाई जाहरिया को 'खानखाना' की उपाधि थी।[१] जाहरिया के साहस से ही क़ुतुबुद्दीन खिलजी का वध सम्भव हो सका था।

क़ुतुबुद्दीन खिलजी ने आदेश दिया था कि हज़रत निज़ामुद्दीन चिश्ती को बलात् उसकी सेवा में उपस्थित किया जाये, परन्तु उसी रात को क़ुतुबुद्दीन खिलजी का वध हो गया।[२] खुसरो खाँ ने क़ुतुबुद्दीन खिलजी का वध करके जहाँ अनेक व्यक्तियों को धन बाँटा था, वहाँ शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती की दरगाह में भी पाँच लाख तनके भेजे थे, जो शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती ने अनाथों को बाँट दिये थे।[३]

शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती ने खुसरो खाँ के द्वारा भेजे हुए पाँच लाख तनके ले लिये और खुसरो खाँ ने उसी रात को क़ुतुबुद्दीन खिलजी का वध किया, जिस रात को निज़ामुद्दीन चिश्ती बलात् क़ुतुबुद्दीन खिलजी के सामने उपस्थित किये जानेवाले थे, सम्भवतः इसी लिए कुछ अंग्रेज इतिहासकारों को क़ुतुबुद्दीन खिलजी की हत्या में शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के द्वारा किये हुए षड्यन्त्र की गन्ध आती है।[४] इतना सिद्ध है कि शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के प्रिय मुरीद 'अहमद अयाज़' (हरदेव) के समक्ष क़ुतुबुद्दीन के वध विषय के में खुसरो खाँ ने अपने विचार निस्संकोच व्यक्त किये थे। क़ुतुबुद्दीन खिलजी के वध के पश्चात् 'अहमद अयाज़' ने अपने माँ-बाप के साथ दिल्ली छोड़कर देवगिरि का रास्ता पकड़ा था।[५] यह यात्रा भी अंग्रेज इतिहासकारों के मन में सन्देह उत्पन्न करनेवाली है। निज़ामुद्दीन चिश्ती अथवा उनके किसी भी मुरीद के द्वारा खुसरो खाँ के राज्य-काल में दिल्ली से न जाना, पर 'अहमद अयाज़' (राजकुमार हरदेव) के द्वारा तत्काल दिल्ली से बाहर भागना एक तटस्थ व्यक्ति के मन में यह सन्देह जगा सकता है कि कहीं 'अहमद अयाज़' षड्यन्त्रकारी होने के कारण ही तो बचने के लिए नहीं भागा था, क्योंकि भविष्य में जब ग़यासुद्दीन तुग़लक़ भी लकड़ी के जिस महल के नीचे दबकर मरा, वह भी इसी अहमद अयाज़ का बनवाया हुआ था।[६] यह भी सिद्ध है कि अहमद अयाज़ लाख मुसलमान हो गया हो, परन्तु उसके मन में देवगिरि का विध्वंस करनेवाले अलाउद्दीन खिलजी और क़ुतुबुद्दीन खिलजी के प्रति घोर घृणा थी।[७]

---

१. इब्नेबतूता, निज़ामी बंसरी, पृ० २६१-२६२ पर उद्धृत
२. निज़ामी बंसरी, २४९
३. वही, पृ० २७३
४. वही, पृ० २५७, टिप्पणी-भाग
५. वही, पृ० २५६, २७३
६. वही, पृ० ३२२
७. वही, पृ० २५०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संगीत के विद्यार्थी के लिए खुसरो खाँ के इतिहास में देखने योग्य बात यह है कि संगीतजीवी जातियों में भी योजक मस्तिष्क था, वे अवसर पड़ने पर ऐसे व्यक्तियों का मिर्माण भी अपने वर्ग में से ही कर सकती थीं, जो तलवार के धनी भी हों और भारत पर हिन्दुओं का साम्राज्य स्थापित करने के लिए प्रबल प्रयत्न करने में समर्थ हों।

मुस्लिम इतिहासकारों ने खुसरो खाँ को गालियाँ देने में कोई कमी नहीं की। वे कहते हैं कि शाही हरम (अन्तःपुर), अमीरों और सरदारों की स्त्रियों को खुसरो खाँ के सजातीयों और अनुयायियों ने परस्पर बाँट लिया।[1] यदि यह सत्य है, तो यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि खुसरो की सजातीय नारियों के साथ ठीक ऐसा ही व्यवहार अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति उलुग़ खाँ और नुसरत खाँ के सैनिकों ने किया था। मुस्लिम इतिहासकार यह भी कहते हैं कि खुसरो खाँ के सैनिकों द्वारा मस्जिदों में मूर्तियों की स्थापना की गयी और क़ुरान को इन मूर्तियों का आसन बनाया गया।[2] यदि यह सत्य है, तो यह भी नहीं भूला जाना चाहिए कि मन्दिरों को तोड़कर उनकी सामग्री से मस्जिदों का निर्माण उस युग में मुस्लिम आक्रान्ताओं के लिए सामान्य बात थी। हम खुसरो खाँ के कृत्यों को कदापि उचित नहीं कहेंगे, क्योंकि अनुचित कार्य सदैव अनुचित है, भले ही वह प्रतिक्रिया में किया गया हो, परन्तु यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि खुसरो खाँ का जन्म किसी उच्च संस्कारसम्पन्न जाति में नहीं हुआ था, वह अपनी वर्बरता में अपने शासकों का ही शिष्य था।

यद्यपि खुसरो खाँ ग़ाजी मलिक से पराजित हुआ, परन्तु यह पराजय छल का परिणाम थी। ग़ाजी मलिक (ग़यासुद्दीन तुग़लक़) ने दिल्ली के सरदारों से स्पष्ट शब्दों में स्वयं यह कहा था कि यदि अन्य लोग खुसरो खाँ पर पीछे से आक्रमण न करते थे, तो हम हिन्दू सेना को पराजित न कर सकते थे।[3]

यद्यपि खुसरो खाँ और उसका भाई ग़ाज़ी मलिक की सेनाओं के द्वारा पकड़े और मार डाले गये, तथापि अपनी वीरता सिद्ध कर गये।

खुसरो खाँ संगीतजीवी जाति में उत्पन्न एक स्वतन्त्र सम्राट था, भले ही उसका शासनकाल केवल चार महीने रहा हो। इब्नेबतूता जैसे विदेशी यात्री ने उसे वीर पुरुष कहा है। क़ुतुबुद्दीन खिलजी में उसने अद्भुत संगीत-प्रेम उत्पन्न कर दिया। क़ुतुबुद्दीन खिलजी के जीवन-काल में उसे वीरता प्रदर्शित करने का अवसर मिला और वह परीक्षा में खरा उतरा था।

---

१. मध्ययुग का इतिहास, पृ० २५३

२. वही

३. निज़ामी बंसरी, पृ० २५९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तुग़लक़-वंश, सूफ़ी और संगीत
(१३२०-१३८८ ई०)

ग़यासुद्दीन तुग़लक़ (१३२०-१३२५ ई०)

ग़यासुद्दीन का पिता 'क़रौना' वर्ग का तुर्क और माँ पंजाब की जाटनी थी। उसकी पत्नी भी हिन्दू थी। ख़ुसरो ख़ाँ के वध के पश्चात् वह सभी अमीरों की सम्मति से सिंहासन पर बैठा था और उसने लोगों से ख़ुसरो ख़ाँ के द्वारा बाँटा हुआ धन वापस लिया। निज़ामुद्दीन चिश्ती ने ख़ुसरो ख़ाँ के द्वारा भेजे हुए पाँच लाख तनके अनाथों में बाँट दिये थे, अतः वे लौटाने में असमर्थ रहे। इस पर ग़यासुद्दीन चुप तो हो गया, परन्तु उसके मन में शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के प्रति मैल उत्पन्न हो गया।[1]

ग़यासुद्दीन तुग़लक़ अलाउद्दीन ख़िलजी के युग से मुलतान और दीवालपुर की ओर साम्राज्य की सीमा का रक्षक का। उसके मन में शैख़ बहाउद्दीन ज़करिया के प्रति श्रद्धा थी, इसलिए उसने उनकी समाधि के निकट ही अपने लिए मक़बरे की इमारत बनवायी थी।[2] उस युग में शैख़ शहाबुद्दीन जाम, क़ुतुबुद्दीन ख़िलजी के पीर मौलाना ज़ियाउद्दीन रूमी और शैख़ नूरुद्दीन फ़िरदौसी जैसे दरवेश निज़ामुद्दीन चिश्ती के विरोधी थे।[3] ग़यासुद्दीन तुग़लक़ के सिंहासनारोहण से पूर्व मौलाना ज़ियाउद्दीन रूमी का तो देहान्त हो चुका था, परन्तु निज़ामुद्दीन चिश्ती के विरोधी आलिमों की कमी न थी। ये लोग किसी-न-किसी उपाय से शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती को अपमानित करना चाहते थे।

निज़ामुद्दीन चिश्ती घर के अन्दर भी गाना सुनते थे और सर्वसामान्य गोष्ठियों में भी, उस गाने में कभी वाद्य होते थे और कभी नहीं भी होते थे। इसी बात को बहाना बनाकर ग़यासुंद्दीन ने एक आम दरबार का आयोजन किया

---

१. निज़ामी बंसरी, पृ० ७३
२. वही, पृ० २७५
३. वही, पृ० २३७-२३८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और उसमें शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती को इस्लाम की दृष्टि से संगीत का औचित्य सिद्ध करने के लिए राज्य के मुफ़्ती (प्रधान धर्माधिकारी) से शास्त्रार्थ करने की आज्ञा दी। शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें संयोगवश शैख़ बहाउद्दीन ज़करिया के पोते शैख़ इल्मुद्दीन सुहरवर्दी भी आ गये। उन्होंने उस अवसर पर कहा कि किसी भी इस्लामी देश में कोई मुसलमान बादशाह सूफ़ियों को गाना सुनने से नहीं रोकता, ईश्वरीय भक्ति में निमग्न होकर गाना-बजाना सर्वथा उचित है और शैख़ निज़ामुद्दीन एवं उनके मुरीद सर्वथा गाने-बजाने के लिए पात्र हैं।[1]

शैख़ इल्मुद्दीन चिश्ती की व्यवस्था पर ग़यासुद्दीन ठगे चुप होकर उनके साथ उठ गया, परन्तु उसके चले जाने पर निज़ामुद्दीन चिश्ती के विरोधियों ने निज़ामुद्दीन चिश्ती के प्रति अनेक अपशब्द कहे और उन पर आक्रमण करने के लिए हथियार निकाल लिये, इसके उत्तर में अहमद अयाज़, ख्वाजा सैयद मुहम्मद इमाम और सैयद रफ़ीउद्दीन हारून ने भी ख़ंजर निकाल लिये। उस समय जैसे-तैसे रक्तपात टल गया।[2]

ग़यासुद्दीन तुग़लक़ अपने बड़े पुत्र उलुग़ ख़ाँ (मुहम्मद तुग़लक़) से सन्तुष्ट नहीं था और अपने छोटे पुत्र महमूद को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था।[3] १३२४ ई० में ग़यासुद्दीन तुग़लक़ अपने छोटे बेटे महमूद को साथ लेकर सैनिक अभियान में बंगाल गया, अमीर ख़ुसरो उसके साथ गये। दिल्ली का प्रबन्ध उलुग़ ख़ाँ को सौंप दिया गया। उलुग़ ख़ाँ छद्मवेश में शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के दर्शन के लिए आया और उसने शीघ्र ही अहमद अयाज़ (हरदेव) को 'अमीर इमारत' (नये प्रासादों के निर्माण-विभाग का अध्यक्ष) बना दिया।[4]

ग़यासुद्दीन तुग़लक़ को अपने गुप्तचरों से सबकुछ ज्ञात हो गया और उसने एक पत्र के द्वारा शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती को आदेश दिया कि मेरे दिल्ली पहुँचने से पूर्व तुम दिल्ली छोड़कर चले जाओ। शैख़ निज़ामुद्दीन ने उस पत्र पर अपना यह ऐतिहासिक वाक्य लिखा—'दिल्ली अभी दूर है।'[5] यह पत्र इसी रूप में पत्रवाहक को लौटा दिया गया।

उलुग़ ख़ाँ के नाम एक पत्र में ग़यासुद्दीन तुग़लक़ ने अहमद अयाज़ को 'अमीर इमारत' बनाने और निज़ामुद्दीन चिश्ती की सेवा में उपस्थित होकर उनसे अपनी बादशाहत की दुआ प्राप्त करने पर उसकी भर्त्सना की और कहा

१. निज़ामी बंसरी, पृ० २९४
२. वही, पृ० २९४-२९५
३. वही, पृ० ३०२
४. वही, पृ० ३०७, ३१५
५. वही, पृ० ३१६-३१७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कि यदि उलुग़ खाँ ने अपने आचरण में सुधार न किया, तो उससे युवराज-पद छीना जा सकता है।[1]

इस परिस्थिति में यह सिद्ध हो गया कि ग़यासुद्दीन तुग़लक़ न तो उलुग़ खाँ से प्रसन्न है और न निज़ामुद्दीन चिश्ती और उनके प्रिय मुरीद 'अहमद अयाज़' से, अत: इन तीनों के कान खड़े हो गये।

ग़यासुद्दीन तुग़लक़ दिल्ली की ओर लौट रहा था, अहमद अयाज़ ने शाहज़ादा उलुग़ खाँ की आज्ञा से नगर से तीन कोस दूर केवल तीन दिन में लकड़ी का एक महल बनवाया, जिसमें बादशाह का स्वागत किया जा सके। बादशाह के पहुँचने पर उसे इस महल में भोजन कराया गया, उस अवसर पर शैख रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी भी उपस्थित थे। शाहज़ादा उलुग़ खाँ ने अहमद अयाज़ को बादशाह की सेवा में जब प्रस्तुत किया, तब बादशाह ने उलुग़ खाँ से पूछा कि अब तक यह नौकरी से क्यों न हटाया गया तथा निज़ामुद्दीन चिश्ती दिल्ली से क्यों न निकाले गये। शाहज़ादा उलुग़ खाँ ने इस प्रश्न को टालते हुए शैख रुक्नुद्दीन का ध्यान नमाज़ की ओर आकृष्ट करके उन्हें बाहर भेज दिया और स्वयं भी अहमद अयाज़ के साथ बाहर जाकर उसने उपहार के हाथी अन्दर भेज दिये, जिनके भार से फ़र्श दब गया, लकड़ी का महल भरभराकर गिर पड़ा, परिणामत: ग़यासुद्दीन तुग़लक़, उसका छोटा बेटा महमूद और ग़यासुद्दीन के सभी विश्वस्त अनुचर दबकर मर गये।[2]

इब्नेबतूता से शैख रुक्नुद्दीन ने कहा था कि लकड़ी का यह भवन अहमद अयाज़ ने बनाया ही ऐसा था कि निश्चित समय पर ढह जाये। दबे हुए लोगों के निकालने के लिए मजदूरों के आने में उलुग़ खाँ ने जानबूझकर देर करायी, इस कार्य के पुरस्कार-स्वरूप अहमद अयाज़ को बादशाह होने पर उलुग़ खाँ (मुहम्मद तुग़लक़) ने अपना महामन्त्री[3] बनाया। निज़ामुद्दीन अहमद के अनुसार ग़यासुद्दीन तुग़लक़ की मृत्यु शैख निज़ामुद्दीन और युवराज (उलुग़ खाँ) के षड्यन्त्र का परिणाम थी।[4] कुछ अंग्रेज इतिहासकारों ने भी इस दृष्टिकोण से सहमति प्रकट की है।[5]

अस्तु, रातोंरात ग़यासुद्दीन तुग़लक़ और उसका प्रिय पुत्र मुहम्मद किले के निकट उसी के बनवाये हुए मक़बरे में दफ़न कर दिये गये।[6]

---

१. निज़ामी बंसरी, पृ० ३१७
२. वही, पृ० ३२१-३२२ पर उद्धृत 'चेहलरोज़ा'
३. मध्ययुग का इतिहास, पृ० २६०, पाद-टिप्पणी
४. वही, पृ० २६१, पाद-टिप्पणी
५. निज़ामी बंसरी, पृ० ३२३
६. वही, पृ० ३२२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सम्राट् होने पर उलुग़ खाँ 'मुहम्मद तुग़लक़' के नाम से गद्दी पर बैठा और उसने 'अहमद अयाज़' को 'ख्वाजाजहाँ' उपाधि देकर अपना दामाद बना लिया।[1]

मुहम्मद तुग़लक़ की माँ भी हिन्दू थी और दादी भी, परन्तु मुहम्मद तुग़लक़ ने सम्राट होने के पश्चात् देवगिरि के यादववंशीय राजकुमार हरदेव (अहमद अयाज़) को अपना दामाद और महामन्त्री बनाकर एक अभूतपूर्व उदाहरण उपस्थित किया।

अस्तु, ग़यासुद्दीन तुग़लक़ के युग में संगीत की उन्नति तो क्या होती, जब कि निज़ामुद्दीन चिश्ती तक को अपनी जान के लाले पड़े हुए थे।

इन परिस्थितियों से यह सिद्ध होता है कि जब दिल्ली में चिश्ती सूफ़ियों का प्रभाव घटता था, तब संगीत को भी ग्रहण लग जाता था।

मुहम्मद तुग़लक़ (१३२५-१३५१ ई०)

१३२५ ई. में मुहम्मद तुग़लक़ बादशाह हुआ, डेढ़ महीने बाद ही शैख निज़ामुद्दीन चिश्ती की मृत्यु हो गयी।[2] मुहम्मद तुग़लक़ ने जनाज़े को कन्धा दिया,[3] जिसके आगे-आगे क़व्वाल गाते चल रहे थे। ऐसे भी असंख्य व्यक्ति शवयात्रा में सम्मिलित थे, जो क़व्वाली के विरोधी थे।[4]

अमीर खुसरो ग़यासुद्दीन तुग़लक़ के साथ बंगाल गये थे, परन्तु लौटते समय दिल्ली न आकर अपनी जन्म-भूमि परियाली चले गये थे। शैख निज़ामुद्दीन चिश्ती के देहान्त का समाचार पाकर वे दिल्ली आये और कुछ ही दिनों में उनका भी स्वर्गवास हो गया। चिश्ती-परम्परा के सूर्य और चन्द्र दोनों अस्त हो गये।

मुहम्मद तुग़लक़ इस्लाम का मर्मज्ञ, महान् दार्शनिक, साहित्य का अटूट विद्वान, ललित-कलाओं का चूड़ान्त पण्डित, उदार दानी परन्तु अत्यन्त कठोर शासक था। अपनी आज्ञा की अवहेलना करनेवालों को क्रूरतम दण्ड देना उसके लिए सामान्य बात थी। इस्लाम के विधि-विधान को वह मौलवियों, क़ाजियों और सूफ़ी दरवेशों की अपेक्षा कहीं अधिक समझता था, अतः वह इनके अनुवर्तन के स्थान पर इनका शासन करता था। उसने ऐसे शैखों और सैयदों तक का वध करा दिया,[5] जो राजनीति में लिप्त रहते थे और अवध्य कहे जाते थे।

१. निज़ामी बंसरी, पृ० ३२६
२. वही, पृ० ३२४
३. वही, पृ० ३३७
४. वही
५. मध्ययुग का इतिहास, पृ० २७६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इन लोगों की ओर से उसका सतर्क रहना स्वाभाविक था, क्योंकि उसने स्वयं अपने पिता का वध शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के प्रसिद्ध मुरीद अहमद अयाज़ की सहायता से प्राप्त किया था।

उसने एक विशेष दरबार का आयोजन करके शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के प्रधान ख़लीफ़ा शैख़ नसीरुद्दीन चिराग़देहली, मौलाना फ़ख़रुद्दीन ज़रादी और मौलाना शम्सुद्दीन याह्या को बुलाया और चिश्ती-परम्परा के प्रचार के लिए उन्हें दक्षिण जाने का आदेश दिया।[१] मुहम्मद तुग़लक़ की इस नीति का विरोध चिश्ती-परम्परा के सूफ़ियों में होना स्वाभाविक था, निज़ामुद्दीन चिश्ती के परम भक्त अमीर खुर्द की प्रसिद्ध रचना 'सियरुल् औलिया' में सूफ़ियों पर मुहम्मद तुग़लक़ द्वारा की हुई कठोरताओं की विस्तृत चर्चा है।[२]

मुहम्मद तुग़लक़ शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के प्रधान आध्यात्मिक उत्तराधिकारी शैख़ नसीरुद्दीन चिराग़देहली को तंग करने में कोई कसर उठाकर नहीं रखता था।[३] ख़ानकाह में उसके आदेश प्रायः पहुँचते रहते थे, जिनके अनुसार आचरण करने में ख़ानकाह के अधिकारी चिश्ती-परम्परा का अपमान समझते थे और उन आदेशों के उल्लंघन में प्राणों का भय था।[४]

निज़ामुद्दीन चिश्ती के सहयोगी, अमीर ख़ुसरो के परम मित्र, साम्राज्य के महामन्त्री, सम्राट के दामाद, देवगिरि-निवासी अहमद अयाज़ (राजकुमार हरदेव) को शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के मुरीद प्रसिद्ध इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी ने अनेक गालियाँ दी हैं।[५] एक तटस्थ व्यक्ति के मन में ये शंकाएँ उठना स्वाभाविक है कि सिंहासन पर बैठते ही मुहम्मद तुग़लक़ शैख़ निज़ामुद्दीन के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी शैख़ नसीरुद्दीन चिराग़देहली को क्यों तंग करता था, ख़ानकाह के लिए उसने आदेश भेजने क्यों आरम्भ कर दिये, चिराग़देहली और उनके साथियों को दिल्ली से बाहर अलग - अलग स्थानों पर वह क्यों भेजना चाहता था ?

यह स्मरणीय है कि मुहम्मद तुग़लक़ की दृष्टि में ख़्वाजा सैयद रफ़ीउद्दीन हारून निज़ामुद्दीन चिश्ती के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी के योग्य थे।[६] यह भी आश्चर्य की बात है कि अहमद अयाज़ के सम्मुख उसे अपना दामाद बनाने

---

१. अब्दुल ग़फ़ूर, पृ० १३०
२. वही, पृ० १३६
३. वही, पृ० १२७
४. वही, पृ० १३६
५. तुग़लक़कालीन, भाग-२, पृ० ५, १३-१५
६. निज़ामी बंसरी, पृ० ३३८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का प्रस्ताव मुहम्मद तुग़लक़ ने शैख़ रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी के द्वारा भेजा था[1], किसी चिश्ती-परम्परा के व्यक्ति द्वारा नहीं। सिंहासनासीन होते ही मुहम्मद तुग़लक़ ने अपनी लड़की का विवाह चुपचाप गुप्त रूप से अहमद अयाज़ (राजकुमार हरदेव) से कर दिया था।[2]

रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी को क़ुतुबुद्दीन खिलजी ने शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के प्रतिपक्षी के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहा था, ग़यासुद्दीन तुग़लक़ के साथ काठ के महल में बैठे हुए रुक्नुद्दीन को मुहम्मद तुग़लक़ ने नमाज़ के बहाने बाहर भेज दिया था, रुक्नुद्दीन यह जानते थे कि काठ का वह महल इस ढंग से बनाया गया था कि निश्चित समय पर वह गिर जाये और रुक्नुद्दीन ही अहमद अयाज़ के पास सुल्तान मुहम्मद तुग़लक़ का प्रस्ताव ले जाकर अहमद अयाज़ को चुपचाप मुहम्मद तुग़लक़ का दामाद बनवाने में सफल हुए। शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के मरते ही मुहम्मद तुग़लक़ ने उनके खलीफ़ाओं और मुरीदों को तितर-बितर करके दिल्ली से दूर भेजना चाहा और अहमद अयाज़ यह सबकुछ चुपचाप देखता रहा।

इन परिस्थितियों को देखकर कोई यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि क़ुतुबुद्दीन खिलजी की योजना मुहम्मद तुग़लक़ के सम्राट होने पर सफल हुई और दिल्ली-सम्राट के विश्वासपात्र रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी हो गये तथा चिश्ती-परम्परा प्रताड़ित होने लगी। मुहम्मद तुग़लक़, महामन्त्री अहमद अयाज़ और रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी का एक पक्ष बन गया।

चिश्ती-परम्परा के साथ संघर्ष और अधिकारियों के गुप्त असहयोग मुहम्मद तुग़लक़ की राजनीतिक असफलताओं में प्रधान कारण थे।

सिंहासन पर बैठने के एक-डेढ़ वर्ष पश्चात् ही मुहम्मद तुग़लक़ ने अपनी राजधानी को अपने महामन्त्री ख्वाजा अहमद अयाज़ (राजकुमार हरदेव) की जन्मभूमि देवगिरि में स्थानान्तरित करने का निश्चय किया, हो सकता है कि नवीन राजधानी के चुनाव में महामन्त्री का जन्मभूमिप्रेम कारण रहा हो। यह लिखा जा चुका है कि महामन्त्री के मन में अपनी जन्मभूमि को आक्रान्त और पददलित करनेवाले मुसलमान बादशाहों के प्रति असन्तोष और विद्रोह था। हो सकता है कि उस जैसे कूटनीतिज्ञ ने मुहम्मद तुग़लक़ के विनाश के लिए ही उसे राजधानी 'देवगिरि' में स्थानान्तरित करने की प्रेरणा दी हो।

हम देखते हैं कि १३३६ ई० में दक्षिण में हिन्दुओं के विजयनगर साम्राज्य और १३४७ ई० में दक्षिण में ही विजयनगर के प्रतिस्पर्द्धी और निज़ामुद्दीन

---

१. निज़ामी बंसरी, पृ० ३२९

२. वही, पृ० २३२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चिश्ती के परम भक्त शिया धर्म्मावलम्बी बहमनी साम्राज्य का उदय हुआ।

१३२६-२७ ई० में मुहम्मद तुग़लक़ अपनी राजधानी देवगिरि ले गया था, कुछ ही समय पश्चात् उसे वहाँ कठिनता का अनुभव हुआ और दिल्ली की प्रजा पुनः पुरानी राजधानी दिल्ली में लौटी, परन्तु दिल्ली की पुरानी शोभा नष्ट हो चुकी थी।

२० मार्च, १३५१ ई० को जब मुहम्मद तुग़लक़ का देहान्त हुआ, तब उसका साम्राज्य बिखर चुका था।

अस्तु, मुहम्मद तुग़लक़ के दरबार में बारह सौ गायक ऐसे थे जो गाते भी थे और गाने की शिक्षा भी देते थे। (सम्भवतः ये जन्मजात मुसलमान और वेतनभोगी थे।) एक सहस्र गायक 'दास' थे। ये सम्भवतः हिन्दू थे, इसीलिए दास थे और शिक्षक गायकों से शिक्षा प्राप्त करते थे, इनका कार्य केवल गाना था, सिखाना नहीं। सुल्तान के गायकों में से यदि कोई कहीं अन्यत्र गा देता, तो मृत्युदण्ड का पात्र होता था।[1]

ईद के दरबार में उस वर्ष पराजित हिन्दू राजाओं की राजकुमारियों को भरे दरबार में गवाया और नचाया जाता था, तत्पश्चात् वे मुख्य अमीरों या परदेसियों को बाँट दी जाती थीं। तत्पश्चात् अन्य पराजित हिन्दुओं की पुत्रियाँ दरबार में गातीं और नाचतीं तथा सुल्तान के भाइयों, सम्बन्धियों और पुत्रों में बाँट दी जाती थीं। अगले दिन बन्दी बनायी हुई गायिकाएँ आती थीं और गाने-नाचने के बाद दासों को सौंप दी जाती थीं।[2]

मुहम्मद तुग़लक़ ने इब्नेबतूता के हाथ चीन के बादशाह के लिए उपहार-स्वरूप गीत-नृत्य-कुशल सौ दास-दासी भेजे थे।[3]

संगीतज्ञों, वादकों और नर्तकों को ही बादशाह के समक्ष सवार होकर चलने का आदेश था।[4] उसके दरबार में अरबी, फ़ारसी और हिन्दी के एक सहस्र कवि थे।[5]

फ़ीरोज़ तुग़लक़ (१३५१-८८ ई०)

थट्टा की ओर अभियान करते समय मार्ग में ही मुहम्मद तुग़लक़ का देहान्त हुआ। शैख़ नसीरुद्दीन चिराग़देहली को भी उसकी आज्ञा के अनुसार

---

१. तुग़लक़कालीन भारत, भाग-१, पृ० ३१७
२. वही, पृ० १८९
३. वही, पृ० १८९
४. वही, पृ० २४७
५. वही, पृ० ३१७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इस अभियान में साथ जाना पड़ा था। मुहम्मद तुग़लक़ की मृत्यु के पश्चात् शैख़ नसीरुद्दीन[1] इत्यादि सूफ़ियों तथा अन्य सरदारों की प्रेरणा पर फ़ीरोज़ तुग़लक़ बादशाह हुआ। वह बाबा फ़रीदुद्दीन गंजशकर के नाती शैख़ अलाउद्दीन का मुरीद था।[2] उसके शासन-काल में शैख़ फ़रीदुद्दीन, शैख़ बहाउद्दीन ज़करिया, शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती, शैख़ रुक्नुद्दीन सुहरवर्दी तथा शैख़ बहाउद्दीन ज़करिया के प्रसिद्ध ख़लीफ़ा शैख़ जमालुद्दीन तथा कुछ अन्य प्राचीन शैख़ों के वंशज ग्राम, भूमि तथा उद्यान पाकर फिर से अपने स्थान पर दृढ़ हो गये।[3] यही लोग मुहम्मद तुग़लक़ से असन्तुष्ट थे, फ़ीरोज़ ने इन्हें अपने अनुकूल बनाया।

हाँसी के प्रसिद्ध सूफ़ी और शैख़ नसीरुद्दीन के परम बन्धु शैख़ क़ुतुबुद्दीन मुनव्वर ने दिल्ली पर फ़ीरोज़ के अधिकार के लिए प्रार्थना की[4] और वे उसके सकुशल दिल्ली पहुँचने में सहायक हुए, तथापि उनके कहने पर भी फ़ीरोज़ ने शराब छोड़ने की प्रतिज्ञा न की।[5] फ़ीरोज़ का तात्पर्य तो जन-साधारण के मत को प्रभावित करनेवाले सूफ़ियों का राजनीतिक उपयोग करना था।

कट्टरपन में फ़ीरोज़ औरंगज़ेब से कम न था। उसने इस्लाम स्वीकृत न करनेवाले एक ब्राह्मण को ज़िन्दा जलवा दिया।[6] शिया मुसलमानों के प्रमुख नेताओं का वध कराया, अनेक को देश से निकाला और पर्याप्त व्यक्तियों को कारागार में डाल दिया, एक प्रसिद्ध स्वतन्त्र विचारक सूफ़ी अहमद बिहारी की हत्या करा दी, रुक्नुद्दीन नामक एक और विचारक को मरवा डाला, 'अनल् हक़' (मैं ब्रह्म हूँ) कहनेवाले एक गुजराती फ़क़ीर का वध करा दिया, मज़ारों और मेलों में नारियों के जाने पर प्रतिबन्ध लगाया और अनेक मन्दिर तुड़वाकर मस्जिदें बनवायीं।[7]

यद्यपि उसने शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के मक़बरे के द्वार बनवाये, जाफ़रियाँ भी चन्दन की बनवायीं, सोने की ज़जीरों वाली कन्दीलें भी गुम्बद के चारों कोनों पर लटकवायीं और एक नया जमाअतख़ाना भी बनवाया,[8] तथापि धार्मिक

---

१. तुग़लक़कालीन भारत, भाग-२, पृ० ८
२. वही, पृ० १४७
३. वही, पृ० ३३
४. वही, पृ० ५६
५. वही, पृ० ६२
६. वही, पृ० १५०
७. वही, पृ० ३३०-३३२
८. वही, पृ० ३३२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कट्टरता में उसने शैख़ नसीरुद्दीन देहलवी की बात न सुनकर मुल्लाओं और क़ाज़ियों की बात पर ध्यान दिया। मुहम्मद तुग़लक़ ने चिश्ती-परम्परा के सूफ़ियों पर कठोर शासन किया था, फ़ीरोज़ तुग़लक ने उन लोगों को दान-दक्षिणा से सन्तुष्ट कर दिया, परन्तु क़ुरआन और शरअ़ से सम्बद्ध व्यवस्थाओं में कट्टर मुल्लाओं की ओर देखा।

प्रत्येक शुक्रवार को नमाज़ के पश्चात् फ़ीरोज तुग़लक़ गायकों के साथ बैठकर उनका गाना सुनता था। उपस्थित गायकों और उनके बच्चों में पुरस्कार बराबर-बराबर बाँटा जाता था, अतः गायक लोग अपने चार-पाँच वर्ष के बालकों तक को साथ ले आते थे।[1]

ईद के उत्सव में गायक केसरिया वस्त्र धारण करते और उनके सिर पर लाल पगड़ी होती थी, नर्तकियाँ चालीस-चालीस तनकों के मूल्य तक के वस्त्र पहनती थीं। क़व्वाल हाथ में वाद्य ले लेते और नर्तकियाँ नृत्य प्रारम्भ कर देती थीं।[2]

फ़ीरोजशाह की यात्राओं में भी प्रत्येक शिविर गानों से गूँजता रहता था। इन यात्राओं में फ़ीरोज़शाह गीत-नृत्य-कुशल प्रत्येक रूपवती दासी को साथ में ले जाता था, जो उसे सम्भोग का आनन्द देकर दुःख और चिन्ता को उससे दूर रख सकें।[3]

फ़ीरोज तुग़लक़ धार्मिक असहिष्णुता में अलाउद्दीन खिलजी से बढ़कर था, परन्तु क़ुतुबुद्दीन ख़िलजी के समान संगीत-मर्मज्ञ न होने पर भी वह उसी जैसा विलासी था। सूफ़ियों के प्रति वह मुहम्मद तुग़लक़ जैसा कठोर तो न था, परन्तु उनके उपदेशों को अनसुना कर देता था, उन्हें ले-देकर सन्तुष्ट रखता था।

मुहम्मद तुग़लक़ के दामाद और महामन्त्री अहमद अयाज़ (राजकुमार हरदेव) का वध फ़ीरोज तुग़लक़ के शासन-काल के आरम्भ में ही कर दिया गया था, क्योंकि उसने मुहम्मद तुग़लक़ की मृत्यु के पश्चात् फ़ीरोज के विषय में प्रामाणिक सूचना प्राप्त किये बिना ही, मुहम्मद तुग़लक़ के एक कल्पित पुत्र को दिल्ली के सिंहासन पर बिठा दिया था।

फ़ीरोज़ तुग़लक़ के युग में शैख़ नसीरुद्दीन चिराग़देहली और क़ुतुबुद्दीन मुनव्वर जैसे सूफ़ी कई-कई दिन तक 'समा' (भक्तिपरक संगीत) सुनन में निमग्न रहते थे,[4] उन्हें कोई रोकता नहीं था, दूसरी ओर फ़ीरोज़ तुग़लक़ के

१. तुग़लक़कालीन भारत, पृ० १४५-४६
२. वही, पृ० १४४
३. वही, पृ० १२०
४. वही, पृ० ६२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

द्वारा शुक्रवार की नमाज के पश्चात्, ईद के दरवार में अथवा यात्रा के शिविरों में होनेवाले गीत-नृत्य से आनन्दित होने पर किसी मुल्ला या सूफ़ी को आपत्ति न थी।

मुल्ला लोग विधर्मियों के दमन से सन्तुष्ट थे, सूफ़ी लोगों को मुहम्मद तुग़लक़ के कठोर आदेशों से मुक्ति मिल गयी थी, सरदार लोग शिविरों में आनन्द करते थे और फ़ीरोज़ तुग़लक़ शराब और रूपाजीवाओं में निमग्न था। सब अपने-अपने रंग में मस्त थे। स्वतन्त्र विचारकों, शिया मुसलमानों और हिन्दुओं के लिए यह विपत्ति-काल था। अक्टूबर १३८८ ई० में फ़ीरोज़ तुग़लक़ का देहान्त हो गया।

फ़ीरोज़ तुग़लक़ का महामन्त्री खानेजहाँ मक़बूल तैलंगाने का एक हिन्दू था और मुसलमान होने से पूर्व इसका नाम कुन्नू था। फ़ीरोज़ तुग़लक़ का इस पर अत्यधिक विश्वास था और वह खानेजहाँ को 'दिल्ली का बादशाह' कहता था। ख्वाजा अहमद अयाज़ (राजकुमार हरदेव) के स्थान पर फ़ीरोज़ तुग़लक़ ने इसकी ही नियुक्ति की थी।

फ़ीरोज़ की माँ अबोहर के भट्टी राजपूत सरदार रणमल्ल की पुत्री थी, परन्तु मुहम्मद तुग़लक़ के भाई रजब के साथ उसका विवाह रणमल्ल पर अत्याचार करके किया गया था।

फ़ीरोज़ तुग़लक़-वंश का अन्तिम उल्लेखनीय सुल्तान था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बहमनी साम्राज्य, सूफ़ी और संगीत

दक्षिण में बहमनी साम्राज्य की स्थापना (१३४७ ई०) से पूर्व क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी (मृ० १२३६ ई०) के खलीफ़ा बाबा फ़रीदुद्दीन गंजशकर (मृ० १२५६ ई०) दक्षिण भारत में जाकर सफल प्रचार-कार्य कर चुके थे,[1] इसका अर्थ यह है कि देवगिरि पर अलाउद्दीन खिलजी के प्रथम आक्रमण (१२९६ ई०) से कहीं पूर्व चिश्ती-परम्परा के अनुयायियों की संख्या दक्षिण में पर्याप्त थी। इसी परिस्थिति ने दक्षिण की समृद्धि के विषय में अलाउद्दीन खिलजी को परिचित कराया और उसके मुँह में पानी भर आया।

निज़ामुद्दीन चिश्ती के अनेक ख़लीफ़ा, मुरीद तथा अनुयायी देवगिरि (दौलताबाद) में बस गये, जिनमें फ़ख़रुद्दीन ज़रादी, बुरहानुद्दीन ग़रीब, सैयद हुसेन किरमानी, हसन अला संजरी और क़ाजी शर्फ़ुद्दीन जैसे महारथी भी हैं।

१३४७ ई० में 'अमीराने सदा' (विदेशी अमीरों) ने दौलताबाद में ईरान से भारत आये 'हसन' को स्वतन्त्र सुल्तान घोषित कर दिया, इस समय मुहम्मद तुग़लक़ जीवित था और सूफ़ियों पर शासन करता था।

अलाउद्दीन हसन बहमनशाह (१३४७-५९ ई०)

हसन बहमन-बिन-इस्फ़न्दियार का वंशज था। मुग़ल आक्रान्ताओं ने इसके कुटुम्ब को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। यह नौकरी के लिए दिल्ली आया, शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती ने इस पर अनुग्रह किया, अहमद अयाज़ (राजकुमार हरदेव) से इसके घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाने के कारण उलुग़ ख़ाँ (मुहम्मद तुग़लक़) ने ग़यासुद्दीन के राज्य-काल में ही इसे अपनी सेवा में रखकर सौ सैनिकों का अफ़सर बना दिया[2], भाग्य, पौरुष और पराक्रम की सहायता से दौलताबाद का सुल्तान हुआ और इसने 'अलाउद्दीन हसन बहमनशाह' उपाधि धारण की। १३५१ ई० में मुहम्मद तुग़लक़ के स्वर्गवास के पश्चात् अपने

---

१. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० १२५
२. निज़ामी बंसरी, ३०३-३०४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राज्य का विस्तार आरम्भ किया। बहमनी साम्राज्य के उदय और विस्तार से उन चिश्ती सूफ़ियों की प्रसन्नता स्वाभाविक है, जो मुहम्मद तुग़लक़ से असन्तुष्ट और आतंकित थे। हसन का राज्य दौलताबाद के पूर्व से भोंगीर तक और उत्तर में बैनगंगा से दक्षिण में कृष्णा नदी तक विस्तृत हो गया। अपनी मृत्युशय्या पर हसन ने अपने पुत्र मुहम्मद को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया, १३५९ ई० में उसका देहान्त हो गया।

अमीर ख़ुसरो के गुरुबन्धु, अहमद अयाज़ (राजकुमार हरदेव) के प्रिय सखा और निज़ामुद्दीन चिश्ती के कृपापात्र हसन का संगीतानुरागी होना स्वाभाविक है।

मुहम्मदशाह—प्रथम (१३५९-७३)

इसके राज्याभिषेक के उत्सवों में अपरिमित धन लुटाकर राजकोष रिक्त कर दिया गया। यह दानवीय अत्याचारों में आनन्द का अनुभव करता और विलास-क्रीडा में निमग्न रहता था।[1]

इसके दरबार में अमीर ख़ुसरो की ग़ज़लें गानेवाले तीन सौ गायक थे। एक दिन मुहम्मदशाह मदिरा के नशे में चूर गाना सुन रहा था, गायकों का एक वृन्द अमीर ख़ुसरो के दो शेर गा रहा था। सुलतान ने सैफ़ुद्दीन ग़ोरी को आदेश दिया कि विजयनगर-नरेश बुक्क के नाम एक हुण्डी लिखी जाये, जिसका रुपया विजयनगर के राजकोष से तीन सौ गायकों को दिया जाये। सैफ़ुद्दीन ग़ोरी ने मुहम्मदशाह के इस आदेश को नशे की बहक समझा, क्योंकि बहमनी दरबार के तीन सौ गायकों को रक़म का भुगतान विजयनगर के राजकोष से विजयनगर-नरेश के द्वारा किया जाना एक बेतुकी बात थी। अगले दिन मुहम्मदशाह अपने आदेश का पालन न होने पर क्रुद्ध हुआ; फलतः आदेशसहित हुण्डी विजयनगर भेजी गयी। आदेश और हुण्डी पाकर विजयनगर-नरेश का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था, उसने दूत को गधे पर चढ़ाकर नगर-भर में घुमाया और अपमानजनक बातें कहकर लौटा दिया।

परिणामस्वरूप १३६६ ई० में भयानक युद्ध हुआ, भीषण नरसंहार हुआ, बुक्क को मुहम्मदशाह की शर्तों पर सन्धि करनी पड़ी और संगीतज्ञों को विजयनगर के राजकोष से धन मिला।[2]

मुहम्मदशाह पर सूफ़ियों का प्रभाव था। दौलताबाद के प्रतिनिधि शासक बहराम ख़ाँ को उसके द्वारा प्राणदण्ड न दिया जाना शैख़ ज़ैनुद्दीन के द्वारा

---

१. मध्ययुग का इतिहास, पृ० ३७४
२. ए फ़ॉरगॉट्टन एम्पायर, पृ० ३३, ३९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किये गये, बीच-बचाव का परिणाम था।

१३७३ ई० में मुहम्मदशाह का देहान्त हुआ।

मुजाहिदशाह (१३७३-७८ ई०)

मुहम्मदशाह (प्रथम) के पुत्र मुजाहिदशाह ने तुर्कों और ईरानी सरदारों के प्रति विशेष स्नेह दिखाया, फलतः दक्खिनी मुसलमान सरदार उसके विरुद्ध हो गये। विजयनगर पर आक्रमण करके मुजाहिदशाह को लज्जित होना पड़ा। वयोवृद्ध सैफ़ुद्दीन ग़ोरी ने सन्धि करा दी, परन्तु सुल्तान को उसके चचेरे भाई दाऊद ने मार डाला, कुछ ही समय के पश्चात् वह स्वयं भी एक घातक का शिकार हो गया।

मुहम्मदशाह—द्वितीय (१३७८-९७ ई०)

दाऊद के वध के पश्चात् अमीरों और पदाधिकारियों ने मुहम्मदशाह (द्वितीय) को सिंहासनासीन किया। यह शान्तिप्रिय शासक था। इसने साहित्य और विज्ञान की उन्नति की ओर ध्यान दिया, मस्जिदों, सार्वजनिक विद्यालयों और खानकाहों का निर्माण कराया। इसकी गुणग्राहिता, उदारता और दानशीलता से आकृष्ट होकर एशिया के प्रत्येक भाग से विद्वान् लोग इसके दरबार में आने लगे। फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि हाफ़िज को भी सुल्तान ने निमन्त्रण दिया। मार्ग में होनेवाले कष्टों और असुविधाओं की आशंका से वह भारत आ तो न सका, परन्तु उसने एक रचना भेजी और सम्मानपूर्वक पुरस्कृत हुआ। १३९७ ई० में मुहम्मदशाह का देहान्त हुआ।

उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र ग़यासुद्दीन और शम्सुद्दीन क्रमशः सिंहासन पर बैठे। १४ जनवरी, १३९७ ई० को बहमनी राज्य के संस्थापक अलाउद्दीन हसनशाह बहमनी का पौत्र फ़ीरोज़ सिंहासन पर बैठा।

फ़ीरोज़शाह (१३९७-१४२२ ई०)

फ़ीरोज़शाह बहमनी के शासन-काल के आरम्भ (१३९८ ई०) में शेख नसीरुद्दीन 'चिराग़देहली' के प्रसिद्ध खलीफ़ा सैयद मुहम्मद इब्न यूसुफ़ अल् हसनी १३९८ ई० में गुजरात इत्यादि स्थानों पर होते हुए गुलबर्गा आये, इनके साथ शेख नसीरुद्दीन चिश्ती के मुरीदों का काफ़िला था। यही प्रसिद्ध सन्त हज़रत-गेसूदराज़ बन्दानवाज़ के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके आने का समाचार मिलते ही फ़ीरोज़शाह ने अपनी सन्तानों और सरदारों को इनके स्वागत के लिए भेजा, जिनमें फ़ीरोज़शाह का भाई अहमद खाँ खानखाना भी था, यही भविष्य में फ़ीरोज़शाह का उत्तराधिकारी बना। हज़रत गेसूदराज़ बन्दानवाज़

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(मृ० १४२२ ई०) का अवशिष्ट जीवन वहीं बीता।[1] सम्भवतः उस युग के चिश्ती सन्तों को तैमूरी आक्रमण (१३९८ ई०) के कारण दिल्ली में अपनी कुशल न दिखायी दी, इसीलिए गेसूदराज़ बन्दानवाज़ गुलबर्गा आये।

फ़ीरोज़शाह बहमनी का क़ाजी सिराज स्वर-मण्डल-वादन, गीत, नृत्य आदि में अत्यन्त कुशल था। १३९८ ई० में ही विजयनगर-नरेश हरिहर द्वितीय के साथ जब फ़ीरोज़ का युद्ध छिड़ा, तब क़ाजी सिराज ने फ़ीरोज़ को अपनी एक योजना पर सहमत कर लिया और वह अपने सात साथियों के साथ तीर्थयात्रियों के छद्मवेष में शत्रु-पक्ष के उन डेरों तक पहुँच गया, जिनमें नर्तकियाँ रहती थीं और उसमें एक भग्नहृदय प्रेमी के रूप में स्वयं को एक नर्तकी के समक्ष प्रस्तुत करके उसका हृदय जीत लिया और कहा कि मैं और मेरे साथी भी गान, वादन और नृत्य में अत्यन्त कुशल हैं'। क़ाजी ने जब स्वर-मण्डल बजाकर अपने कथन को प्रमाणित कर दिया, तब नर्तकी को विश्वास हो गया कि यदि यह व्यक्ति युवराज के समक्ष संगीत-गोष्ठी में उसकी संगति करे, तो उसके प्रदर्शन में चार चाँद लग जायेंगे, जिससे वह अपनी प्रतिस्पर्धिनी नर्तकियों की अपेक्षा श्रेष्ठ सिद्ध होगी और युवराज की दृष्टि में उसका स्थान ऊँचा हो जायेगा। फलतः वह क़ाजी सिराज और उसके साथियों को युवराज की सेवा में साथ लेती गयी। इन लोगों ने अपनी कला से श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर दिया और दाक्षिणात्य शैली में नंगी तलवारें लेकर नाचते-नांचते वहीं युवराज का वध कर दिया। गेसूदराज़ बन्दानवाज़ का परम भक्त और फ़ीरोज़ बहमनी का सहोदर, युवराज के आकस्मिक वध से आकुल और भागती हुई शत्रु-सेना का वह पीछा करता रहा। शत्रु-पक्ष सन्धि के लिए विवश हुआ।[2]

इस युग के क़ाजी भी गीत, नृत्य, वाद्य में कुशल होने के साथ-ही-साथ छल-छद्म में निपुण थे। चिश्ती-परम्परा के संगीत का, उन पर भरपूर प्रभाव था और इन लोगों को गेसूदराज़ बन्दानवाज़ जैसे लोगों का समर्थन और आशीर्वाद प्राप्त था।

१४०६ ई० में फ़ीरोज़ के आदेश से विजयनगर के राजा देवराय प्रथम पर आक्रमण करके उसे यहाँ तक विवश किया कि उसे अपनी पुत्री का विवाह फ़ीरोज़ बहमनी के साथ करने के लिए विवश होना पड़ा। इस विवाह का उत्सव चालीस दिन तक मनाया गया। गायकों, वादकों और नर्तकों ने सबका मनोरंजन किया। इस विवाह के परिणामस्वरूप फ़ीरोज़ एवं हरिहर के सम्बन्ध

---

१. डॉ० अब्दुल्हक़, पृ० १९

२. ए फॉरगॉट्टन एम्पायर, पृ० ५३-५४, ६०-६१, मध्ययुग का इतिहास, पृ० ३७८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मधुर न होकर कटु हो गये।

१४२० ई० में हिन्दुओं ने अपनी इस पराजय का भरपूर बदला लिया। फ़ीरोज़ बहमनी को घबराकर युद्ध-क्षेत्र से भागना पड़ा, उसका सेनानायक मीर फ़ज़लुल्लाह मारा गया। विजयनगर के सैनिकों ने शत्रुओं के प्रदेश को उजाड़ा और अनेक मस्जिदें ध्वस्त कर दीं।

फ़ीरोज़ संगीत का व्यसनी था। मरते समय उसने अपने भाई अहमद को राज्याधिकार देकर अपने पुत्र को उसके संरक्षण में दे दिया। १४२२ ई० में फ़ीरोज़ का देहान्त हुआ और इसी वर्ष गेसूदराज़ बन्दानवाज़ भी स्वर्गवासी हो गये।

अहमदशाह बहमनी (१४२२-३५ ई०)

अहमदशाह बहमनी के सुल्तान होने की भविष्यवाणी गेसूदराज़ बन्दानवाज़ पहले ही कर चुके थे। बन्दानवाज़ अपने जीवन-काल में ही अपने योग्य पुत्र सैयद मुहम्मद अकबर हुसेनी का मरण (१४२० ई०) देख चुके थे। अहमदशाह बहमनी के युग में बन्दानवाज़ के पौत्र और मुहम्मद अकबर हुसेनी के पुत्र अब्दुल्ला अल् हुसेनी प्रभावशाली व्यक्ति थे और अपने पितामह बन्दानवाज़ की भाँति ही चिश्ती-परम्परा के प्रचारकार्य में संलग्न थे।[1]

अहमदशाह रक्तपिपासु, धर्मान्ध और निर्दय अत्याचारी था। यह विभिन्न प्रदेशों के स्वतन्त्र मुस्लिम शासकों से भी उलझा करता था। मालवा के हुशंगशाह को इसने भगाया और उसके दो सहस्र आदमियों का वध कर दिया। गुजरात के शासक और सनामा अहमदशाह से भी यह उलझा। इसका सेनानायक जब पराजित हो गया, तब यह स्वयं युद्ध में उतरा, परन्तु कुछ धार्मिक व्यक्तियों (मौलवियों या सूफ़ियों) ने अहमदशाह बहमनी और अहमदशाह गुजराती में सन्धि करा दी। इस समय गुजरात में शेखुल् इस्लाम हज़रत ख्वाजा शेख सिराज जीवित थे, जिनकी प्रसिद्धि सुनकर फ़ीरोज़ बहमनी ने उन्हें दक्षिण आने का निमन्त्रण दिया था।

अस्तु, १४३५ ई० में अपने पुत्र ज़फ़र खाँ को शासन सौंपकर अहमदशाह बहमनी मर गया। ज़फ़र खाँ अलाउद्दीन (द्वितीय) के नाम से गद्दी पर बैठा।

अलाउद्दीन—द्वितीय (१४३५-५७ ई०)

अब्दुल्लाह अल् हुसेनी अलाउद्दीन द्वितीय के राज्य-काल में चिश्ती-सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे।

१४३६ ई० में अलाउद्दीन द्वितीय ने कोंकण प्रदेश के एक नगर लोनेखेड के हिन्दू राजा की पुत्री का पाणिग्रहण किया। इससे अलाउद्दीन की बेगम अत्यन्त दुःखी हुई और उसके पिता, खानदेश के शासक नासिर खाँ ने अहमदशाह

१. दकन में उर्दू, पृ० ४४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गुजराती की सहायता से अलाउद्दीन द्वितीय पर असफल आक्रमण किया।

१४४२ ई० में विजयनगर के नरेश देवराय ने मुसलमानों के प्रति अपनी नीति में परिवर्तन करके अनेक मुसलमानों को अपनी सेवा में नियुक्त किया, उन्हें जागीरें दी और उनके लिए नगर में एक मस्जिद बनवा दी।

भारतीय और अभारतीय रक्त के मुसलमानों में पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे न थे। अलाउद्दीन द्वितीय की अनुमति से एक सहस्र विदेशी मुसलमानों का वध किया गया, जिनमें कुलीन सैयद भी थे।

अलाउद्दीन द्वितीय आमोद-प्रमोद में भी मग्न रहता था, संगीत की ओर भी उसकी रुचि थी।

१४५७ ई० में अलाउद्दीन द्वितीय का देहान्त हुआ।

हुमायूँ (१४५७-६१ ई०)

अत्यन्त क्रूरकर्मा हुमायूँ अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। इसने अपने अनुज हसन को भूखे बाघ के सामने डालकर उसका शिकार बना दिया। अनेक अमीर, राजकुमार तथा शासकपद के उत्तराधिकारी इसने तलवार के घाट उतार दिये। महमूद गावाँ इसका प्रसिद्ध महामन्त्री था। फ़िरिश्ता के अनुसार इसके परिचारकों ने १४६१ ई० में इसका वध कर दिया।

निज़ामशाह (१४६१-६३ ई०)

यह आठ वर्ष की आयु में हुमायूँ का उत्तराधिकारी चुना गया। राजमाता अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्वक शासन करती रही। महमूद गावाँ ने कुशलतापूर्वक राज्य का प्रबन्ध संभाला। ३० जुलाई, १४६३ ई० को अकस्मात् निज़ामशाह की मृत्यु हो गयी।

मुहम्मदशाह—तृतीय (१४६३-८२ ई०)

अल्पायु मुहम्मदशाह अपने स्वर्गीय भाई निज़ामशाह का उत्तराधिकारी बनाया गया। महमूद गावाँ अत्यन्त स्वामिभक्तिपूर्वक शासन-प्रबन्ध करता रहा। दक्खिनी अमीरों को महमूद गावाँ का उत्कर्ष न भाया। उन्होंने मूर्ख मुहम्मदशाह को एक जाली काग़ज दिखाकर भड़काया और उसने महमूद गावाँ की हत्या करा दी। इस हत्या के परिणामस्वरूप शासन बिखरने लगा। १४८३ ई० में मुहम्मदशाह तृतीय मर गया।

महमूदशाह (१४८२-१५१८ ई०)

मुहम्मदशाह तृतीय का उत्तराधिकारी पुत्र महमूदशाह अत्यन्त दुराचारी और व्यसनी था। इसके युग में सम्मानित सन्त तक मद्यप हो गये, धर्माचार्य

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भी मदिरालयों की शोभा बढ़ाने लगे, पान-गोष्ठियों की अध्यक्षता करना इनका कार्य हो गया। फलतः बीजापुर में यूसुफ़ आदिलशाह, अहमदनगर में मलिक अहमद, बरार में इमादुल् मुल्क तथा गोलकुण्डा में क़ुतुबुल्मुल्क ने अपने-आपको स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। महमूदशाह का नया मन्त्री बरीद ही वास्तव में शासक था और बादशाह महमूद उसका दास मात्र था। १५१८ ई० में महमूद की मृत्यु के पश्चात् बहमनी-वंश समाप्त हो गया। महमूद की मृत्यु के पश्चात् तीन सुल्तान सिंहासनासीन हुए, परन्तु वे नाममात्र के सुल्तान थे। अन्तिम शासक कलीमुल्लाह खाँ ने बाबर से सहायता माँगी, परन्तु कोई परिणाम न हुआ।

बहमनी राज्य बरार, अहमदनगर, बिजापुर, गोलकुण्डा और बीदर नामक पाँच स्वतन्त्र इकाइयों में बँट गया। जिन पर क्रमशः इमादशाही, निज़ामशाही, आदिलशाही, क़ुतुबशाही और बरीदशाही वंश का अधिकार हुआ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गुजरात में मुस्लिम शासन, सूफ़ी और संगीत

गुजराती समुद्र-तटों के साथ अरब व्यापारियों का परिचय सहस्रों वर्षों से रहा है। दशम शती ई० में अनहिलवाड़ के राजपूत राजाओं ने इन लोगों को प्रोत्साहित किया।

मोहम्मद ग़ोरी के आक्रमण से कहीं पूर्व १०६५ ई० में अब्दुल्लाह नामक सूफ़ी गुजरात पहुँच चुके थे और इन्होंने वोहरा जाति को मुसलमान किया था।[1] बारहवीं शती ई० के आरम्भ में नूरुद्दीन और मुहम्मद अली जैसे मुसलमान सूफ़ी गुजरात को अपने प्रचार का क्षेत्र बना चुके थे।[2] क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी (मृ० १२३६ ई०) के खलीफ़ाओं में ख़्वाजा शैख़ महमूद और ख़्वाजा शैख़ हामिदुद्दीन ने नहरवाला (गुजरात) में प्रचारकार्य किया था।[3] शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के मुरीदों में शैख़ सैयद हसन, शैख़ हुस्सामुद्दीन मुलतानी और शैख़ बारिकुल्लाह ने गुजरात में चिश्ती-परम्परा का प्रचारकार्य किया था।[4]

१२९६ ई० में जब गुजरात को अलाउद्दीन के सेनापतियों ने आक्रान्त किया और उसके सेनापति उलुग़ ख़ाँ और नुसरत ख़ाँ ने गुजरात के बघेल नरेश कर्ण को पराजित किया, तब से कहीं पूर्व चिश्ती-परम्परा के भक्तों की संख्या गुजरात में पर्याप्त थी, जिनके कारण दिल्ली-शासन को गुजरात के विषय में सबकुछ ज्ञान था, आक्रमण से पूर्व अल्लाउद्दीन गुजरात के चप्पे-चप्पे का हाल जानता था। गुजरात की राजधानी अनहिलवाड़ को घेरा गया, राजा कर्ण के पलायन करने पर रानी कमला बन्दी बनायी गयी, गुजरात को जी खोलकर लूटा गया, सोमनाथ की पुनःस्थापित मूर्ति दिल्ली भेजी गयी,

---

१. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० १२२
२. वही, पृ० १२३
३. अब्दुल ग़फ़ूर, पृ० १३८
४. वही, पृ० १३८-१३९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

खम्बात पर भी आक्रमण हुआ, व्यापारियों से बलपूर्वक रत्नों के ढेर तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएँ वसूल की गयीं। एक अत्यन्त सुन्दर दास प्राप्त किया गया, जो अपने स्वामी द्वारा हज़ार दीनार में खरीदा जाने के कारण 'हज़ार दीनारी' कहा जाता था। इसने अलाउद्दीन खिलजी को अपने सौन्दर्य से वशीभूत कर लिया और शीघ्र ही यह 'दास', अल्लाउद्दीन के प्रसिद्ध सेनानी मलिक काफ़ूर के रूप में विकसित हुआ। परवार या परवारी नामक एक अत्यन्त सुन्दर संगीत जीवी हिन्दू जाति के असंख्य नर-नारी भी इसी अभियान में बन्दी बनाकर दिल्ली ले जाये गये। इसी जाति के एक सुन्दर नवयुवक को मुसलमान बनाकर उसका नाम खुसरो खाँ रखा गया, जिसने क़ुतुबुद्दीन खिलजी का वध करके दिल्ली-साम्राज्य पर चार महीने के लिए अधिकार किया।

मुहम्मद तुग़लक़ के शासन-काल (१३२५-५१ ई०) में चिश्ती सूफ़ियों पर अनेक अत्याचार हुए थे। उस युग में शैख़ नसीरुद्दीन चिराग़देहली ने अपने भांजे 'वालिए गुजरात' अल्लामा ख्वाजा कमालुद्दीन को गुजरात भेज दिया था। इनकी विद्वत्ता और इनके कमाल की चर्चा दक्षिण तक पहुँची थी और अनेक व्यक्ति वहाँ से गुजरात आकर इनके मुरीद हुए थे। अपनी आयु का अन्त निकट जानकर ये दिल्ली आये और १३६३ ई० में इनका स्वर्गवास हुआ। इस समय फ़ीरोज़ तुग़लक़ का शासन-काल (१३५१-८८ ई०) था।

ख्वाजा कमालुद्दीन के पुत्र ख्वाजा शैख़ सिराज के कार्य का केन्द्र पट्टन रहा। इनकी प्रसिद्धि जब फ़ीरोज़ बहमनी तक पहुँची, तब उसने इन्हें दक्षिण आने का निमन्त्रण दिया, उत्तर में शैख़ सिराज ने कहा कि ईश्वर गुजरात में ही मेरी प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति कर देता है।

ख्वाजा कमालुद्दीन के पुत्र शैख़ इल्मुल्हक (मृ० १४२६ ई०) का प्रधान केन्द्र भी पट्टन था। तैमूर का आक्रमण इनके जीवन-काल (१३९७ ई०) में हुआ। साम्राज्य में अव्यवस्था फैल गयी और गुजरात का प्रान्ताध्यक्ष ज़फ़र खाँ गुजरात का स्वतन्त्र शासक बन गया।

ज़फ़र खाँ (१४०१-१४०३ ई०)

ज़फ़र खाँ को कारागार में डालकर उसका पुत्र तातार खाँ 'नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह' उपाधि धारण करके गुजरात के सिंहासन पर बैठा।

नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह (१४०३-१४०७ ई०)

नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह को ज़फ़र ख़ाँ के एक विश्वासपात्र ने विष देकर समाप्त कर दिया। ज़फ़र खाँ को स्वतन्त्र करके पुनः मुज़फ़्फ़रशाह के नाम से सिंहासन पर बिठाया गया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुज़फ़्फ़रशाह (१४०७-११ ई०)

मुज़फ्फ़रशाह ने अनेक अभियान किये, धार को जीता, परन्तु चार ही वर्ष बाद उसके पोते अहमदशाह ने उसे विष-प्रयोग से मार डाला।

अहमदशाह (१४११-४१ ई०)

यही गुजरात की वास्तविक स्वतन्त्रता का संस्थापक है। साबरमती नदी के तट पर अहमदाबाद की स्थापना इसने की। अपने समसामयिक फीरोज बहमनी के समान ही यह भी इस्लाम का प्रचारक और मन्दिरों का विध्वंसक था। मालवा के शासक हुशंगशाह के साथ इसकी प्रबल शत्रुता थी। माण्डो पर घेरा डालकर अहमदशाह ने महमूद खिलजी को भी पराजित किया था।

पूर्वोक्त चिश्ती-प्रचारक शैख़ इल्मुल्हक़ की मृत्यु अहमदशाह के शासन-काल के अन्तर्गत १४२६ ई० में हुई। उनके पुत्र शैख महमूद राजन उनके उत्तराधिकारी हुए और अहमदशाह के अवशिष्ट राज्य-काल में वे चिश्ती-परम्परा का प्रचार-कार्य करते रहे।

अहमदशाह का देहान्त १४४१ ई० में हुआ।

मुहम्मदशाह जरबख़्श (१४४१-५१ ई०)

इसने चम्पानेर पर आक्रमण किया। वहाँ के राजा ने मालवा के शासक से सहायता ली और दोनों ने मिलकर मुहम्मदशाह को भगा दिया। १४५१ ई० में मुहम्मदशाह जरबख़्श को विष देकर मार दिया गया।

शैख महमूद राजन का स्वर्गवास इसके राज्य-काल के अन्तर्गत १४४६ ई० में हो चुका था और उनके उत्तराधिकारी हज़रत शैख़ जमालुद्दीन उर्फ़ जुम्मन (मृ० १४८५) चिश्ती-परम्परा के प्रचार का कार्य कर रहे थे।

क़ुतुबुद्दीन (१४५१-५८ ई०)

मुहम्मदशाह जरबख़्श का उत्तराधिकारी और पुत्र क़ुतुबुद्दीन प्रायः चित्तौड़ के राणाओं से युद्ध करता रहा और उसका देहान्त १४५९ ई० में हो गया। शैख़ जमालुद्दीन जुम्मन अपने प्रचारकार्य में रत थे।

महमूद बीगड़ (१४५८-१५११ ई०)

इसने गुजरात के वैभव और गौरव में वृद्धि की। इसकी प्रसिद्धि युरोप तक पहुँच गयी थी। पुर्तगालियों को भी इसने युद्ध में छकाया था। १५११ ई० में इसका देहान्त हुआ।

इसके शासन-काल में शैख जमालुद्दीन जुम्मन (मृ० १४८५ ई०) स्वर्गवासी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हुए और उनके कार्य का उत्तरदायित्व शैख़ तारिकीन ख्वाजा हसन मुहम्मद चिश्ती ने सँभाला। ख्वाजा हसन मुहम्मद के पूर्वजों की परम्परा ख्वाजा कमालुद्दीन तक पहुँचती थी। ख्वाजा कमालुद्दीन के पुत्र शैख़ मजदुद्दीन (शैख़ सिराज के सहोदर), उनके पुत्र, उनके पुत्र शैख़ नसीरुद्दीन, उनके पुत्र शाह मुहम्मद और उनके पुत्र ख्वाजा हसन मुहम्मद थे, जो अकबर के राज्य-काल (१५५६-१६०५ ई०) में १५७४ ई० तक जीवित रहे।

मुहम्मदशाह गुजराती—द्वितीय (१५११-२६ ई०)

यह अत्यन्त विद्वान और न्यायप्रिय था, अतः प्रजा इसे बहुत प्रेम करती थी। इसका कंठस्वर अत्यन्त अच्छा था। यह अनेक प्रकार के वाद्य बजाने में निपुण था। इसके युग के प्रसिद्ध गुणी भी इसका शिष्य होने में गौरव का अनुभव करते थे और इसे उस्ताद मानते थे, इसने अपनी गुणग्राहकता से गुजरात को संगीत का केन्द्र बना दिया था।[1]

बहादुरशाह गुजराती (१५२७-३७ ई०)

मुहम्मदशाह की मृत्यु के पश्चात सिकन्दरशाह ने सिंहासन पर अधिकार किया, परन्तु साढ़े तीन महीने बाद ही उसका वध कर दिया गया। हत्यारों ने उसके भाई नासिर ख़ाँ को बिठाया, परन्तु उसे बहादुरशाह के लिए स्थान रिक्त कर देना पड़ा।

बहादुरशाह अत्यन्त शूर, उदार, साहसी और युद्धप्रिय था, उसने अपने युग के अनेक शासकों से युद्ध किये। पुर्तगालियों ने विश्वासघात करके इस वीर का वध किया।

बहादुरशाह अत्यन्त संगीतानुरागी था। बैजू, बख्शू और गोपाल जैसे महान कलाकार इसके दरबार में थे।[2]

इसे पूर्वोक्त ख्वाजा हसन मुहम्मद चिश्ती का आशीर्वाद प्राप्त था और वे इसके युग में भी प्रचारकार्य कर रहे थे।

महमूद—द्वितीय (१५३७-५४ ई०)

इसका मन्त्री दरिया ख़ाँ संगीत का महान संरक्षक था। इसके मन्त्रित्व-काल

---

१. मिराति सिकन्दरी, 'आजकल' (उर्दू), अगस्त १९५६, पृ० १०३ पर मौलाना अर्शी द्वारा उद्धृत

२. बादशाहनामा, ७/२, 'आजकल' (उर्दू), अगस्त १९५६, पृ० १०३ पर उद्धृत

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में अहमदाबाद का घर-घर संगीत से गूँजता था। बख्शू का पुत्र हुसेनी, नायक चतुर के पुत्र रंग खाँ और मलही, खेमकरन तथा नायक अम्भू इसके आश्रित प्रमुख गायकों में थे।[1]

१५७३ ई० में गुजरात अकबर के अधीन हो गया।

अकबर ने बारह गाँवों का फ़रमान, पोशाक और अशर्फियाँ शैख़ हसन मुहम्मद चिश्ती की सेवा में भेजीं। शैख़ साहब ने अकबर का उपहार स्वीकृत न किया और अकबर के लिए सन्देश भेजा कि अगर वह मुसलमान है, तो मेरी दुआओं की बरक़तों से बाहर नहीं है, मैं इस्लाम और मुसलमानों की बेहतरी के लिए सदा दुआ करता हूँ।[2]

शैख़ हसन मुहम्मद चिश्ती (मृ० १५७४ ई०) के पुत्र ख्वाजा मुहम्मद आज़म चिश्ती निज़ामी (मृ० १६३० ई०) थे। मुगल सम्राट शाहजहाँ ने इनकी सेवा में तीन लाख रुपये, पाँच उपजाऊ गाँवों की सनद, अपने हाथ की सिली हुई एक टोपी और गुदड़ी नवाब इस्लाम खाँ के हाथ भेजी। शैख़ साहब ने गुदड़ी और टोपी एक यात्री को दे दी और कहा कि रुपये स्वयं मुग़ल सम्राट उनके पात्रों को दे दें। गाँवों की सनद लौटते हुए उन्होंने मुग़ल सम्राट के लिए प्रसाद-स्वरूप संगमूसा की एक तस्वीह (माला) भेजी।[3]

शैख़ मुहीनुद्दीन याह्या मदनी (मृ० १६८९ ई०) की सेवा में औरंगज़ेब तब ही उपस्थित हुआ था, जब वह गुजरात का सूबेदार था। सम्राट होने से पूर्व वह शैख़ साहब की सेवा में दो सौ रुपये वार्षिक भेजता था। सम्राट होने पर उसने यह निधि बढ़ाकर एक सहस्र रुपये वार्षिक कर दी। शैख़ साहब ने औरंगज़ेब के सम्राट होने की भविष्यवाणी की थी।

बाक़र 'मुहतसिब' (शरअ़ के विरुद्ध कार्यों को रोकने का अधिकारी) ने जब शैख़ साहब के मुचलके ले लिये, तब औरंगज़ेब ने पत्र लिखकर शैख़ साहब से क्षमा-याचना की और बाक़र को आदेश दिया कि भविष्य में शैख़ साहब को तंग न किया जाये।

शैख़ साहब 'समाअ़' (भक्तिपरक संगीत) के रसिक थे, उन्होंने औरंगज़ेब को पत्र लिखा था कि 'समाअ़' सज्जन व्यक्तियों के लिए आध्यात्मिक भोजन है, इसे रोकने के लिए कोई उचित कारण नहीं।

अस्तु, नसीरुद्दीन चिराग़देहली के भांजे शैख़ कमालुद्दीन की सन्तानों और मुरीदों के द्वारा गुजरात में चिश्ती-परम्परा का प्रचार हुआ। जहाँ-जहाँ

---

१. मिराति सिकन्दरी, रामपुर-प्रति, पृ० २४९ 'ब'
२. अब्दुल ग़फ़ूर, पृ० १५६-१५८
३. वही, पृ० १६१-६२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ये रहे, वहाँ-वहाँ संगीत भी रहा।

इन चिश्ती सूफ़ियों के क़व्वालों की परम्परा का ज्ञान करने के लिए इनके इतिवृत्तों और सम्बद्ध ख़ानकाहों के रोजनामचों का विस्तृत अध्ययन आवश्यक है। चिश्ती-परम्परा के गुजराती भक्तों को इस दिशा में अग्रसर होना चाहिए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बंगाल में मुस्लिम शासन, चिश्ती–परम्परा और संगीत

पृथ्वीराज की पराजय के केवल आठ वर्ष पश्चात् १२०० ई० में शैख जलालुद्दीन तबरेज़ी नामक सूफ़ी बंगाल पहुँच गये थे। ये शैख अबूसईद तबरेज़ी के शिष्य थे, कालान्तर में शैख शहाबुद्दीन सुहरवर्दी (मृ० १२३४ ई०) के शिष्य हो गये। ये ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी (मृ० १२३६) और शैख बहादुद्दीन जकरिया मुलतानी के मित्र थे और दिल्ली के शैखुल्इस्लाम नजमुद्दीन सुग़रा से विरोध के होने कारण बंगाल गये, ये प्रायः डेढ़ सौ वर्ष जिये १३४६ ई० में इनकी मृत्यु हुई। पण्डुआ में इनकी ख़ानकाह सुल्तान अलाउद्दीन अलीशाह ने बनवायी।[1] शैख जलालुद्दीन तबरेज़ी ने बंगाल में सूफ़ियों की इस संगीतप्रिय सुहरवर्दी-परम्परा का प्रचारकार्य प्रचुर परिमाण में किया।[2]

इस युग से कहीं पूर्व सेन वंश के प्रसिद्ध शासक बल्लालसेन (राज्यारोहण ११५८ ई०) के राज्य-काल में बाबा आदम शहीद नामक सूफ़ी बंगाल में पहुँच चुके थे।[3]

परिस्थिति सिद्ध करती है कि क़ुतुबुद्दीन ख़िलजी के सेनापति के द्वारा नदिया पर आक्रमण से पूर्व सूफ़ियों के चरण बंगाल की भूमि पर पड़ चुके थे और जलालुद्दीन तबरेज़ी ने बंगाल में अपना प्रचारकार्य मुहम्मद बिन बख़्तयार के सफल आक्रमण के पश्चात् किया था। इसी आक्रमण के परिणामस्वरूप बंगाल में मदरसों और ख़ानकाहों को निर्माण भलीभाँति हो चुका था।

मुहम्मद बिन बख़्तयार का आक्रमण सफल रहा। जलालुद्दीन तबरेज़ी ने भी अपने विचारों के प्रचार के लिए चिश्ती-परम्परा जैसी नीति अपनायी। क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी के शिष्य शाह अब्दुल्लाह किरमानी ने बंगाल में

---

१. तुग़लक़कालीन भारत, भाग-१
२. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० १२६
३. वही, पृ० १२३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चिश्ती-परम्परा का प्रचार सबसे पहले किया।[1]

इतना होने पर भी बंगाल कभी दिल्ली-साम्राज्य का भक्त न रहा। मुहम्मद तुग़लक़ के शासन-काल (१३२५-५१ ई०) के अन्तर्गत १३३६-३७ ई० में पूर्वी बंगाल के राज्यपाल बहराम खाँ को उसके कवचवाहक फ़खरुद्दीन ने मार डाला और शासन-सत्ता अपने हाथ में ले ली। मुहम्मद तुग़लक़ की ढिलाई के कारण इसने स्वयं को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया।

इस युग में शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के प्रसिद्ध ख़लीफ़ा शैख़ सिराजुद्दीन उस्मान 'अख़ी सिराज' बंगाल में चिश्ती-परम्परा का प्रबल प्रचार कर रहे थे, ये लखनौती-निवासी थे, दिल्ली जाकर इन्होंने वहाँ लौकिक और आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त की थी। शैख़ फ़खरुद्दीन ज़रादी से लौकिक शिक्षा ली, 'सियरुल् औलिया' के प्रसिद्ध लेखक अमीर खुर्द किरमानी इनके गुरुबन्धु थे।

फ़खरुद्दीन के शासन-काल में सूफ़ियों की डेढ सौ गद्दियाँ थीं।[2] शाह सफ़ीउद्दीन सतगाँव के समीप हुगली पण्डुवा में रहते थे। शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के शिष्य शैख़ अहमद अलाउल्हक़ भी इसी युग में वहाँ थे।

मुहम्मद तुग़लक़ की मृत्यु (१३५१ ई०) के पश्चात् हाजी इलियास ने 'शम्शुद्दीन' उपधि धारण करके स्वयं को बंगाल का स्वतन्त्र बादशाह घोषित कर दिया था। इलियास, रज़ा वियाबान नामक सन्त का परम भक्त था और फ़क़ीर का भेष धारण करके उनके जनाज़े में सम्मिलित हुआ था।[3]

१३५३-५४ ई० में फ़ीरोज़ तुग़लक़ ने बंगाल पर आक्रमण किया। उसने घोषणा कर दी कि लखनौती प्रदेश के सैयदों, आलिमों और मशायख (सूफ़ी फ़क़ीरों) को दुगुनी और तिगुनी वृत्ति दी जायेगी। इस युद्ध में हाजी इलियास 'शम्सुद्दीन' पराजित होकर सन्धि करने पर विवश हुआ।

१३५९-६० ई० में फ़ीरोज़ तुग़लफ़ ने हाजी इलियास के पुत्र सिकन्दर पर आक्रमण किया, पुनः सन्धि हो गयी। १४१४ ई० में इलियास के वंश का शासन समाप्त हो गया। गणेश नामक एक हिन्दू सरदार ने बंगाल पर अधिकार कर लिया।

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में अरब जाति के सैयद हुसेनशाह (राज्य-काल १४९३-१५१९ ई०) ने अपने शासन के आरम्भिक काल में जौनपुर के हुसेन शाह शर्क़ी (मृं० १५०० ई०) की बड़ी आवभगत की थी, जो बहलोल लोदी से त्रस्त होकर बंगाल भाग गया था।

---

१. हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य, पृ० १२५

२. मध्ययुग का इतिहास, पृ० ३६३

३. वही, पृ० ३६४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अस्तु, बंगाल के शासक सैयद हुसेनशाह ने मस्जिदों और अस्पतालों का निर्माण कराया, सूफ़ियों को वृत्तियाँ दीं। हुसेनशाह के अठारह पुत्रों में नुसरत शाह सिंहासनारूढ़ (१५१९ ई०) हुआ, बाबर ने जिसे शक्तिमान शासक बताया है। नुसरतशाह नें इब्राहीम लोदी की दुर्बलता से लाभ उठाकर वे जिले पुनः बलात् वापस ले लिये, जो दिल्ली-साम्राज्य नें छीन लिये थे। नुसरतशाह नें बाबर को अमूल्य उपहारों के द्वारा शान्त किया। नुसरतशाह की मृत्यु १५३० ई० में हुई और उसका पुत्र अलाउद्दीन फ़ीरोज़शाह सिंहासनासीन हुआ। वह अपनें चाचा सुल्तान चतुर्थ ग़यासुद्दीन महमूदशाह (राज्य-काल १५३३-३९ ई०) के हाथ से मारा गया। महमूदशाह शेर खाँ के (शेरशाह) के हाथों पराजित हुआ और घावों के कारण मर गया। शेर खाँ बंगाल का अधिपति हो गया।

१५७० ई० तक बंगाल पर अफ़गानों का आधिपत्य रहा, इसके पश्चात् अकबर ने इसे मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया।

इस संक्षिप्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि बल्लालसेन कें राज्य-काल से ही सूफ़ियों की दृष्टि बंगाल पर लगी थी। मुहम्मद बख़्तयार के आक्रमण कें पश्चात् ही जलालुद्दील तबरेज़ी वहाँ जाकर डट गये। लखनौती-निवासी अख़ी सिराजुद्दीन शैख निज़ामुद्दीन चिश्ती की सेवा में आरम्भ से ही रहे और बंगाली होने कें कारण ही वे बंगाल में चिश्ती-परम्परा के प्रमुख और सफल प्रचारक रहे।

बल्लालसेन के शासन-काल के लगभग आरम्भ (११६० ई०) में लोचन ने अपने ग्रन्थ 'रागतरंगिणी' की रचना की, जिसमें 'मुकाम' शब्द के ठीक-ठीक अनुवाद 'संस्थान' का प्रयोग सर्वप्रथम किया गया है।[1] यह स्थिति बंगाल पर

---

१. 'मुसलमान और भारतीय संगीत', पृ० ३९ पर यह सिद्ध किया गया है कि लोचन, कल्लिनाथ की अपेक्षा पूर्ववर्ती थे। ऐसा लगता है कि लोचन के ग्रन्थ पर किसी ने कोई टिप्पणी लिखी थी, जिसमें विद्यापति का उल्लेख है। लिपिकों के प्रमाद से यह टिप्पणी भी मूल में मिल गयी। लोचन ने 'भारवा' और 'तोडी' ठाठ की कोई चर्चा नहीं की है। उनका तोडी आधुनिक भैरवी ठाठ है। वे आधुनिक काफी को भैरवी संस्थान कहते हैं, ऐसा कहनेवाले एकमात्र ग्रन्थकार वही हैं। आधुनिक भैरव ठाठ उनके शब्दों में गौरी (गौड़ी, गौड़ देश से सम्बन्ध) है। अरब यात्रियों का सम्बन्ध बंगाली समुद्री तटों से अत्यन्त प्राचीन है। अतः 'रागतरंगिणी' संस्थान-पद्धति का सर्वप्रथम संस्कृत ग्रन्थ है।

अपने ग्रन्थ 'बंगालीर इतिहास' में नीहाररंजन रे लोचन को बल्लालसेन का समकालीन ही मानते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अरब यात्रियों और सूफ़ियों के प्राचीन प्रभाव की ओर भी संकेत करती है। बल्लालसेन के पूर्वज सामन्तसेन कर्नाटदेशीय थे। बल्लालसेन ने अनेक ब्राह्मणों को दूर-दूर से बुलाकर बंगाल में बसाया था, सम्भव है लोचन भी कर्नाटक से बुलाये गये हों।

अस्तु, 'रागतरंगिणी' का राग-वर्गीकरण और इस युग में प्रचलित बंगला क़व्वाली बंगाल पर सूफ़ियों का प्रभाव सिद्ध करती है। चिश्ती-परम्परा के अखी सिराजुद्दीन और उनके परवर्ती सूफ़ियों के खानकाहों में क़व्वालों की उपस्थिति स्वाभाविक है, जिनके विवरण की खोज बंगाली विद्यार्थियों के लिए सुविधाजनक होगी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जौनपुर के सुल्तान, सूफ़ी और संगीत

फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ ने अपने चचेरे भाई मुहम्मद जूना की स्मृति बनाये रखने के लिए जौनपुर नगर बसाया और इसे सुन्दर इमारतों से सजाया। १३७६ ई० में बहरूज़ सुल्तान को जौनपुर और जफ़राबाद का शासक नियुक्त किया गया। हिन्दुओं के विद्रोह का दमन कर दिया गया। फ़ीरोज़ की मृत्यु के पश्चात् सरवर नामक व्यक्ति को दिल्ली-साम्राज्य का महामन्त्री नियुक्त करके 'ख्वाजाजहाँ' की उपाधि दी गयी। १३९४ ई० में महमूद तुग़लक़ ने ख़ुसरो ख़ाँ को 'मलिकुश्शर्क' (पूर्वीय प्रदेशों का अधिपति) उपाधि देकर कन्नौज से बिहार तक के प्रदेश का शासन उसे सौंप दिया। तैमूरी आक्रमण (१३९७ ई०) से उत्पन्न अव्यवस्था के कारण वह स्वतन्त्र हो गया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका दत्तक पुत्र मुबारक शासक हुआ, जो भावी दिल्ली-सम्राट सैयद ख़िज्र ख़ाँ (राज्य-काल १४१४-२१ ई०) का भतीजा था। १४०२ ई० में मुबारक का देहान्त हो गया और उसका छोटा भाई इब्राहीम 'शम्सुद्दीन इब्राहीम शर्क़ी के नाम से शासक बना। ख़िज्र ख़ाँ के सम्राट् होने पर इब्राहीम शर्क़ी को चैन मिला।

इब्राहीम शर्क़ी (मृ० १४४०) की दानशीलता से आकर्षित होकर समकालीन विख्यात विद्वान् उसकी सभा में एकत्र होने लगे, जिससे जौनपुर पूर्व में मुस्लिम विद्याओं का प्रमुख केन्द्र हो गया। उस समय की अराजकता और तैमूर के आक्रमण के कारण उत्पन्न हुई अव्यवस्था से पीड़ित साहित्यिक व्यक्ति उसकी राजसभा में शरण लेने लगे, उनका वहाँ हार्दिक स्वागत हुआ। इन लोगों में दिल्ली के क़ाज़ी मलिक-उल्-उलमा शहाबुद्दीन प्रमुख थे, जिनकी ख्याति अखिल भारतीय थी। इब्राहीम शर्क़ी ने अनेक अन्य इमारतें बनवायीं।[1]

'संगीत-शिरोमणि' नामक ग्रन्थ की रचना इब्राहीम शर्क़ी के काल की एक प्रमुख सांगीतिक घटना है, जिसका प्रणयन इब्राहीम शर्क़ी के युग में कड़ा के

---

१. मध्ययुग का इतिहास, पृ० ३६०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सूबेदार मलिक सुल्तान के पुत्र बहादुर मलिक ने उस काल के प्रसिद्ध पण्डितों को एकत्र करके कराया था और संगीत के सभी उपलब्ध संस्कृत ग्रन्थों का संग्रह इस कार्य के लिए किया था।[1]

यह सत्य है कि कड़ा के समीप ही तीर्थराज प्रयाग होने के कारण वहाँ समस्त भारत के विद्वान् तीर्थयात्रा के लिए आते होंगे और वे बहादुर मलिक के लिए सुलभ होंगे, परन्तु विद्वानों का लाभ उठाकर भारतीय ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति को समझने की इच्छा उस समय मुसलमान विद्याव्यसनियों के मन में उत्पन्न हो गयी थी, भले ही मुस्लिम दरबार मुक़ाम-पद्धति से चिपके रहकर सन्तुष्ट हों।

महमूदशाह शर्क़ी का अधिकांश समय बहलोल लोदी के विरुद्ध लड़ने में गया, उसके उत्तराधिकारी हुसेनशाह शर्क़ी ने भी दिल्ली से युद्ध जारी रखा और बहलोल के उत्तराधिकारी सिकन्दर लोदी से निरन्तर उसका वैर बना रहा। १५०० ई० में हुसेनशाह की मृत्यु हुई, इस समय ग्वालियर पर मानसिंह तोमर के राज्य-काल का पन्द्रहवाँ वर्ष था।

हुसेनशाह शर्क़ी महान् संगीतमर्मज्ञ था। इसने बारह रागों का आविष्कार किया। इसके द्वारा आविष्कृत रागों में गौड़ श्याम, मलार श्याम, भोपाल श्याम तथा तोडियों के चार प्रकार प्रसिद्ध हुए, जौनपुरी तोडी का आविष्कारक यही है। यही 'खयाल' का आविष्कारक है और इसने अनेक ख़यालों की रचना भी की। वाजिद अलीशाह ने इसे ख़याल का नायक कहा है।[2]

इसके समकालीन सिकन्दर लोदी के युग में 'लहज़ाते सिकन्दरी' नामक फ़ारसी ग्रन्थ की रचना हुई, मालवा के ग़यासुद्दीन खिलजी को 'संगीत-रत्नाकर' के तेलुगु-टीकाकार विट्ठल के पिता ने बाईस श्रुतियों को सिद्धि करके सन्तुष्ट किया और मानसिंह तोमर के द्वारा ध्रुवपद का पुनरुद्धार हुआ।

खुसरो की परम्परा जौनपुर में पली, जिसके एक प्रसिद्ध गुणी शैख़ अदहन के शिष्य शैख़ बंझू ने १५७५ ई० में अकबरी दरबार के गुणियों को ललकारा था।

---

१. भारत का संगीत-सिद्धान्त, पृ० ३१३

२. बादशाहनामा ६/२, ख़ुलासतुल् ऐश आलमशाही, पृ० १४६ 'ब', मिराति आफ़ताबनुमा, ३६१ 'ब'

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मालवा में मुस्लिम शासन, सूफ़ी और संगीत

मालवा की धारानगरी प्रसिद्ध विद्याव्यसनी महाराज भोज के शासन-काल (९९८-१०६२ ई०) में अत्यन्त विख्यात हो गयी थी। महमूद ग़ज़नवी के विरोध में संघटित राजसंघ में यह भी सहायक थे।

१२३५ ई० में इल्तुतमिश ने उज्जैन पर आक्रमण करके महाकाल का मन्दिर ध्वस्त किया।

१३१० ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने चन्देरी को जीता और शैख निज़ामुद्दीन चिश्ती ने वहाँ अलाउद्दीन खिलजी की सेना के साथ अपने प्रसिद्ध खलीफ़ा मौलाना वजीउद्दीन यूसुफ़ को नियुक्त किया, जिनकी चर्चा के लिए 'सियरुल् औलिया' के लेखक ने पाँच पृष्ठों का उपयोग किया है।

१४०१ ई० में तैमूरी आक्रमण से उत्पन्न अव्यवस्था से लाभ उठाकर मुहम्मद ग़ोरी के एक वंशज दिलावर खाँ ने मालवा में अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी और धार को अपनी राजधानी बनाया। दिलावर के पश्चात् अल्द खाँ 'हुशंगशाह' उपाधि धारण करके १४०५ ई० में सिंहासनासीन हुआ, उसने माण्डू को अपनी राजधानी बनाकर उसे अनेक सुन्दर भवनों से सजाया। हुशंगशाह की मृत्यु (१४३४ ई०) के पश्चात् उसका पुत्र ग़जनी खाँ शासक हुआ, परन्तु महामन्त्री खिलजी तुर्क महमूद के हाथों मारा गया।

महमूद खिलजी महान् योद्धा और कुशल प्रशासक हुआ, बहलोल लोदी एवं महाराणा कुम्भा से इसके युद्ध हुए। इसी युग में महाराणा कुम्भा ने 'संगीतराज' जैसे ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति के ग्रन्थ की रचना की। महमूद के पश्चात् उसका पुत्र ग़यासुद्दीन (१४६९-१५०० ई०) शासक हुआ। यह संगीत में अत्यन्त रुचि लेता था। इसके दरबार में संगीतज्ञों की एक 'समिति' थी, जो श्रुति-सिद्धान्त का उपहास करती थी और ग़यासुद्दीन का दृष्टिकोण भी यही था, परन्तु 'संगीत-रत्नाकर' के तेलुगु टीकाकार विट्ठल के पिता ने बाईस श्रुतियों की सिद्धि करके ग़यासुद्दीन को सन्तुष्ट किया और एक सहस्र स्वर्ण

mid 15th c

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुद्राएँ प्राप्त कीं।[1]

ग़यासुद्दीन को मारकर १५०० ई० में उसका पुत्र नासिरुद्दीन गद्दी पर बैठा, यह अत्यन्त विलासी था, १५१० ई० में यह डूबकर मर गया और महमूद द्वितीय शासक हुआ, वह महाराणा सांगा से भिड़ गया और बन्दी बनाया गया। उसका वध बहादुरशाह गुजराती (राज्य-काल १५२७-३७ ई०) के द्वारा हुआ। मालवा पर गुजरातियों का शासन हो गया। हुमायूँ ने १५३५ ई० में बहादुरशाह गुजराती को मालवा से मार भगाया। दिल्ली-साम्राज्य पर अधिकार होते ही शेरशाह ने मालवा का शासन अपने एक सेनापति शुजाअत खाँ को सौंपा, उसके देहान्त के पश्चात् उसका पुत्र मलिक बायज़ीद शासक हुआ, जो बाज़बहादुर के नाम से प्रसिद्ध है और सारंगपुर की रूपवती और गुण-सम्पन्न राजकुमारी रूपमती के प्रसिद्ध प्रेमी के रूप में लोकगीतों का नायक है। १५६२ ई० में अकबर के सेनापति आदम खाँ और पीरमुहम्मद ने बाज़बहादुर को पराजित किया। अन्ततोगत्वा बाज़बहादुर अकबर के दरबार में दो-हज़ारी मनसबदार हुआ।

बाज़बहादुर की गणना अकबरी दरबार के प्रमुख कलाकारों में है। यह मुहम्मद आदिलशाह अदली का शिष्य होने के कारण बाबा रामदास और तानसेन का गुरुबन्धु था और खुसरो-पद्धति का महान् पण्डित। वाजिदअलीशाह ने इसे क़व्वाली का नायक कहा है।[2]

---

१. भरत-कोष, भूमिका, पृ० १२

२. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ६३, मध्ययुग का इतिहास, पृ० ३४७, मआसिरुल् उमरा, भाग-१, पृ० १४८, १५०, १५१, १५२, आईने अकबरी ब्लॉकमैन, पृ० ६८१-६८२, सौतुल्मुबारक, रामपुर-प्रति

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ग्वालियर-नरेश, सूफ़ी और संगीत

फ़ीरोज़ तुग़लक़ के राज्य-काल (१३५१-८८ ई०) के अन्तर्गत १३७५ ई० में एक उत्साही तोमर नवयुवक वीरसिंहदेव ने ग्वालियर पर अधिकार कर लिया और अपने पुत्र लक्ष्मण के नाम पर लक्ष्मणपौर का निर्माण कराया। वीरसिंहदेव के उत्तराधिकारी उद्धरणदेव हुए, तत्पश्चात् विक्रमदेव ने शासन किया। दिसम्बर १४०२ ई० में विक्रमदेव ने दिल्ली के सेनापति इक़बाल खाँ को मार भगाया। १४०४ ई० में विक्रमदेव दिल्ली को कर देने के लिए विवश हुए, इस समय दिल्ली पर ख़िज़्र ख़ाँ का शासन था।

डूंगरेन्द्रसिंह (राज्यरोहण-वर्ष १४२४ ई०) ने मालवा के सुल्तान हुशंगशाह का मानमर्दन किया। १४३८ ई० में मालवा के सुल्तान से नरवरगढ़ छीन लिया, जिसका स्मारक नरवरगढ़ का विजय-स्तम्भ है। 'गणेशपौर' नामक द्वार का निर्माण भी इनके दुर्ग में हुआ। ग्वालियर दुर्ग के चारों ओर विशाल जैन प्रतिमाएँ भी इनके ही युग में बनीं। डूंगरेन्द्रसिंह के स्वर्गवास (१४५५ ई०) के पश्चात् कीर्तिसिंह ग्वालियर-नरेश हुए,- जौनपुर के हुसेनशाह शर्क़ी के साथ जिनक़ा संघर्ष रहा। १४७८ ई० में जब हुसेनशाह शर्क़ी को हराकर बहलोल लोदी ने जौनपुर को दिल्ली-साम्राज्य का अंग बना लिया, तब महाराज कीर्तिसिंह ने पराजित हुसेनशाह को शरण देकर कालपी पहुँचा दिया। इससे बहलोल चिढ़ गया, ग्वालियर पर आक्रमण हुआ और नरवरगढ़ हाथ से निकल गया। १४७९ ई० में कीर्तिसिंह का स्वर्गवास हो गया और छः-सात वर्ष तक महाराज कल्याणसिंह शासक रहे, जिन्होंने 'बादल महल' का निर्माण कराया।

१४८६ ई० में महाराज मानसिंह तोमर ग्वालियर के राजसिंहासन पर बैठे और इन्होंने १५१६ ई० तक निर्विघ्न राज्य किया, सभी प्रतिपक्षियों को ये मुंहतोड़ उत्तर देते रहे।

मानसिंह के समय तक चिश्ती सूफ़ियों की परम्परा समस्त भारत में अपना प्रचार कर चुकी थी। मानसिंह के राज्यारोहण से पचास-साठ वर्ष पूर्व ही विजयनगर-दरबार पर मुस्लिम प्रभाव भलीभाँति हो चुका था और षड्ज-पंचम

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अचल हो गये थे। इन परिवर्तनों की ओर 'संगीत-रत्नाकर' के टीकाकार कल्लिनाथ ने संकेत किया है।[1]

लोकभाषा के माध्यम से संगीत का आश्रय लेकर चिश्ती सूफ़ियों ने जिकरी, नुक्तः और खयाल जैसे माध्यमों से अपने विचारों का प्रचार जनसाधारण में किया था और अन्योक्ति का आश्रय लेकर शिक्षित व्यक्तियों के लिए ग़ज़लों का प्रचार कराया, जो लौकिक प्रेमपरक भी थीं और जिनके अध्यात्मपरक अर्थ भी थे।

मानसिंह ने विष्णुपदों के रूप में भक्तिपरक पदों की रचना करायी, फलतः जयदेव और विद्यापति की शैली पुष्टिमार्ग के अष्टछाप के गेय पदों के रूप में उभरी और शृंगारपरक 'ध्रुवपद' ब्रजभाषा के माध्यम से ग़ज़लों के जवाब में उभरे। खुसरोवाद से आक्रान्त संगीत-गंगा को एक नया मोड़ मिला, जिसकी धारा से मुग़ल दरबार अभिषिंचित हो गया। मुग़लों की राजधानी ब्रज के अन्तर्गत आगरा में थी, अतः ब्रजभाषा के माध्यम से उभरा हुआ ध्रुवपद मुग़ल सम्राटों के मानस पर छा गया। और अधिकांश क़व्वाल दिल्ली, जौनपुर इत्यादि में रह गये।

मानसिंह तोमर ने निराश हिन्दू-मानस को नवीन आलोक से जगमगा दिया। चिश्ती-परम्परा के सैकड़ों वर्ष से बद्धमूल प्रयत्न को मानसिंह तोमर ने अपने केवल तीस वर्ष के शासन में धोकर रख दिया। संगीत के इतिहास में यह अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना है।

मानसिंह ने लोकभाषा को राजसभा में प्रतिष्ठित किया और उसमें गीत-रचना करायी, मन्दिरों में होनेवाले संगीत की परम्परा को पुनरुज्जीवित किया। दरबारी संगीत को लोकजीवन के निकट लाने का सफल प्रयत्न किया, उस समय के गायकों का परिचय नायिकाभेद से कराया और अमीर खसरो एवं हुसेनशाह शर्क़ी की भाँति नवीन रागों की उद्भावना को प्रोत्साहन दिया। अतः मानसिंह तोमर संगीत-जगत् में युगप्रवर्तक महापुरुष हैं।

मानसिंह तोमर के कलाकारों में पाण्डवी दाक्षिणात्य हैं, जो स्नान के लिए कुरुक्षेत्र आये थे; लोहंग भी सम्भवतः दाक्षिणात्य हैं; महमूद मुसलमान थे, कहाँ के निवासी थे और क्या गाते थे, यह कहना कठिन है; बैजू फ़ारसी ग़ज़लें भी अत्यन्त आकर्षक रूप में गाते थे और मूर्च्छना-पद्धति के मर्मज्ञ थे; बख्शू मानसिंह तोमर और बैजू के शिष्य थे, 'संगीत-रत्नाकर' की अनेक परिभाषाओं के साथ जिनका प्रगाढ़ परिचय था।

मानसिंह तोमर के समकालीनों में सिकन्दर लोदी की सभा के मियाँ ताहर

१. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ३५-३८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ब्राह्मणों को ख़ुसरो-परम्परा में दीक्षित कर रहे थे, मालवे का सुल्तान ग़यासुद्दीन खिलजी भारतीय श्रुति-सिद्धान्त का मज़ाक उड़ा रहा था, विजयनगर के प्रसिद्ध नरेश कृष्णदेव राय के सभा-पण्डित लक्ष्मीनारायण अपने ग्रन्थ 'संगीत-सूर्योदय' में गमल और क़ौल का लक्षण कर रहे थे और जौनपुर का सुल्तान हुसेन शर्क़ी नवीन रागों की अवतारणा कर रहा था, इस परिस्थिति में मानसिंह ने युग का प्रवाह एक नयी दिशा में मोड़ दिया।

ग्वालियर में सूफ़ी थे, परन्तु सूफ़ियों की उस परम्परा में संगीत ग्राह्य नहीं था। शैख़ मुहम्मद ग़ौस ग्वालियरी इसी प्रकार के सूफ़ी थे।

बैजू, बख़्शू, तानसेन, स्वामी हरिदास और गोपाल जैसी विभूतियाँ मानसिंह तोमर के कृतित्व का परिणाम थीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुग़ल सम्राट, सूफ़ी और संगीत

बाबर (१५२६-३० ई०)

बाबर को संगीत में अत्यन्त रुचि थी, समय मिलने पर वह संगीत-गोष्ठी आयोजित करता था। इसकी सभा में शैख़ी नाई नामक एक ऐसा कलाकार था जिसने बाल्यकाल से बीन बजाने का अभ्यास किया था। शैख़ी की अपेक्षा पूर्ववर्ती किसी बीनकार का नाम अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। शैख़ी कहाँ का निवासी और किसका शिष्य था, यह नहीं कहा जा सकता। बीन के अतिरिक्त यह बरबत और गिटार भी बजाता था, संगीत-रचना में भी यह निपुण था।

बाबर चिन्तक संगीतज्ञों को प्रोत्साहन देता था, इसके आश्रित क़ुले मुहम्मद ऊदी ने बरबत में तीन तारों की वृद्धि की थी। बाबर का एक अन्य कलाकार ग़ुलाम शादी नवीन रागों और धुनों का प्रणेता था। यही योग्यता गिटारवादक शाह क़ुली में थी।

गायक एवं क़ानूनवादक ख़्वाजा अब्दुल्लाह मख़ारीद, बरबतवादक हुसेन, ऊदी, गायक मीर अंजू और बनाई भी बाबरी दरबार के प्रमुख कलाकारों में थे।[१]

शैख़ घूरन बाबर के अत्यन्त प्रतिष्ठित हिन्दुस्तानी अमीरों में थे और दोआबा (गंगा-यमुना का मध्यवर्ती भाग) के निवासी थे। बदायूनी ने इन्हें अपने युग का अद्वितीय संगीत-महारथी कहा है।[२] शैख़ घूरन एक बार बाबर के साथ जौनपुर में थे तो उन्हें ज्वर आ गया। उन्होंने बीस दिन तक उपवास किया, परन्तु उनका ज्वर न उतरा। जौनपुर के प्रसिद्ध सूफ़ी शैख़ अदहन की सम्मति पर उन्होंने अच्छे गायकों और वादकों को बुलाकर संगीत-गोष्ठी का आयोजन कराया। इस गोष्ठी में गाने के प्रभाव से वे रोने लगे, फलतः उनका ज्वर

---

१. मुग़लकालीन भारत (बाबर), पृ० ५९५-५९६

२. वही, पृ० २०६, पाद-टिप्पणी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उतर गया, उन्होंने तत्काल भोजन किया और उस गोष्ठी में स्वयं भी गाया।

एक बार उन्होंने बहार के उत्सव में संगीत-गोष्ठी आयोजित की। अनेक सूफ़ी, गायक और वादक विद्यमान थे। गाना-बजाना हुआ, परन्तु किसी पर कोई प्रभाव न हुआ। इस स्थिति में शैख़ घूरन ने स्वयं एक ग़ज़ल गायी, सभी श्रोता रोने लगे।[1]

शैख़ घूरन आगरा पर बाबर का अधिकार होने के पश्चात् दो-तीन सहस्र दोआबा-निवासी धनुर्धरों के साथ आगरा पहुँचकर बाबर की सेवा में उपस्थित उपस्थित हुए थे।[2] इन्होंने बाबर की ओर से अनेक युद्धों में भाग लिया। बाबर की दृष्टि में इनका अत्यधिक सम्मान था। भारत के बाहर से आनेवाले अफ़ग़ानों तथा प्रतिष्ठित लोगों को यही बादशाह की सेवा में प्रस्तुत करते थे।[3]

बाबर की भक्ति चिश्ती सूफ़ियों में थी। उसने इब्राहीम लोदी को पराजित करने के पश्चात् २४ अप्रैल, १५२६ ई० को निज़ामुद्दीन चिश्ती और २५ अप्रैल, १५२६ ई० को ख़्वाजा क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी के मज़ार की प्रदक्षिणा की थी। शैख़ घूरन जैसे लोगों के प्रति बाबर का अत्यधिक स्नेह उसकी सूफ़ी-भक्ति का परिणाम था।[4] मुनेर पहुँचकर बाबर ने शैख़ शर्फ़ुद्दीन याह्या के मज़ार की प्रदक्षिणा भी की थी।[5]

ग्वालियर के दुर्ग पर बाबर की सेनाओं का अधिकार शैख़ मुहम्मद ग़ौस के परामर्श से हुआ था, जो बाबर के शब्दों में एक विद्वान दरवेश थे और अनेक व्यक्ति जिनके मुरीद और अनुयायी थे। ग्वालियर की ओर बाबर की सेनाओं के अभियान के समय शैख़ घूरन भी साथ थे।[6]

ग्वालियर पहुँचकर बाबर ने मानसिंह तोमर और उनके पुत्र विक्रमादित्य (जो १५२६ ई० में इब्राहीम लोदी की ओर से बाबर के विरुद्ध युद्ध करते हुए मारे गये थे) के भवनों की सैर की थी।[7] ३० सितम्बर, १५२९ ई० को एक झरने के पास एक संगीत-गोष्ठी आयोजित की गयी थी, जिसमें गायकों और वादकों ने अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन बाबर के समक्ष किया था।[8]

---

१. मुग़लकालीन भारत (बाबर), पृ० ४४१-४४२
२. वही, पृ० ७६
३. वही, पृ० ४४४
४. वही, पृ० १५८-१५९
५. वही, पृ० ३२१
६. वही, पृ०२१९-२२०
७. वही, पृ० २७५-२७६
८. वही, पृ० २७९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुग़ल बादशाहों और ग्वालियर के कलाकारों के पारस्परिक सम्बन्धों का सूत्रपात्र यहाँ से होता है।

हुमायूँ (१५३०-५६ ई०)

हुमायूँ सूफ़ियों का भक्त था। शैख़ मुहम्मद ग़ौस ग्वालियरी के प्रति इसका अत्यन्त अनुराग था।[1] शैख़ बहलोल उसकी सेवा में थे।[2]

संगीत की ओर भी हुमायूँ की अत्यन्त रुचि थी। जब वह ईरान की सहायता लेने के लिए तहमास्प की सेवा में गया था, तब २६ जनवरी, १५४४ ई० को साबिर क़ाक नामक गायक ने 'सेहगाह मुक़ाम' (रागविशेष) में अमीर शाही की ग़ज़ल इस प्रकार गायी कि सूफ़ी लोग झूम उठे।[3] सैनिक अभियानों में भी मीर क़लन्दर एवं अन्य गायक-वादक हुमायूँ के दुःख को दूर करते रहते थे।[4] चंगवादक क़ासिम, ग़िजकवादक कोचक, क़ुबूज़वादक मुख़ालिस, हाफ़िज़ सुल्तान रख़्ता, ख़्वाजा कमालुद्दीन हुसेन एवं हाफ़िज़ मुहेरी जैसे कलाकार सैनिक पड़ावों पर भी उसका मनोरंजन करते थे।

सुन्दर सलोने तथा रूपवान संगीतज्ञों, वादकों और अच्छे स्वर में पाठ करनेवालों का नाम हुमायूँ ने 'अहलेमुराद' रखा था, क्योंकि इनकी कला सभी का मनोरंजन करती है।[5] सोमवार और बुधवार मुराद के दिन कहलाते थे, इन दोनों दिनों को 'अहलेमुराद' की इच्छा पूरी करने के लिए रखा गया था।[6] यदि कोई 'अहलेमुराद' षड्यन्त्र या शत्रुता प्रारम्भ करता तो उसे दण्डनीय घोषित अथवा पदच्युत कर दिया जाता था।[7]

मुराद-विभाग का प्रबन्ध हुमायूँ ने अपनी ख़ास मजलिस के योग्य और विश्वसनीय सखा अमीर उवैस मुहम्मद को सौंपा था।[8] हुमायूँ ने आगरा में अपनी विजय का उत्सव एक महीने तक मनाया था, जिसमें गायक-गायिकाओं के संगीत की धूम रही थी।[9]

हुमायूँ ने नदी के तट पर उत्सव के लिए एक गृह का निर्माण कराया था,

---

१. आबे कौसर, पृ० ८४
२. मुग़लकालीन भारत (हुमायूँ), पृ० १७०
३. वही, पृ० १५५
४. वही, पृ० १८६
५. वही, पृ० ३८७
६. वही, पृ० ३८९
७. वही, पृ० ३९१
८. वही, पृ० ३९२
९. वही, पृ० ४००

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जिसे 'तिलिस्म' कहा जाता था।[1]

१५३५ ई० में जब बहादुरशाह गुजराती को पराजित करके हुमायूँ ने माण्डो पर अधिकार किया, तब प्रसिद्ध भारतीय गायक बैजू की गायी हुई ग़ज़ल से प्रभावित होकर हुमायूँ ने क़त्लेआम बन्द करा दिया था और बैजू को प्रभूत सम्मान देकर पुरस्कृत किया और उन्हें दरबारी गायकों में स्थान दिया था। अवसर पाकर बैजू बहादुरशाह गुजराती के पास भाग गये, परन्तु हुमायूँ ने इस आचरण पर अत्यन्त खेद प्रकट किया था।[2]

अकबर (१५५६-१६०५ ई०)

अकबर शैख़ मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह के दर्शन के लिए प्रतिवर्ष जाता और एक पड़ाव पहले से पैदल यात्रा करता था। कुछ इच्छाओं की पूर्ति की कामना से वह सीकरी या आगरे से ही अजमेर तक पैदल गया था। समाधि की परिक्रमा करना, वहाँ निष्ठापूर्वक ध्यानमग्न होना, हज़ारों-लाखों रुपये के चढ़ावे चढ़ाना और बहुमूल्य भेंटें समर्पित करना उसका स्वभाव था।[3]

वह शैख़ सलीम चिश्ती का अनन्य भक्त था। सलीम (जहाँगीर) की गर्भवती माता को उसने शैख़ सलीम चिश्ती के हुजरे (निवास-स्थान) में भेज दिया था, नवजात शिशु का नाम भी उसने सलीम रखा। इस घटना के दो वर्ष पश्चात् अकबर अपनी राजधानी ही सीकरी ले गया। १५७५ ई० में अकबर ने शैख़ सलीम चिश्ती की नयी ख़ानकाह के पास ही 'इबादतख़ाने' के रूप में एक अन्य प्रासाद का निर्माण कराया। प्रत्येक शुक्रवार को नमाज़ के इबादतख़ाने' में विद्वान, सूफ़ी और मौलवी इत्यादि एकत्र होकर धार्मिक चर्चाएँ करते थे।[4] भविष्य में यही 'इबादतख़ाना' 'दीनेइलाही' की स्थापना का आधार बना।

बाबर का सम्पर्क ग्वालियर के कलाकारों से आया था, मानसिंह तोमर की सभा में ब्रजभाषा-ध्रुवपदों के आदिगायक बैजू फ़ारसी ग़ज़ल गाकर हुमायूँ को सन्तुष्ट कर चुके थे और ग्वालियर के तानसेन ने 'संगीत-रत्नाकर' जैसे प्रौढ़ ग्रन्थ को अकबर के विचार का विषय बना दिया था।

आहत और अनाहत नाद, छियासठ श्रुतियाँ, कल्लिनाथ, हनुमान और भरत के द्वारा मानी विभिन्न श्रुतियों का सप्रयोग प्रदर्शन, बारह विकृत स्वर, वादी

---

१. मुग़लकालीन भारत, पृ० ५१०
२. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ४७३
३. आबे क़ौसर, पृ० ८७
४. वही, पृ० ८७-८८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संवादी, अनुवादी और विवादी स्वर, ग्रह, अंश, न्यास, तिरसठ अलंकार, उनचास कूट तान, औडुव-षाडव का प्रत्यक्ष प्रयोग और प्रदर्शन अकबर के सामने गुणियों की कसौटी था।[1]

अकबर 'संगीत-रत्नाकर' के रहस्यों को समझता और (विदेशी) गुणियों को समझाता था।[2]

अकबरी दरबार में 'राग-सागर' नामक एक ग्रन्थ की रचना हुई, जिसमें तीन अध्याय हैं। इसमें शार्ङ्गदेव और रामामात्य दोनों की चर्चा है। पुस्तक का सम्बन्धअकबरी दरबार से हो ही चुका था। 'राग-सागर' में छियानवे रागों के ध्यान हैं, जिनमें 'उषाषी' (हुसेनी) राग का ध्यान भी है।

---

१. 'प्रथम ओम् अनहद' दूजै अनहद,तिनि करि छियासठ स्रुतें उपजाईं, कल्लिनाथ, हनूमन्त, भत्त (भरत) मत संगीत मैं खर्ज कौन धुनि होत तुम प्रवीन गाइनि हौ तौ गाओ, तौ करौ इत परवान। सो सुनैं कौन-कौन केती-केती खरजादिक सबिद सबिद सुर पर ठहरानी, बारह विक्रत सुर, वादी, संवादी, अनुवादी, विवादी, तिनि मैं होत ग्रह, अंस, न्यास तिनि ठौर रूप प्रधान। तिनि तैंतीनि ग्राम विस्तार विस्तारी, सरेगमपधनिधपमगरेसा आदि दै दै कैं, और कई-अक तान सुजानत गुन मान कीजै प्रमान, पन्द्रह गमक अलापत छिन वाहि त्रेसठ उनचास कूट तान औडुव खाडव कीजै निधान। जातैं हो गुन मान। न कीजै आन जंह अगिम अथाह, इनि कोउ जानत हो सम्पूरन गुन मान तो गाइ सुनावौ साहि अकबर के आगैं सही होत विद्या कौ परिवान।'

(राग-माला, हस्तलिखित, १७६ 'अ')

२. "तार (ताल) कालको लय जानत अकबर गुन को ही री निधान। जे गुन रूप प्रकासन, ते तुम सब जानत हौ, राग उदय की जा छवि चितई, ऐते पर सुरगुरु सुलतान। राग धाइ (अध्याय) सुर धाइ (अध्याय), औडव, खाडव, सम्पूरन गुनी गन्ध्रप तिनि के फरत बिनान। सप्त धाइ (सप्ताध्यायी=संगीत-रत्नाकर) संगीत कौ साह जलाल लालरि समाइ, बैठि गुनि अनि देत विद्यादान।"

(वही, २७५ 'अ')

"मन्दिर तुमको नवल मुबारक होवे, कोटि बरस लौं कीजै राज महाराज। नाना प्रकारनि सों वे जो मनाइ इम्रत रसरंग छायौ, कायम दायम जौं लौं चन्द्र धरनि, ब्रह्माण्ड ताज। जिनकी मति आगें और की न देखौं, अस्तुति कैसे कै करौं एक रसना मेरे संगीतरत्नाकर के भेद पढ़त न्यारे साज। साहि अकबर प्यारो चिरंजीव रहो, चिरंजीवी इन्द्रसम तोहि देहौं, वेबरसत चत्रमास, तुम द्वादस क्षर लायौ, तिनि के गुनी गन्ध्रप निस्तारन तारन विधना रचि पचि क समान।"

(वही, ५७ 'आ')

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रामामात्य का ग्रन्थ 'स्वरमेल कलानिधि' अकबर के बाल्यकाल में ही लिखा गया था और रामामात्य की मृत्यु अकबरी दरबार में तानसेन के प्रवेश (१५६२ ई०) के तीन वर्ष पश्चात् (१५६५ ई०) तलकोटा-युद्ध हुई।

अकबरी दरबार के ग्वालियरी कलावन्तों पर दक्षिन का कोई प्रभाव न पड़ा, अपितु ये कलावन्त अकबरी दरबार के विदेशी मुसलमान कलाकारों पर छाये रहे। अकबरी दरबार के प्रसिद्ध छत्तीस कलाकारों की सूची में तानसेन का नाम सर्वप्रथम होना और ग्वालियरी कलावन्तों को विदेशी कलाकारों से पहले गिनाया जाना इस तथ्य का परिचायक है।

यह सत्य है कि पुण्डरीक ने अपने ग्रन्थों में उत्तर भारतीय रागों का वर्गीकरण मेल-पद्धति से किया और यह भी सत्य है कि इस युग में अभारतीय पद्धति से, प्रचलित रागों का संकर भी हुआ, तथापि ग्वालियर के कलावन्त मूर्च्छना-पद्धति के मर्मज्ञ और 'संगीत-रत्नाकर' के परम भक्त रहे, मुग़ल बादशाहों ने इसी परम्परा के गुणियों को दरबार में प्रमुख स्थान दिया।

'राग-सागर' की प्रसिद्धि न हुई।[1]

अस्तु, अकबर का दरबार 'संगीत-रत्नाकर' के रागों और तालों को भले ही पुनरुज्जीवित न कर सका हो, तथापि ब्रजभाषा-ध्रुवपदों के शिल्प-विधान पर 'संगीत-रत्नाकर' के प्रबन्धाध्याय में वर्णित 'ध्रुव' नामक प्रबन्ध के भेदों का प्रभाव भलीभाँति था। इस प्रबन्ध में प्रयोज्य 'पद' ही 'ध्रुवपद' कहलाते थे।

अकबरी युग में ही 'ध्रुवपद' की एक शैली का विकास बीजापुर का सुल्तान इब्राहीम अदिलशाह द्वितीय (राज्य-काल १५२७-१६२७ ई०) कर रहा था और इसने अपने ग्रन्थ 'नवरस' में स्वरचित ध्रुवपदों का संग्रह किया था।

अकबर मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी की दरगाह के चक्कर लगाता था, तो इब्राहीम अदिल शाह चिश्ती-परम्परा के प्रसिद्ध सन्त शेख बन्दानवाज़ गेसूदराज़ की प्रशंसा के गीत गाता था। अकबर सूर्यपूजक हो गया था, तो इब्राहीम आदिलशाह ने 'नवरस' का मंगलाचरण सरस्वती की स्तुति से किया था। मौलवी लोग अकबर को 'काफ़र' कहने लगे थे, तो इब्राहीम आदिलशाह पर भी इस्लाम के परित्याग करने का आरोप लगाया गया था। अकबरी दरबार में रचित 'राग-सागर' में यदि रागों के ध्यान थे, तो 'नवरस' में भी राग-रागिनियों

१. फ़खरुल्लाह ने 'रागदर्पण' के नवें बाब में लिखा है कि 'राग-सागर' की रचना अकबरी युग के कलाकारों की सहायता से हुई, जो मानसिंह तोमर के गुणियों जैसे न थे। 'राग-सागर' की प्रति गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास में है। 'संगीत', नवम्बर १९५९, पृ० २८ पर 'राग-सागर' की चर्चा देखिए।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के शब्दचित्र थे।

अकबरी दरबार में पुण्डरीक रागों का वर्गीकरण मेलों में कर रहे थे, और 'नवरस' में भोपाली, रामक्री, भैरव, हजीज़, मारू, आसावरी, देशी, पूरवी, बरारी, तोडी, मलार, गौरी, कल्याण, घनाश्री, कानरा, केदार और नौरोज़ को 'मुक़ाम' कहा जा रहा था।

यह स्थिति मार्नासिह तोमर की क्रान्तिदर्शिता का परिणाम थी, जिसका बीज मार्नासिह तोमर के प्रयत्नों में है।

यह वास्तविकता संगीत के विद्यार्थी को आश्चर्य में डाल देनेवाली है कि अकबरी दरबार से सम्पृक्त पुण्डरीक ने वर्तमान 'कल्याण' ठाठ का वर्णन नहीं किया, जिसे सदारंग की परम्परा 'आदिम या 'प्रथम' ठाठ मानती है, न वर्तमान 'भारवा' ठाठ ही पुण्डरीक द्वारा वर्णन का विषय बना और न वर्तमान 'तोडी' ठाठ की ही चर्चा पुण्डरीक ने की।

उत्तर भारतीय मुस्लिम गायक 'तोडी' को ही मियाँ की तोड़ी कहते हैं, सम्भव है तानसेन ही इस राग के आविष्कारक हों और 'कल्याण' को भी अकबरी युग से ही प्रमुखता प्राप्त हुई हो, यह भी सम्भव है कि यह विकास पुण्डरीक के स्वर्गवास के पश्चात् हुआ हो।

यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि अकबर के चार पीढ़ी बाद औरंगजेब के युग में वेंकटमरवी ने वर्तमान कल्याण ठाठ और तोडी ठाठ का वर्णन करते हुए इनसे सम्बद्ध रागों को 'तुरुष्कप्रिय' कहा। वेंकटमरवी के पिता गोविन्द दीक्षित इन रागों का वर्णन नहीं करते। वेंकटमरवी अपने पिता गोविन्द दीक्षित के अनुयायी न होकर अपने परमगुरु तानप्पा के अनुयायी थे, जिन्होंने लक्ष्य को दृष्टि में रखकर एक नवीन सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था।[1]

स्थिति का यह चित्रण इस वास्तविकता का परिचायक है कि ग्वालियर-परम्परा ने मुग़ल दरबार के माध्यम से कालान्तर में सुदूर दक्षिण तक को प्रभावित किया।

बाबर के दरबार में हमें 'शैखी' नामक बीनकार का परिचय मिलता है, अकबर के प्रमुख कलाकारों में बीनकार लोग ग्वालियर के ही हैं, बीजापुर का आदिलशाह भी बीनकार है, जिसकी बीन का नाम 'मोतीखान' है।[2] यह स्थिति सिद्ध करती है कि सोलहवीं शती में विकसित वीणाओं पर 'बीन' का प्रभाव है। दक्षिण का कोई ग्रन्थकार वीणा पर सारिका-स्थापन की विधि नहीं बताता। अकबरी दरबार से प्रभावित पुण्डरीक के शिष्य श्रीकण्ठ वीणा की

---

१. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ५०-५१
२. वही, पृ० ६९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सारिकाओं से सम्बद्ध स्वर-संज्ञाओं के विषय में किसी ग्रन्थ का प्रमाण न देकर उन्हें गुरुपदिष्ट मात्र बताते हैं।[१]

दाक्षिणात्यों का शंकराभरण 'रास' मुक़ाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, यही भरत के षड्ज ग्राम की निषादादि मूर्च्छना है। इस तथ्य से परिचित होने में दाक्षिणात्य बन्धुओं को कुछ समय लगेगा।

अस्तु, खिलजियों के दरबार में 'ख़ुसरोवाद' की जो प्रचण्ड लहर उठी थी, उसका प्रभाव राग-वर्गीकरण पर तो आज तक है, परन्तु मुग़ल-युग में विषय की दृष्टि से वह 'आगरा' में फीकी पड़ गयी और व्रजभाषा-ध्रुवपदों ने मुग़लों के दरबार में हिन्दुओं के देवी-देवताओं की स्तुति को भी पुन: प्रतिष्ठित करा दिया।

यह निश्चित है कि अकबर की गर्दन पर यदि मौलवी लोग सवार रहते, तो यह न हो पाता। अकबर के संरक्षण और तानसेन जैसे प्रतिभाशाली युग-पुरुष की प्रतिभा ने संगीत में भारतीयता को नवचेतना दी। अकबर के द्वारा तानसेन को दी गयी उपाधि 'कण्ठाभरण-वाणी-विलास'[२] अकबर के हृदय की भारतीयता और तानसेन की योग्यता का परिचय देती है।

तानसेन ने अपने मधुर गान से शैख़ सलीम चिश्ती का मन भी मोह लिया था।[३]

जहाँगीर (१६०५-२७ ई०)

हुमायूँ ईरान के बादशाह तहमास्प की सेना की सहायता से भारत में साम्राज्य की स्थापना कर सका था। उसने विवश होकर ईरान के शाह की प्रसन्नता के लिए दिखावटी तौर पर शीआ धर्म अंगीकृत कर लिया था।[४] हुमायूँ के दरबार में ईरानी (शीआ) और 'तूरानी' (सुन्नी) मुसलमानों के दो दल हो गये थे। यह दलबन्दी मुग़ल साम्राज्य के इतिहास में सदैव रही।

अकबरी दरबार में शैख़ अहमद उर्फ़ 'इमाम रब्बानी' नामक चिश्ती विद्वान् और दरवेश 'दीनेइलाही' के प्रमुख आलोचकों में रहे। इनके पिता मख़दूम शैख़ अब्दुल्अहद, शैख़ अब्दुल्कुद्दूस गंगोही (ज० १४५५-मृ० १५३८ ई०) के मुरीद थे।[५] शैख़ अब्दुल्कुद्दूस गंगोही हिन्दी में कविता करते थे और

१. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ४७
२. वही, पृ० १०२
३. वही, पृ० १०३
४. मुग़लकालीन भारत (हुमायूँ), भाग-१, पृ० ६५९-६०, पाद-टिप्पणी
५. आबे कौसर, पृ० ११३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इनकी मुद्रा 'अलखदास' थी। शैख़ गंगोही के पीर शैख़ मुहम्मद के पिता शैख़ अब्दुल्हक़ चिश्ती साबिरी थे।[१]

'दीनेइलाही' की स्थापना चिश्ती-परम्परा के सूफ़ियों को भला कैसे भली लगती, अतः शैख़ अहमद इमाम रब्बानी अबुल्फ़जल के प्रबल प्रतिस्पर्धी हो गये। ये नक्शबन्दिया परम्परा के सूफ़ी ख्वाजा बाक़ी अल्लाह के मुरीद हो गये।[२] सम्भव है अकबर पर शैख़ सलीम चिश्ती की कृपा की प्रतिक्रिया में शैख़ अहमद ने चिश्ती-परम्परा का परित्याग कर दिया हो। अकबरी दरबार के प्रमुख सरदार इनके मुरीद हो गये थे। इन सरदारों की सहायता से शैख़ अहमद 'दीनेइलाही' की कपाल-क्रिया करने और जहाँगीर को राजसिंहासन दिलाने में सफल हुए।

शैख़ अहमद शीआ धर्म के भी प्रबल आलोचक थे, अतः उन्होंने जहाँगीर की सेना में शीआविरोधी प्रचार के लिए अपने ख़लीफ़ा बदीउद्दीन की नियुक्ति की। यह समाचार जहाँगीर के प्रधान मन्त्री आसफ़ ख़ाँ को मिला, जो स्वयं शीआ था, उसने जहाँगीर से शैख़ अहमद की शिकायत कर दी। इन्हें जहाँगीर ने दरबार में तलब किया और ये प्रायः एक वर्ष ग्वालियर के दुर्ग में क़ैद रहे। कुछ समय बाद ये छोड़ दिये गये और १६२४ ई० में इनकी मृत्यु हुई।[३]

नक्शबन्दिया परम्परा में 'संगीत' त्याज्य है। अतः जहाँगीर जैसे रसिक को शैख़ अहमद क्या प्रभावित करते! जिस दरबार में शीआ प्रधानमन्त्री हों वहाँ नक्शबन्दियों की दाल कैसे गलती!

जहाँगीर संगीत-रसिक था। एक ध्रुवपद के अनुसार जहाँगीर भरत के मत पर विचार करनेवाला, सप्ताध्यायी (संगीत-रत्नाकर) से सुपरिचित संगीत के अंग-अंग में सयाना और गुणग्राहक था।[४] जहाँगीर को ध्रुवपदगायक भी प्रिय थे, यह ग़ज़ल और क़व्वाली भी सुनता था। तानसेन के पुत्र विलास ख़ाँ, छतर ख़ाँ, ख़ुर्रमदाद, मक्खू, इमजान शौकी, उस्ताद मुहम्मद इत्यादि कलाकार इसके दरबार की शोभा थे। शौकी नामक क़व्वाल और ग़ज़लगायक को जहाँगीर ने 'आनन्द ख़ाँ' उपाधि दी थी। उस्ताद मुहम्मद ने जहाँगीर की मुद्रा से अंकित कुछ ग़ज़लों की रचना की थी, जहाँगीर ने प्रसन्न होकर उसे रुपयों से तुलवाया, हौदे सहित एक हाथी दिया।[५]

---

१. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ११०
२. आबे कौसर पृ० ११४
३. वही, पृ० १२०-१२१
४. राग-माला, हस्तलिखित, पृ० १८६ 'अ'
५. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ७५-७६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शाहजहाँ (१६२७-५८ ई०)

शाहजहाँ तक आते-आते दरबार पर चिश्ती सूफ़ियों का प्रभाव उतना न रहा था। कुछ लोगों का कहना है कि वह शैख़ अहमद का मुरीद हो गया था,[1] दूसरी ओर कहा जाता है कि शाहजहाँ ने शैख़ हसन मुहम्मद चिश्ती के पुत्र शैख़ मुहम्मद आज़म चिश्ती की सेवा में अपने हाथ से तैयार की हुई एक गुदड़ी और टोपी के साथ, पाँच गाँवों का दानपत्र और एक लाख रुपये भेजे थे।[2] अपने आचरण से शाहजहाँ चिश्तियों का ही भक्त सिद्ध होता है। अपने पुत्र औरंगज़ेब के हाथों वन्दी होने के पश्चात् भी शाहजहाँ का संगीत-प्रेम अक्षुण्ण रहा, गायक-गायिकाओं और नर्तकियों ने उस अवस्था में भी इसके दुःख को भुलाया। औरंगज़ेब उस समय भी इसकी सेवा में गायकों को भेजता रहता था।[3]

जगन्नाथ कविराय शाहजहानी दरवार के अत्यन्त समर्थ ध्रुवपदकार थे, जिन्होंने नवयौवन में ही ध्रुवपद-रचना के विषय में तानसेन से प्रशंसापूर्ण आशीर्वाद प्राप्त किया था। तानसेन के पुत्र विलास खाँ के दामाद लाल खाँ प्रधान दरबारी कलावन्त थे, जिन्हें शाहजहाँ ने 'गुनसमन्दर खाँ' उपाधि दी थी। लाल खाँ की मृत्यु के पश्चात् उनका आनुवंशिक स्थान लाल खाँ के पुत्र खुशहाल खाँ को मिला, जिनकी तोडी पर शाहजहाँ ऐसा मुग्ध था कि तोडी सुनते समय कोई आदेश-पत्र उसके सम्मुख रख दिया जाये, तो उसे पढ़े बिना ही उस पर हस्ताक्षर कर देता था। खुशहाल खाँ के भाई बिसराम खाँ और रसवैन खाँ भी शाहजहाँ के प्रिय कलाकारों में थे। तानसेन का शिष्य रंग खाँ भी शाहजहानी दरबार का उत्कृष्ट कलाकार था।[4]

एक ध्रुवपद में कहा गया है कि सरस्वती जिस पर प्रसन्न होती है, वही गुणी शाहजहाँ को रिझा सकता है।[5]

शाहजहाँ के प्रिय पुत्र दारा ने भगवद्गीता, उपनिषद् और योगवासिष्ठ का अनुवाद फ़ारसी में कराया था, यह तथ्य सिद्ध करता है कि शाहजहाँ मौलवियों के हाथ की कठपुतली न था और उसके अपने पुत्र तक विचारों में स्वतन्त्र थे।

---

१. आबे कौसर, पृ० १२५
२. अब्दुल ग़फ़ूर, पृ० ३५९-३६२
३. मुग़ल राजमहलों का जीवन, पृ० ७, ९
४. संगीत-चिन्तामणि, पृ० ३२७, मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ७६-७७
५. राग-माला, हस्तलिखित, पृ० १५३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शाहजहाँ के दूसरे संगीतानुरागी पुत्र शुजा ने किशनसेन कलावन्त को अपने पिता से माँग लिया था।

औरंगज़ेब (१६५६-१७०७ ई०)

सामान्यतया औरंगज़ेब को रूखा-फीका और कट्टर मुसलमान व्यक्ति समझा जाता है। अंग्रेज इतिहासकारों ने उसका यही रूप चित्रित किया है और यही जनमानस में अंकित हो गया है, परन्तु साहित्य और संगीत के विद्यार्थी जानते हैं कि वह काव्यकला-मर्मज्ञ, संगीतज्ञ, संगीतानुरागी एवं अत्यन्त रसिक व्यक्ति था।

औरंगज़ेब अपने बहन-भाइयों में सातवाँ था, उसका जन्म गुजरात के अन्तर्गत दोहद नामक स्थान में २४ अक्तूबर, १६१८ ई० को हुआ। अठारह वर्ष की आयु तक उसका पालन-पोषण मुग़ल अन्तःपुर के उस वातावरण में हुआ जो विलास से परिपूर्ण था, जहाँ गायिकाओं की भीड़ रहती थी और उनकी देखभाल के लिए महिला संगीतनिरीक्षिकाएँ नियुक्त थीं।[1] उस युग में प्रत्येक मुग़ल शाहज़ादे के लिए संगीत का ज्ञान अनिवार्य समझा जाता था।[2] अतः औरंगज़ेब भी संगीत-मर्मज्ञ था।[3] औरंगज़ेब के अठारह जन्मोत्सव अन्तःपुर में हुए थे, जिसके निवासी राग-रंग में सर्वांग मग्न थे।

१६३७ ई० में औरंगज़ेब का विवाह दिलरसबानो के साथ हुआ, जो ईरान के राजवंश में उत्पन्न शाहनवाज़ खाँ की पुत्री थी। लगभग इसी समय उसकी नियुक्ति दक्षिण की सूबेदारी पर हुई और वह चार सूबों का सूबेदार नियुक्त हुआ। इन चारों सूबों में चौंसठ दुर्ग थे। १६५४ ई० तक वह दक्षिण में सूबेदार रहा।

इसी अवधि में एक बार औरंगज़ेब बुरहानपुर गया, जहाँ उसका मौसा मीर खलील नियुक्त था। हीराबाई नामक संगीत-नृत्यकुशल दासी मीर खलील की उपपत्नी थी। एक दिन तापती नदी के किनारे एक बाग़ में औरंगज़ेब ने हीराबाई को अपनी मौसी की दासियों के साथ देख लिया, जो अत्यन्त चपलता-पूर्वक उछलकर आम के एक पेड़ से आम तोड़ रही थी। औरंगज़ेब हीराबाई की इस अदा पर मोहित हो गया और उसने अपनी मौसी से हीराबाई को माँग लिया और जी-जान से उस पर निछावर हो गया। औरंगज़ेब की समस्त प्रार्थनाओं को अनसुनी करके एक दिन हीराबाई ने उसे मद्य-पान के लिए बाध्य

---

१. मुग़ल राजमहलों का जीवन, पृ० १८
२. भारत का इतिहास, पृ० २१५
३. आबे कौसर, पृ० १४३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किया। विवश होकर जब औरंगज़ेब ने मदिरा का पात्र ओठों को लगाना चाहा, तभी हीराबाई ने हाथ पकड़कर कहा कि मैं केवल तुम्हारे प्रेम की परीक्षा कर रही थी। औरंगज़ेब स्वयं अपने हाथ से भरकर मदिरा का प्याला हीराबाई को देता था। उसने हीराबाई का नाम ज़ैनाबादी बेगम रखा था। वह यौवनकाल में दिवंगत हो गयी। औरंगाबाद में एक सरोवर के निकट हीराबाई को दफ़नाया गया।[1]

मौसा की उपपत्नी को अपनी अंकशायिनी बनानेवाला और उसके हाथ से प्रस्तुत की हुई मदिरा को पीने के लिए प्रस्तुत नवयुवक औरंगज़ेब परमविलासी और विवेकशून्य प्रेमी तो कहला सकता है, आदर्श मुसलमान या परहेज़गार किसी भी दृष्टि से सिद्ध नहीं होता।

यदि आप इस घटना को नवयौवन का दोष मानकर टाल दें, तो भी काम नहीं चलता। राज्याभिषेक के समय औरंगज़ेब की आयु बयालीस वर्ष थी, इस समय उसने दारा की एक परम सुन्दरी और मद्यप उपपत्नी को घर में डालकर उसका नाम 'उदयपुरी महल' रखा, जो जार्जिया देश की एक सुन्दरी थी। यह जीवन-भर शराब पीती रही थी। मृत्यु के समय तक औरंगज़ेब इस सुन्दरी के संकेतों पर नाचता रहा और इस सुन्दरी के वशीभूत होकर औरंगज़ेब ने इसके पुत्र (कामबख़्श) के अनेक अपराधों की ओर ध्यान न दिया।[2]

औरंगज़ेब की कामुकता और स्त्रैणता को सिद्ध करने के लिए ये दो उदाहरण पर्याप्त हैं। औरंगज़ेब मदिरा-पान करता हो या न करता हो, परन्तु सुरामत्त सुन्दरियों के अधरामृत का पान अवश्य करता और ख़ूब करता था।

जो लोग औरंगज़ेब को कट्टर मुसलमान या ज़िन्दा पीर सिद्ध करना चाहते हैं, उनके लिए ये दो उदाहरण पर्याप्त हैं। औरंगज़ेब ने दारा से गायिकाएँ और नर्तकियाँ भी माँगी थीं।[3]

औरंगज़ेब मुहूर्त इत्यादि निकलवाने पर भी विश्वास करता था। मुहूर्त साधने के लिए ही वह २३ जुलाई, १६५८ ई० को सिंहासनासीन हुआ।[4] ध्रुवपदों में कहा गया कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश और व्यास की कृपा से औरंगज़ेब सम्राट् हुआ है।[5] यह ध्रुवपद औरंगज़ेब को अत्यन्त सुन्दर लगा। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश इत्यादि के नामों का बहिष्कार उसने न किया।

---

१. औरंगज़ेब, पृ० २०, मआसिरुल उमरा, भाग ३, पृ० १२३
२. औरंगज़ेब, पृ० १६
३. वही, पृ० २०-२१
४. औरंगज़ेबनामा, पृ० ३५
५. राग-माला, हस्तलिखित, पृ० ५३ 'अ'

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

औरंगज़ेब के यश का वर्णन करनेवाले कुछ अन्य ध्रुवपदों में भी गुरु, सरस्वती, परब्रह्म इत्यादि की कृपा से ही औगरंज़ेब जैसे स्वामी की प्राप्ति बतायी गयी है।[1]

ऐसी दशा में औरंगज़ेब को हिन्दू-धर्मविरोधी अथवा संगीतविरोधी मानना हमारे लिए तो सम्भव नहीं है।

१६५३ ई० में औरंगज़ेब पुनः दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया गया था। इस समय संगीत-कला ने एक राजनीतिक चमत्कार कर दिया। घटना अत्यन्त मनोरंजक है। शाहजहाँ के महामन्त्री अलीमर्दान खाँ की सम्मति थी कि मुर्शिद क़ुली खाँ शाहजहाँ के जिस पुत्र का साथ देगा, वही सम्राट होगा। इसीलिए शाहजहाँ ने मुर्शिद क़ुली खाँ को दारा की सेवा में नियुक्त कर दिया था। औरंगज़ेब मुर्शिद क़ुली खाँ को अपने साथ दक्षिण ले जाना चाहता था, उसने महामन्त्री अलीमर्दान खाँ से अपनी इच्छा कह दी। शाहजहाँ मुर्शिद क़ुली खाँ को औरंगज़ेब के साथ दक्षिण कभी न भेजता। अतः तानसेन के पुत्र बिलास खाँ के दौहित्र खुशहाल खाँ कलावन्त को एक लाख रुपये रिशवत देकर इस बात के लिए तैयार किया गया कि वह नौरोज़ के उत्सव में शाहजहाँ के समक्ष उसका प्रिय राग तोडी गाकर उसे रसमग्न कर दें, उसी समय अली मर्दान खाँ मुर्शिद क़ुली को दक्षिण भेजने के विषय में बादशाह की सेवा में अर्ज़ी पेश कर दें, जिससे कि वह बिना पढ़े ही अर्ज़ी पर स्वीकृतिसूचक हस्ताक्षर कर दे। योजना के अनुसार कार्य हो गया, खुशहाल खाँ को एक लाख रुपये मिल गये। औरंगज़ेब का मनोरथ सिद्ध हो गया। मुर्शिद क़ुली खाँ दक्षिण चला गया। शाहजहाँ मूर्ख बना और दारा के दुर्भाग्य का सूत्रपात हो गया। कुछ समय पश्चात् शाहजहाँ को सारे षड्यन्त्र का ज्ञान हो गया और खुशहाल खाँ पदच्युत कर दिया गया।[2]

संगीत की इस घातक शक्ति से औरंगज़ेब का चौकन्ना हो जाना स्वाभाविक था। सम्भवतः अपने राज्य-काल के ग्यारहवें वर्ष में औरंगज़ेब ने दरबार में गायकों का गाना बन्द कर दिया, परन्तु गायक लोग दरबार में उपस्थित होते रहे।[3] यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि औरंगज़ेब के अन्तःपुर में गाना-बजाना सदैव होता रहा।[4]

यद्यपि औरंगज़ेब ने खुशहाल खाँ को अपने आनुवंशिक स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया, उसे उसकी पैतृक उपाधि 'गुनसमन्दर खाँ' भी दी, परन्तु उसी

१. राग-माला, पृ० १२० 'अ'
२. खुलासतुल् ऐश आलमशाही, मिर्सति आफताबनुमा, पृ० ३६० 'ब'
३. औरंगज़ेबनामा, भाग-२, पृ० ६
४. मुग़ल राजमहलों का जीवन, पृ० २३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

खुशहाल खाँ और उसके भाई बिसराम खाँ तथा रसबैन खाँ का वह घातक गाना दरबार में बन्द कर दिया, जिस गाने में मग्न होकर बादशाह पढ़े बिना ही आदेशपत्रों पर स्वीकृतिसूचक हस्ताक्षर कर दे। शाहजहाँ का नमक खाने पर भी जो खुशहाल खाँ एक लाख रुपये लेकर विश्वासघात कर सकता था, वह औरंगज़ेब को भी धोखा दे सकता था।

दरबार में गाने के निषेध से सम्बद्ध निर्णय विशुद्ध राजनीतिक था।

राज्याभिषेक के उत्सवों में औरंगज़ेब शायरों, मौलवियों और गायकों को पारितोषिक देता था।[1] नौरोज़ इत्यादि की महफ़िलें भी सजाता था, तुलादान भी करता था और जड़ाऊ तख़्त पर भी बैठता था।[2] औरंगज़ेब व्रजभाषा का सत्कवि था, कालिदास त्रिवेदी, चिन्तामणि, वृन्द, अब्दुल जलील बिलग्रामी जैसे कवि आलमगीरी दरबार के सम्पर्क में थे।

फ़कीरुल्लाह ने १६६५ ई० में औरंगज़ेब को समर्पित करने के लिए 'राग-दर्पण' की रचना की। १६६६ ई० में औरंगज़ेब के एक कर्मचारी मिर्ज़ा रौशन ज़मीर ने 'संगीत पारिजात' का फ़ारसी-अनुवाद किया। ये दोनों ग्रन्थ रामपुर की रज़ा-लाइब्रेरी में सुरक्षित हैं।

शिया मुसलमान औरंगज़ेब के विरोधी थे। कुँवर रामसिंह की सहायता से १६६६ ई० में शिवाजी औरंगज़ेब की क़ैद से भाग चुके थे, अतः अपने हिन्दू सेनापतियों पर औरंगज़ेब का विश्वास न रहा था। अपने साम्राज्य के पक्ष में उसे सुन्नी मुसलमान मिल सकते थे, अतः उनको पक्ष में करने के लिए उसने कट्टर सुन्नी मुसलमान होने का ढोंग रचा। औरंगज़ेब के युग में क़ाज़ियों और मौलवियों को अपार अधिकार मिले, उन लोगों ने औरंगज़ेब के नाम पर उन अधिकारों का दुरुपयोग किया।

यद्यपि किरपा पखावजी को औरंगज़ेब ने 'मृदंग राय' उपाधि दी, हयात सरसनैन जैसे कलाकार पर अनुग्रहों की वर्षा कर दी, तथापि औरंगज़ेब को ज़िन्दा पीर या आदर्श मुसलमान सम्राट सिद्ध करने के इच्छुक सज्जनों ने औरंगज़ेब के द्वारा दरबार में गाना बन्द किये जाने के राजनीतिक निर्णय को औरंगज़ेब के इस्लाम-प्रेम से सम्बद्ध कर दिया।

औरंगज़ेब ने २९ जनवरी, १६५९ ई० को यह आदेश दिया था कि बनारस के पुराने मन्दिरों को न तोड़ा जाये, ब्राह्मणों को पुजारी का कार्य यथापूर्व करने दिया जाये। न तो उन्हें सताया जाये और न अन्य हिन्दुओं को पीड़ित

---

१. औरंगज़ेबनामा, पृ० ४४
२. वही, पृ० ६, ६१-६२, ६५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किया जाये।[१] 'भारत में अंग्रेजी राज्य' नामक प्रसिद्ध पुस्तक में स्व० सुन्दरलाल जी ने औरंगज़ेब के कई दानपत्रों का उल्लेख किया है, जो मन्दिरों के पुजारियों के पास आज भी सुरक्षित हैं।

यह स्पष्ट है कि औरंगज़ेब एक विलक्षण व्यक्ति था, उसने अपने ग्यारहवें राज्य-वर्ष में इतिहास लिखने का भी निषेध कर दिया, वह जानता था कि सरकारी इतिहास-लेखक सत्य का गला घोंटते हैं, उनका तात्पर्य बादशाह को प्रसन्न करना होता है। निष्पक्ष इतिहास-लेखक विरल होते हैं। 'अकबरनामा' अकबर की स्तुतियों का भण्डार है, तो 'मुन्तखबुत्तवारीख' अकबर की निन्दाओं का पुंज। 'अकबरनामा' अकबर की प्रेरणा से लिखा गया था, तो 'मुन्तखबुत्तवारीख' अकबर की चोरी से। इतिहास-लेखकों का विरोध औरंगज़ेब ने भले ही किया हो, इतिहास का विरोध भला कौन कर सकता है। औरंगज़ेब के प्रथम दस राज्य-वर्षों का इतिहास मिर्ज़ा मुहम्मद क़ासिम ने लिखा है, इतिहास-लेखन का कार्य इसके बाद निषिद्ध हो गया।

औरंगज़ेब के युग का प्रसिद्ध इतिहास 'मुन्तखबुल् लुबाब' खफ़ी खाँ के द्वारा औरंगज़ेब की चोरी से लिखा गया। श्री यदुनाथ सरकार ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक खोज करके औरंगज़ेब के विषय में अपना विस्तृत ग्रन्थ लिखा है, जो तीन खण्डों में प्रकाशित किया गया है।

'राग-माला' में संगृहीत ध्रुवपद औरंगज़ेब के संगीतानुराग के साक्षी हैं। राजनीतिक आवश्यकताओं से विवश होकर उसने अनेक संकीर्णहृदय क़ाजियों और मुल्लाओं को अबाध अधिकार दे दिये, जो हिन्दुओं और शियाओं के शत्रु थे।

औरंगज़ेब विरोधों का पुंज प्रतीत होता है। एक ओर औरंगज़ेब संगीतानुरागी शैख मुहीउद्दीन याह्या मदनी चिश्ती का भक्त था और उन्हें एक सहस्र रुपये वार्षिक भेजता था[२], दूसरी ओर वह संगीतविरोधी नक्शबन्दिया सम्प्रदाय के सूफ़ी ख्वाजा मुहम्मद मासूम के प्रति भी श्रद्धा रखता था[३], तीसरी ओर वह सूफ़ीविरोधी था और अपने क़ाजियों द्वारा व्यवस्था देने पर उसने प्रसिद्ध सूफ़ी 'सरमद' का वध करा दिया था।

ये परिस्थितियाँ बताती हैं कि औरंगज़ेब हृदय से न तो किसी का भक्त था, न उसके लिए कोई श्रद्धेय था। उसके सम्मुख उसके राजनीतिक लक्ष्य थे, उनकी पूर्ति के लिए वह सूफ़ियों, मौलवियों और क़ाजियों का उपयोग करता था।

---

१. इकबाल अहमद जौनपुरी, पृ० ६६३-६६४

२. अब्दुल ग़फ़ूर, पृ० १६३-६६

३. आबे कौसर, पृ० १४०, १४५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शैख़ मुहीनुद्दीन याह्या मदनी ने औरंगज़ेब के सम्राट् होने की भविष्यवाणी की थी, उसने शैख़ साहब की सेवा में एक सहस्र रुपये वार्षिक बाँध दिये, परन्तु जब उन्होंने संगीत की वकालत की, तब उसने उनकी एक न सुनी।

नक़्शबन्दिया परम्परा के सूफ़ी, संगीतविरोधी सूफ़ी-भक्तों के नेता थे, औरंगज़ेब ने उनके प्रमुख ख़्वाजा मुहम्मद मासूम के प्रति भी श्रद्धा दिखा दी, परन्तु क़ाज़ियों को सन्तुष्ट करने के लिए 'सरमद' जैसे सूफ़ी के प्राण भी ले लिये।

शाहज़ादा मुराद अर्थात् अपने एक भाई के साथ क़ुरआन शरीफ़ को साक्षी करके उसने जो वादे किये, उन्हें क्षण-भर में तोड़कर औरंगज़ेब ने मुराद का अन्त करा दिया। ऐसे व्यक्ति को आदर्श मुसलमान कहना सचमुच साहस का काम है।

औरंगज़ेब के शासन-काल के अन्तिम भाग में शाह कलीमुल्लाह नामक प्रतिभाशाली सूफ़ी प्रचारक दिल्ली में रहकर चिश्ती-परम्परा के सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे थे। इन्होंने अपने मुरीद और ख़लीफ़ा ख़्वाजा निज़ामुद्दीन औरंगाबादी को दक्षिण में प्रचारकार्य सौंपा। औरंगज़ेब दक्षिण में उलझा हुआ था, दिल्ली में भी चिश्ती-परम्परा के एक अच्छे केन्द्र की आवश्यकता थी।

शाह कलीमुल्लाह की मृत्यु मुहम्मदशाह रंगीले के दूसरे राज्य-वर्ष १७२१ ई० में १७ अक्तूबर को हुई। ये शैख़ मुहीउद्दीन याह्या मदनी के शिष्य थे, इनका जन्म १६५१ ई० में हुआ था। शाहजहाँ की मृत्यु (१६६६ ई०) के समय ये पन्द्रह वर्ष के थे तथा औरंगज़ेब की मृत्यु (१७०७ ई०) के समय इनकी आयु छप्पन वर्ष थी। चिश्ती-परम्परा के प्रति औरंगज़ेब का प्रगाढ़ अनुराग न देखकर ही इन्होंने दिल्ली में अपना केन्द्र रखा।

बहादुरशाह—प्रथम (१७०७-१२ ई०)

औरंगज़ेब की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मुअज़्ज़म अपने भाई आज़म को मारकर 'बहादुरशाह' के नाम से सिंहासनासीन हुआ। थोड़े दिनों के पश्चात् उसने हैदराबाद के निकट अपने भाई कामबख़्श को भी पराजित किया। मेवाड़, मारवाड़ और अजमेर के राजाओं के साथ थोड़े संघर्ष के पश्चात् बहादुरशाह की सन्धि हो गयी। सिखों के साथ भी बहादुरशाह का युद्ध हुआ, सिख पराजित हुए, परन्तु उनका नेता बन्दा वैरागी हाथ न आया। १७१२ ई० में बहादुरशाह की मृत्यु हो गयी।

नेमत ख़ाँ 'सदारंग' की शिक्षा-दीक्षा बहादुरशाह प्रथम के दरबार में हुई। 'सदारंग' ने अपने युग के अनेक प्रमुख गुणियों से तो शिक्षा ली ही, एक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तातारी क़व्वाल और एक बंगाली नटवे ने उन्हें विशेष रूप से प्रशिक्षित किया। महाकवि देव जैसे आचार्य के चरणों में बैठकर संगीत और साहित्य की शिक्षा लेने का अवसर भी 'सदारंग' को मिला।[1]

बहादुरशाह प्रथम के युग में भी शाह कलीमुल्लाह चिश्ती-परम्परा की विचारधारा का प्रचार दिल्ली में करते रहे।

बहादुरशाह ने शम्भाजी के पुत्र साहूजी को बन्दीगृह से मुक्त कर दिया था। 'रागमाला' में बहादुरशाह की प्रशंसा से युक्त अनेक ध्रुवपद संगृहीत हैं। विषय, भाषा और शैली की दृष्टि से ये ध्रुवपद उत्कृष्ट हैं।

जहाँदारशाह (१७१२-१३ ई०)

शाह कलीमुल्लाह चिश्ती जहाँदारशाह के युग में भी दिल्ली में अपना कार्य करते रहे और दरबार में 'सदारंग' भी रहे।[2] बादशाह की प्रेयसी लाल कुँवरि नामक नर्तकी थी, जिसके प्रभाव में आकर इसने अनेक संगीतजीवियों को शाही मुरातिब दे दिये थे। यही लोग राजप्रसाद में आकर बादशाह के साथ मदिरापान करते थे।[3] 'मौजदीन' (मुईजुद्दीन जहाँदारशाह) की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद 'राग-माला' में हैं।

संगीतानुरागी, विलासी एवं मद्यप होने पर भी जहाँदारशाह कायर न था। इसने युद्धक्षेत्र में प्राण दिये।

फ़र्रुख़सियर (१७१३-१९ ई०)

फ़र्रुख़सियर के युग में भी शाह कलीमुल्लाह दिल्ली में जीवित थे, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि दरबार में उनका कितना प्रभाव था। 'सदारंग' भी सम्भवतः दरबार के आश्रित रहे। इस युग में दरबार के अमीरों के दो दल हो गये थे, ईरानी (शिया) और तूरानी (सुन्नी)। ईरानी दल के नेता प्रसिद्ध सैयद-बन्धु अब्दुल्लाह और हुसेनी ख़ाँ थे और तूरानी दल का नेता निज़ामुल्-मुल्क था। सैयद-बन्धुओं ने ही फ़र्रुख़सियर को बादशाह बनाया था और उन्होंने ही मराठों की सहायता से क़िले पर अधिकार करके फ़र्रुख़सियर का सिर कटवा लिया।

मुहम्मदशाह रंगीला (१७१९-४८ ई०) 29 yrs.

सितम्बर सन् १७१९ ई० में बहादुरशाह प्रथम का पोता मुहम्मदशाह

---

१. मिराति आफ़तावनुमा, पृ० ३९२ 'अ'
२. वही
३. हिन्दी वीर-काव्य, पृ० ६९, ३०३-३०४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सिंहासनासीन हुआ, जो संगीत-जगत् में 'रंगीले' के नाम से प्रसिद्ध है।

आलम और घनानन्द जैसे कवि मुहम्मदशाह के सम्पर्क में थे। अतः मुहम्मदशाह रंगीले की सभा में महाकवि देव के समर्थ शिष्य 'सदारंग' को घनानन्द जैसे रसमूर्ति महाकवि का दुर्लभ सत्संग प्राप्त था। 'देव' और 'घनानन्द' के सत्संग ने 'सदारंग' की काव्य-प्रतिमा को परिमार्जित किया, फलतः सदारंग की प्रौढ़ रचनाओं के समक्ष पिछले सभी ध्रुवपदकारों का रंग फीका पड़ गया।

मुहम्मदशाह के संरक्षण, महाकवियों के सत्संग, प्रतिभाशालिनी एवं परम रूपवती कमालबाई और पन्नाबाई जैसी शिष्याओं के द्वारा की हुई सेवा, लतीफ खाँ जैसे परम रसिक मित्र के स्नेह और सूफ़ियों के अनुग्रह ने 'सदारंग' के विरल व्यक्तित्व का निर्माण किया। सदारंग अनेक भाषाओं और अनेक विषयों के ज्ञाता थे, उन्होंने कई विषयों में रचनाएँ कीं।

नवीन चिन्तन की प्रवृत्ति को सदारंग ने पुनर्जीवित किया। उनकी शिष्याएं भी रागों के निर्माण में समर्थ थीं।

यद्यपि खयाल-गायक मुहम्मदशाह शर्क़ी के युग से होते चले आ रहे थे, तथापि सदारंग ने ख़याल को नयी शैली दी। ख़याल की विषय-वस्तु में सर्वदा भारतीय शृंगार आ गया। उनकी अभिव्यंजना-शैली नायिकाभेद के अनुसार हो गयी। उनके इस कार्य से क़व्वाल-शैली के खयाल-गायक ताज खाँ और उनके पुत्र ग़ुलाम रसूल खाँ का रंग फीका पड़ गया। इसी युग से कलावन्तों और क़व्वाल बच्चों में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा का सूत्रपात हुआ। परिणाम यह हुआ कि एक ही नाम के दो-दो राग प्रचलित हो गये। कलावन्तों ने क़व्वालों को वेरागा कहना आरम्भ किया और तानों के हरीरे भरनेवाले क़व्वाल कलावन्तों को अपाहिज कहने लगे। 'तू ग़लत, तू ग़लत की तू-तू मैं-मैं' आरम्भ हो गयी।

मुहम्मदशाह रंगीले के युग में ही नेमत खाँ 'अदारंग' के अनुज खुसरो खाँ ने 'सितार' का आविष्कार किया। खुसरो खाँ के पुत्र और 'सदारंग' के शिष्य एवं दामाद फ़ीरोज़ खाँ 'अदारंग' ने सितार के लिए 'फ़ीरोज़खानी' गतों की बन्दिश की।

'सदारंग' और 'अदारंग' से पहले ध्रुवपद-गायकों की ऐसी मुद्राएँ नहीं मिलतीं, जिनके अन्त में 'रंग' शब्द हों। मुहम्मदशाह रंगीले के ही युग में दक्षिण के दो रचनाकारों के नाम क्रमशः 'युवरंग' और 'परिमलरंग' मिलते हैं। 'परिमल-रंग' के पद तेलुगु भाषा में हैं।[1] इन मुद्राओं में समानता आकस्मिक नहीं

१. देखिए, संगीत-शास्त्र, पृ० २९७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सकारण प्रतीत होती है। मुअज़्ज़मजाह (बहादुरशाह प्रथम) और जहाँदारशाह से सम्बद्ध ध्रुवपदों में कहीं भी 'सदारंग' शब्द नहीं मिलता, अतः अनुमान किया जा सकता है कि नेमत खाँ ने अपने उन ध्रुवपदों को ही 'सदारंग' मुद्रा से अंकित किया जिनकी रचना मुहम्मदशाह रंगीले के युग में हुई।

दक्षिण के विचारक 'सदारंग' की परम्परा से प्रभावित हुए। 'वीणा-रहस्य' इस तथ्य का प्रमाण है।[1]

मुग़लसाम्राज्य की दशा औरंगज़ेब के युग में ही जर्जर हो गयी थी। बहादुरशाह को बुढ़ापे में सिंहासन मिला था, जहाँदारशाह सर्वथा अयोग्य था, फ़र्रुखसियर को सैयद-बन्धुओं का विद्रोह खा गया और मुहम्मदशाह का साथ उसके परस्परद्वेषी सेनापति भला क्या दे सकते थे! ईरानी बन्दूकों का मुकाबला न तो हाथी कर सके, न भारतीय सिपाही।

मुहम्मदशाह रंगीले की पराजय का दोष उसके संगीतप्रेम को देना न तो मुहम्मदशाह के साथ न्याय है न संगीत के साथ।

रंगीले ने 'सदारंग' के रूप में संगीत को ऐसा 'युगपुरुष' दिया, जिसने अकबरी युग के तानसेन की प्रसिद्धि को अपने तेज से मन्द कर दिया और सदारंग की मृत्यु के साथ ही 'भारतीय संगीत' का देदीप्यमान सूर्य अस्त हो गया।

मुग़ल-युग का उपसंहार

अहमदशाह (१७४८-१८५४ ई०), आलमगीर सानी (१७५४-५९ ई०), शाह आलम (१७५९-१८०६ ई०), अकबर द्वितीय (१८०६-२७ ई०) और बहादुरशाह 'ज़फ़र' (१८५७-६२ ई०) के युग में हमें संगीत की दृष्टि से कोई उल्लेखनीय व्यक्ति नहीं मिला।

शाह आलम द्वारा प्रणीत रचनाओं का संग्रह शाह आलम ने 'नादिरात शाही' में किया है, जिसका ऐतिहासिक मूल्य है।

---

१. संगीत चिन्तामणि, पृ० ३०९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जीवनियाँ

अमीर ख़ुसरो

अमीर ख़ुसरो का वास्तविक नाम अबुल् हसन था। इनके पिता अमीर सैफ़ुद्दीन महमूद (सैफ़ी शम्सी) लाचीननिवासी तुर्क थे और वे सुल्तान शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (राज्य-काल १२१०-३६ ई०) और उसके उत्तराधिकारियों के समय उच्च पदों पर नियुक्त रहे। अमीर ख़ुसरो के नाना, सुल्तान बलबन के राज्य के एक उच्च पदाधिकारी एमादुलमुल्क थे, जो मूलतः हिन्दू थे, अतः अमीर ख़ुसरो ने कहा है कि मेरी मातृभाषा हिन्दी है।[1]

---

१. चेहल रोज़:, निज़ामी बंसरी, पृ० २८ पर उद्धृत।
'चेहल रोज़':, का लेखक हरदेव देवगिरि के राजवंश का नवयुवक था, मुसलमानों की रीति-नीति, आचार-विचार इत्यादि को समझने के लिए जिन राजवंशीय नवयुवकों को देवगिरि के राजा ने फ़ारसी की शिक्षा दिलायी थी, उनमें से एक हरदेव भी था। निज़ामुद्दीन चिश्ती के मुरीद, अमीर ख़ुसरो के सहपाठी और मित्र हसन अली संजरी दिल्ली से देवगिरि गये थे, उन्हीं से शेख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती की प्रशंसा सुनकर हरदेव दिल्ली चला गया और निज़ामुद्दीन चिश्ती का मुरीद एवं विश्वासपात्र हो गया। मुसलमान होने पर इसका नाम 'अहमद अयाज़' रखा गया। सम्राट होने पर मुहम्मद तुग़लक़ ने अपनी पुत्री का विवाह हरदेव के साथ कर दिया और प्रधान-मन्त्री बनाया, इस समय हरदेव की उपाधि 'अमर अयाज़' ख़्वाजाजहाँ थी। लकड़ी के बने जिस महल के नीचे दबकर ग़यासुद्दीन तुग़लक़ की मृत्यु हुई, वह हरदेव की ही देखरेख में बनवाया गया था। सम्राट होने के पश्चात 'फ़ीरोज़ तुग़लक़' ने हरदेव का वध करा दिया।
हरदेव ने फ़ारसी में एक पुस्तक 'चेहल रोज़:' लिखी है, जिसके उद्धरणों का अनुवाद ख़्वाजा हसन निज़ामी ने अपनी उर्दू पुस्तक 'निज़ामी बंसरी' में किया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai
खुसरो 1253 — 1325

अमीर खुसरो का जन्म ६५१ हि० (१२५३ ई०) में हुआ, उनके जन्म-स्थान होने का गौरव उत्तर प्रदेश के एटा जिले में स्थिति पटयाली ग्राम को प्राप्त है। इस प्रकार अमीर खुसरो पितृ-परम्परा से तुर्क और मातृ-परम्परा से व्रजवासी हिन्दू (भारतीय) थे।

१५६४ ई० में खुसरो के पिता एक युद्ध में मारे गये और अमीर खुसरो का लालन-पालन उनके नाना के संरक्षण में हुआ।

सुलेख में अमीर खुसरो के गुरु सादुद्दीन मुहम्मद थे, परन्तु उनका मन काव्य-रचना में अधिक लगता था। आठ वर्ष की आयु में खुसरो ने काव्य-रचना आरम्भ कर दी थी और बारह वर्ष की आयु में उनका काव्य अच्छी कोटि का होने लगा था।

अमीर खुसरो बाल्य-काल में ही शैख निज़ामुद्दीन के मुरीद हो गये थे। उन्हें तथा उनके बड़े भाई को उनके पिता सैफ़ुद्दीन मुरीद कराने के लिए शैख निज़ामुद्दीन चिश्ती की सेवा में ले गये। अमीर खुसरो द्वार पर ही बैठ गये, उनके पिता और भाई अन्दर चले गये। अमीर खुसरो ने मन-ही-मन दो शैरों की रचना की, जिनमें निज़ामुद्दीन चिश्ती को सम्बोधित करते हुए कहा गया था कि तू ऐसा बादशाह है जिसकी शक्ति से महल के कंगूरे पर बैठा हुआ कबूतर भी बाज़ बन सकता है, एक दीन याचक तेरे द्वार पर आया है, वह भीतर आ जाये या लौट जाये।

थोड़ी ही देर बाद अन्दर से एक सेवक ने आकर खुसरो को शैख निज़ामुद्दीन के दो शैर सुनाये, जिनका अर्थ था कि हक़ीक़त (सत्य, धर्म) के मैदान का मर्द अन्दर चला आये और हमारा अन्तरंग बन जाये, यदि आगन्तुक नासमझ और नादान है, तो जिस रास्ते से आया है, उसी रास्ते से लौट जाये।

अमीर खुसरो यह सुनते ही आतुर होकर अन्दर पहुँचे, उन्होंने शैख निज़ामुद्दीन चिश्ती के चरणों में अपना सिर रख दिया और उनके मुरीद हो गये।[१] अमीर खुसरो जो ग्रन्थ लिखते, निज़ामुद्दीन चिश्ती की सेवा में प्रस्तुत करते, शैख निज़ामुद्दीन उन पर यदा-क़दा कहीं-कहीं असहमति भी प्रकट करते थे, जिसका तात्पर्य सुधार था।[२]

अमीर खुसरो ने फ़ारसी के प्रमुख कवियों की रचनाओं का अध्ययन किया और प्रत्येक कवि की शैली का अनुकरण करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने

---

१. चेहल रोजा (निज़ामी बंसरी में उद्धृत), पृ० २९९-३००
२. वही, पृ० ४०५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

फ़ारसी, तुर्की और अरबी के अतिरिक्त हिन्दी का भी अध्ययन किया था।[1]

बलबन के राज्य-काल (१२६५-८७ ई०) में अमीर खुसरो बलबन के भतीजे अलाउद्दीन किशली खाँ के दरबार में नौकर हो गये। इसके पश्चात् उन्होंने बलबन के कनिष्ठ पुत्र बुग़रा खाँ की नौकरी कर ली। वे बुग़रा खाँ के साथ लखनौती भी गये, परन्तु बलबन के साथ लौट आये। प्रायः १२७६ ई० में खुसरो बलबन के ज्येष्ठ पुत्र शाहज़ादा मुहम्मद के नदीम (मुसाहब) होकर मुलतान चले गये। शाहज़ादा मुहम्मद १२८४-८५ ई० में मुग़लों के हाथ से मारा गया और अमीर खुसरो मुगलों के हाथों बन्दी हो गये। उन्हें हिरात और बलख़ में बन्दी-जीवन बिताना पड़ा। बन्दीगृह से भागकर वे किसी प्रकार ग़यासुद्दीन बलबन की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने शाहज़ादा मुहम्मद की मृत्यु से सम्बद्ध शोक-काव्य बलबन को सुनाया। उस काव्य के प्रभाव से बलबन इतना रोया कि उसे ज्वर चढ़ आया और तीसरे दिन उसकी मृत्यु हो गयी।

बलबन की मृत्यु के पश्चात् खुसरो अमीर अली जामदार के आश्रित रहे और उसके साथ अवध चले गये। १२८८ ई० में इन्हें कैक़ुबाद (राज्य-काल १२८७-९० ई०) ने बुला लिया और ये शाही दरबार के आश्रित हो गये। कैक़ुबाद की माँ हिन्दू (भारतीय) थी[2] और अमीर खुसरो भी भारतीय नारी के सन्तान थे, अतः कैक़ुबाद खुसरो को अत्यन्त स्नेह करता था।

जलालुद्दीन खिलजी (राज्य-काल १२९०-९५ ई०) के युग में अमीर खुसरो की नियुक्ति बादशाही पुस्तकालय के अध्यक्ष के स्थान पर हुई, वे प्रतिदिन सुल्तान की महफ़िल में नयी-नयी ग़ज़लें प्रस्तुत करते थे। अलाउद्दीन खिलजी (राज्य-काल १२९५-१३१६ ई०) के युग में भी खुसरो दरबार से सम्बद्ध रहे, क़ुतुबुद्दीन खिलजी (राज्य-काल १३१६-२० ई०) के दरबार में उन्हें बड़ा सम्मान मिला। ग़यासुद्दीन तुग़लक़ (राज्य-काल १३२०-२५ ई०) के साथ १३२४ ई० में अमीर खुसरो बंगाल गयें और इसी वर्ष निज़ामुद्दीन के स्वर्गवास के पश्चात् १३२५ ई० में अमीर खुसरो स्वर्गवासी हो गये। उन्हें निज़ामुद्दीन चिश्ती की समाधि के समीप ही समाविस्थ किया गया। मृत्यु के समय

---

१. 'आदिकालीन भारत' पृ. २७७
खुसरो ने अपने ग्रन्थ 'नूह-सिपहर' में लिखा है, "मुझे विभिन्न भाषाओं का ज्ञान है, मैं उन्हें समझ और बोल सकता हूँ।…दिल्ली के आसपास हिन्दी भाषा बोली जाती है, जो पहले से प्रचलित है।"
खिलजीकालीन भारत, पृ० १८० का सारांश

२. चेहल रोज़ा (निज़ामी बंसरी में उद्धृत), पृ० ३०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

खुसरो की आयु बहत्तर वर्ष थी।

बादशाहों के विषय में खुसरो का दृष्टिकोण था कि सभी बादशाह डाकू होते हैं, उनमें अच्छाइयाँ भी होती हैं और बुराइयाँ भी। वे सिंहासन पर अधिकार करने अथवा उसकी रक्षा करने के लिए माँ, बाप, भाई, गुरु किसी की भी हत्या करने से नहीं हिचकते। उनके गुण 'गुण' हैं और दोष 'दोष' हैं।[1]

अमीर खुसरो का यह दृष्टिकोण उस समय के दरबारियों के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। निरंकुश शासकों के दरबार में जीवन बिताना और सुल्तानों का अनुग्रहभाजन रहना सामान्य बात नहीं।

कैक़ुबाद के हत्यारे जलालुद्दीन खिलजी की प्रशंसा खुसरो ने की। जलालुद्दीन खिलजी के हत्यारे अलाउद्दीन खिलजी की प्रशंसा तो खुसरो ने की ही, उस घृणित हत्या से कहीं शैख़ बू अली क़लन्दर जैसे प्रभावशाली सन्त रुष्ट न हों, अतः गा-बजाकर क़लन्दर को रिझाने के लिए भी अमीर खुसरो भेजे गये और उन्होंने यह कार्य कुशलतापूर्वक किया भी।[2]

ग़यासुद्दीन तुग़लक़ (राज्य-काल १३२०-२५ ई०) के युग में भी अमीर खुसरो दरबार के कृपापात्र रहे।

क़ुतुबुद्दीन खिलजी और ग़यासुद्दीन तुग़लक़ दोनों ही खुसरो के पीर निज़ामुद्दीन चिश्ती के परम विरोधी थे, परन्तु नीतिवश खुसरो ने दरबार से विरोध मोल न लिया और अपनी इस नीति से उन्होंने शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के हित का ही साधन किया। वे अनुपम नीतिज्ञ थे।

खुसरो के ग्रन्थ

जामी (ज० १४१४-मृ० १४९२ ई०) ने 'वफ़हातुल् उन्सा' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि खुसरो ने निन्यानवे पुस्तकों की रचना की,[3] जिनमें से अब निम्नांकित उपलब्ध हैं—

१. 'तोहफ़तुस्सिगार' में वे कविताएँ संगृहीत हैं, जिनकी रचना खुसरो ने पन्द्रह वर्ष की आयु से उन्नीस वर्ष की आयु तक की।

२. 'वस्तुल् हयात' में उन कविताओं का संग्रह है, जिनकी रचना खुसरो ने उन्नीस वर्ष की आयु से चौंतीस वर्ष की आयु तक की। इनमें से अधिकांश कविताएँ बलबन के ज्येष्ठ पुत्र सुल्तान मुहम्मद एवं अन्य अमीरों के विषय में हैं।

---

१. ज़ेहल रोज़ा (निज़ामी बंसरी में उद्धृत), पृ० २९-३०
२. उर्दू के नश्वोनुमा में सूफ़ियाए कराम का काम, पृ०-१४
३. आदि तुर्ककालीन भारत, पृ० २७८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

३. 'ग़ुर्रतुल्-कमाल' में वे कविताएँ संगृहीत हैं, जिनकी रचना ख़ुसरो ने चौंतीस वर्ष की आयु से चालीस वर्ष की आयु तक की। इनमें 'मिफ़्तातुल्-फ़ुतूह' भी है, जिसमें जलालुद्दीन खिलजी की विजयों का वर्णन भी है।

४. 'बक़ीग्रए नक़ीग्रा' में ख़ुसरो द्वारा की हुई उन कविताओं का संग्रह है, जो बासठ-तिरसठ वर्ष की आयु तक की गयी हैं।

५. 'निहायतुल्-कमाल' में ख़ुसरो के जीवन के अन्तिम भाग में लिखी हुई कविताएँ संगृहीत हैं।

पूर्वोक्त पाँचों पुस्तकें ख़ुसरो के पाँच 'दीवान' हैं।

महाकवि निज़ामी (जन्म ११४०-मृ० १२०२ ई०) का अनुकरण करके ख़ुसरो ने 'ख़म् सा' लिखा, जिसमें निम्नांकित पाँच पुस्तकें हैं—

१. 'मतउल्-अनवार' की रचना १२९८ ई० में हुई। भगवद्भक्ति और सदाचार इसके विषय हैं। इसमें बीस अध्याय हैं। पुस्तक की रचना में दो सप्ताह लगे। इस समय ख़ुसरो पैंतालीस वर्ष के थे।

२. 'शीरीं व ख़ुसरो' में शीरीं और ख़ुसरो का प्रेमाख्यान है। यह भी प्रायः पैंतालीस वर्ष की आयु (१२९८ ई०) में लिखी गयी।

३. 'मजनूँ व लैला' प्रायः सैंतालीस वर्ष की आयु में लिखी गयी।

४. 'आईनए सिकन्दरी' में सिकन्दर का क़िस्सा है, इसकी रचना १२९९-१३२० ई० में हुई।

५. 'हश्त-बहिश्त' में बहराम और दिलाराम की प्रेम-कथा है, इसकी रचना १३०२ ई० में हुई।

'रसालए ऐजाज़' अथवा 'ऐजाज़े ख़ुसरवी' में ख़ुसरो ने अपनी गद्य-रचनाओं का संग्रह किया है, इसकी भाषा अत्यन्त आलंकारिक है। इसमें पाँच पुस्तकें संगृहीत हैं। पहली चार पुस्तकें १२८३-८४ ई० तक लिखी गयीं और पाँचवी पुस्तक की रचना १३१९-२० ई० में हुई।

'अफ़ज़लु क़वायद' में शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के कथन संगृहीत हैं, जिसे ख़ुसरो ने शैख़ को १३२० ई० में दिखा लिया था। यह पुस्तक भी गद्य में है, परन्तु इसकी भाषा अत्यन्त सरल है।

'क़िरानुस्सादैन' की रचना १२९० ई० में हुई, उस समय ख़ुसरो की आयु सैंतीस वर्ष थी। इस पुस्तक का विषय कैक़ुबाद और उसके पिता बुग़रा का मिलन है। इसमें ३९४४ छन्द हैं। उस समय की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का अच्छा परिचय इससे मिलता है।

'मिफ़्तातुल् फ़ुतूह' की चर्चा हो चुकी है, जिसमें जलालुद्दीन खिलजी के द्वारा प्रथम राज्य-वर्ष में प्राप्त विजयों का वर्णन है।

'दिवलरानी ख़िज़्र ख़ाँ' की रचना १३१६ ई० में हुई, जिसमें गुजरात के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राजा कर्ण की पुत्री दिवलरानी और अलाउद्दीन के ज्येष्ठ पुत्र ख़िज्र ख़ाँ के प्रेम की कहानी है, इसे इन दोनों के विवाह का वर्णन करके समाप्त कर दिया गया था, परन्तु ग़यासुद्दीन के राज्य-काल में इसके अवशिष्ट अंश की रचना हुई, जिसमें ख़िज्र ख़ाँ के वध, अलाउद्दीन की बीमारी तथा मलिक काफ़ूर के अत्याचारों का वर्णन है।

'नूह सिपहर' १३१८ ई० में पूर्ण हुई, इसमें ४५०६ छन्द हैं। यह नौ भागों में विभाजित है। प्रत्येक भाग 'सिपेहर' कहलाता है। प्रथम भाग में क़ुतुबुद्दीन खिलजी की प्रशंसा और उसके द्वारा देवगिरि पर आक्रमण वर्णित है; द्वितीय भाग का विषय क़ुतुबुद्दीन खिलजी के द्वारा बनवाये गये भवनों का विशिष्ट उल्लेख है; तृतीय भाग में भारतवर्ष, उसके जलवायु, वनस्पति, फल, फूल, भारतीयों का चरित्र और राति-नीति, आचार-विचार वर्णित हैं; चौथे भाग में बादशाह, मलिकों तथा सेना के लिए शिक्षा है; पाँचवें भाग में भारत की शीतऋतु के अतिरिक्त एक आखेट का भी वर्णन है; छठे भाग में क़ुतुबुद्दीन खिलजी के पुत्र शाहज़ादा मुहम्मद के जन्म का वर्णन है; सातवें भाग में नौरोज़ के उत्सव और वसन्त के वर्णन के साथ-ही-साथ शाहज़ादा मुहम्मद के जन्मोत्सवों की भी चर्चा की गयी है; आठवें भाग में चौगान के खेल का उल्लेख है और नवें भाग में ख़ुसरो ने अपनी कविताओं के विषय में लिखा है।

'ख़ज़ाइनुल्-फ़ुतूह' नामक गद्य-ग्रन्थ में अलाउद्दीन की उन विजयों का उल्लेख है, जो उसने या उसके सेनापतियों ने प्राप्त कीं। मलिक काफ़ूर के द्वारा दक्षिण-विजय का विस्तृत वर्णन इसमें है। दक्षिण-अभियान में अमीर ख़ुसरो मलिक काफ़ूर के साथ थे। पुस्तक की भाषा आलंकारिक है।

'तुग़लक़नामा' ख़ुसरो का अन्तिम ऐतिहासिक काव्य है, जिसका विषय ख़ुसरो ख़ाँ पर ग़यासुद्दीन तुग़लक़ की विजय है। यह पुस्तक १३२० ई० में पूर्ण हुई।

शाहज़ादा मुहम्मद ने ख़ुसरो को अत्यन्त प्रोत्साहन दिया था और ख़ुसरो की कविताएँ शैख़ सादी के पास भेजी थीं। ईरान के प्रसिद्ध कवि जामी ने ख़ुसरो के काव्य की अत्यन्त प्रशंसा की है।

अपने तीसरे दीवान की भूमिका में ख़ुसरो ने लिखा है कि मेरी हिन्दी कविताएँ भी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।[1] अपने 'तज़किरए उर्फ़ात' नामक ग्रन्थ में औहादी ने कहा है कि ख़ुसरो की हिन्दी रचनाएँ भी परिमाण में उतनी ही थीं, जितनी कि फ़ारसी रचनाएँ।[2]

---

१. आदि तुर्ककालीन भारत

२. हज़रत अमीर ख़ुसरो, ले० प्रो० हबीब, पृ० ३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'ख़ुसरो' को संकीर्णहृदय मुसलमान 'बुतबरस्त' (मूर्तिपूजक हिन्दू) कहते थे, जिस पर चिढ़कर अमीर ख़ुसरो ने अपना यह प्रसिद्ध शेर कहा—

"ख़ल्क़ मी गोयद कि ख़ुसरो बुतपरस्ती मी कुनद
आरे-आरे मी कुनम बाख़ल्क़ो आलम कार नेस्त।"

अर्थात्—"संसार कहता है कि ख़ुसरो बुतपरस्ती करता है। हाँ, हाँ, मैं करता हूँ, मुझे दुनियावालों से कुछ काम नहीं।"

सम्भव है, ख़ुसरो से चिढ़नेवाले कुछ लोगों ने ख़ुसरो की मृत्यु के पश्चात् ख़ुसरो का हिन्दी-साहित्य प्रयत्नपूर्वक नष्ट कर दिया हो। दौलतशाह द्वारा उद्धृत एक क़तअ (विशिष्ट छन्द) में ख़ुसरो ने कहा है कि मेरी सांगीतिक रचनाएँ तीन जिल्दों में आयेंगी, परन्तु आज ख़ुसरो द्वारा प्रणीत कोई संगीत-ग्रन्थ भी उपलब्ध नहीं है।[1]

ख़ुसरो को हिन्दी में लिखने की प्रेरणा शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती ने दी थी। राजकुमार हरदेव (ख़्वाजा अहमद अयाज़) ने शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के समक्ष कुछ रचनाओं का पाठ सुना था, जो पूरबी बोली में थीं।[2]

ख़ुसरो के युग से कहीं पहले सूफ़ी मुसलमानों में हिन्दी का प्रचलन था और दिल्ली-दरबार के गवैयों में फ़ारसी और हिन्दी गीत गानेवाले कलाकार विद्यमान थे। कैक़ुबाद के काल में यही स्थिति थी।[3]

छब्बीस वर्ष की आयु (१२७९ ई०) में ख़ुसरो मुलतान चले गये थे, जहाँ बलबन का ज्येष्ठ पुत्र शाहज़ादा मुहम्मद सूबेदार था। उस समय मुलतान मुस्लिम विद्याओं का केन्द्र था। संगीत को गणित की एक शाखा मानकर उसका अध्ययन एवं अध्यापन होता था। मुलतान में शैख़ बहाउद्दीन ज़करिया मुलतानी जैसे महान् संगीतमर्मज्ञ की परम्परा फल-फूल रही थी। उनके पुत्र शैख़ कदवा महान् संगीत-मर्मज्ञ और शाहज़ादा मुहम्मद के परम श्रद्धास्पद थे, जिनसे अमीर ख़ुसरो लाभान्वित हुए। दिल्ली लौटने के पश्चात् ख़ुसरो ने कैक़ुबाद की आज्ञा से 'क़िरानुस्सादैन' (१२८९ ई०) लिखा, जिसमें उन्होंने कहा कि मुझे ईरानी संगीत के चार उसूलों, बारह पर्दों तथा सूक्ष्म रहस्य का ज्ञान है।[4] 'पर्दा' शब्द का अर्थ तन्त्री-वाद्यों पर स्वरों की अभिव्यक्ति के लिए

१. 'मअदनुल्-उल् मूसिकी' में मुहम्मद करम इमाम ने 'रिसालः अमीर ख़ुसरो' के नाम से एक पुस्तक की चर्चा की है, परन्तु उसने ख़ुसरो के विषय में जो कुछ लिखा है, वह प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता।—लेखक
२. चेहल रोज़ा (निज़ामी बंसरी में उद्धृत), पृ० २७
३. 'तारीख़े फ़ीरोज़शाही' (आदि तुर्ककालीन भारत, पृ० २३२ पर उद्धृत)
४. लाइफ़ एण्ड वर्क्स ऑव् अमीर ख़ुसरो, ले० मुहम्मद वहीद, पृ० २३८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्थापित सारिकाएँ हैं। इन्हें मुसलमान गुणी आज भी 'पर्दा' कहते हैं, हारमोनियम में विभिन्न स्वरों को व्यक्ति करनेवाली 'पट्टियाँ' भी 'पर्दा' कहलाती हैं।

संगीत में प्रयोज्य बारह स्वरों के ईरानी नाम क्रमशः रास्त, शहनवाज़, दोका, कुर्द, सीका, गिरका, हिजाज़, नवा, हिसार, हुसेनी, अगनू और नीम माहुर हैं। इन्हीं बारह नामों के आधार पर खुसरो ने भारतीय रागों का वर्गीकरण किया।

खुसरो स्वयं ब्रजप्रदेश के रहनेवाले थे। वे अवध, बंगाल, दक्षिण मुलतान, हिरात और बलख इत्यादि स्थानों से सुपरिचित थे, उनका दृष्टिकोण विशाल था।

भारतीय संगीत के विषय में अमीर खुसरो ने कहा है कि संसार के किसी भी देश के संगीत को भारतीय संगीत के समान नहीं कहा जा सकता, यहाँ का संगीत मन तथा प्राणों में ज्वाला भड़का देता है। संसार के विभिन्न भागों से संगीत सीखने के लिए लोग भारत में आये, परन्तु वर्षों प्रयत्न करने पर भी वे सफल न हुए।

यहाँ का संगीत मनुष्यों को ही नहीं, पशुओं तक को प्रभावित कर देता है। भारतीय संगीत से हरिण कृत्रिम निद्रा में निमग्न होकर बधिक का शिकार हो जाते हैं। यदि कोई अरब के संगीत से भारतीय संगीत की तुलना करे, तो मैं कहूँगा कि संगीत के सहारे यात्रा करनेवाले ऊँटों को चलने का तो होश रहता है, परन्तु भारतीय संगीत के द्वारा मोहित हरिण तो सर्वथा चेतनाहीन हो जाते हैं।[१]

खुसरो ने इन उद्‌गारों को जब प्रकट किया, तब उनकी आयु पैंसठ वर्ष थी और वे गोपाल नायक जैसे गुणियों के सम्पर्क से लाभान्वित हो चुके थे। उस समय क़ुतुबुद्दीन खिलजी का राज्य-काल था। गुजरात की परवार नामक एक सुन्दर हिन्दू संगीतजीवी जाति का आकर्षक नवयुवक खुसरो खाँ (उपाधि) क़ुतुबुद्दीन खिलजी का प्रसिद्ध और प्रभावशाली प्रेमपात्र था और अन्त में वह क़ुतुबुद्दीन खिलजी की हत्या करके स्वयं दिल्ली-सम्राट बन गया था।

अस्तु, खुसरो पहले से भी भारतीय और अभारतीय संगीतज्ञों में प्रतियोगिताएँ कराते थे।[२]

क़व्वाली की गोष्ठियों में जब शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती नाचने लगते, तब अमीर खुसरो भी गाते थे।[३]

---

१. नूह सिपहर (खिलजीकालीन भारत, पृ० १८० पर उद्धृत)
२. एजाज़े खुसरवी, (संगीत-चिन्तामणि, पृ० २६८ पर उद्धृत)
३. चेहल रोज़ा (निज़ामी बंसरी में उद्धृत), पृ० ८१-८२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

खुसरो के विषय में निज़ामुद्दीन चिश्ती ने कहा है —"गद्य और पद्य के लेखन में अनुपम खुसरो मेरा 'खुसरो' है, काव्य-जगत का राजसिंहासन उसके लिए उपयुक्त है।"[1]

शैख निज़ामुद्दीन चिश्ती ने अमीर खुसरो को सम्मति दी थी कि तुम अपने काव्य में इस्फ़हानी कवियों की भाँति प्रेम का रंग भरो, इस आदेश के पालन से खुसरो का काव्य अत्यधिक लोकप्रिय हुआ।[2]

निज़ामुद्दीन चिश्ती ने एक बार खुसरो से कहा कि यदि तुझसे पृथक् करने के लिए मेरे माथे पर आरा रख दिया जाये, तो भी मैं तेरा परित्याग नहीं करूँगा। उसके पश्चात् कहा —

'मन तू शुदम् तू मन शुदी, मन तन शुदम् तू जाँ शुदी।'

अर्थात् —'मैं' 'तू' हो गया हूँ, तू 'मैं' हो गया है, मैं शरीर हो गया हूँ, तू प्राण हो गया है।

यह सुनते ही खुसरो ने शैख के चरणों में नतमस्तक होकर कहा —

'ता कस न गोयद बाद अज़ीं, मन दीगरम् तू दीगरी।'

अर्थात्—जिससे कि बाद को कोई यह न कह सके कि तू और है तथा मैं और हूँ।

शैख ने खुसरो को उठाया और कहा कि 'हश्र' (अन्तिम न्याय-दिवस) में मैं अल्लाह से कहूँगा कि नैवेद्य के रूप में मैं खुसरो को लाया हूँ।[3]

खुसरो विद्याव्यसनी जीव थे, इसीलिए वे ब्राह्मणों के भी बड़े भक्त थे। उन्होंने भारतीय ब्राह्मणों को विद्या में अरस्तू के समान कहा है। उन्होंने ब्राह्मणों से कुछ सीखा था, इसीलिए खुसरो उनका महत्त्व समझते थे। उन्हें शिकायत थी कि (शासन के द्वारा) ब्राह्मणों के ज्ञान से लाभ नहीं उठाया गया।[4]

महमूद ग़ज़नवी के आक्रमण के पश्चात् ही विद्वान् ब्राह्मण मूल्यवान ग्रन्थों को लेकर उन प्रदेशों में पहुँच गये थे, जहाँ मुसलमानों की पहुँच नहीं थी। मलिक काफ़ूर के अभियानों में अमीर खुसरो भी दक्षिण गये थे। सम्भवतः उसी अवसर पर उन्हें 'गोपाल नायक' के यश से परिचित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और परिणामस्वरूप गोपाल नायक दिल्ली आये।

अलाउद्दीन के प्रताप-वर्णन से युक्त गोपाल नायक का एक ध्रुवपद प्राप्त होता

---

१. चेहल रोज़ा (निज़ामी बंसरी में उद्धृत), पृ० ४०७
२. वही, पृ० ४०५
३. वही, पृ० २१३
४. नूह सिपहर (खिलजीकालीन भारत, पृ० १८० पर उद्धृत)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है।[1]

देवलदेवी और खिज्र खाँ के विवाह की तैयारियाँ तीन वर्ष तक हुई थीं।[2] विवाहोत्सव के समय भारतीय नर्तकियों ने भी नृत्य किया था। सम्भवत: इसी समय अमीर खुसरो को गोपाल नायक का सत्संग प्राप्त हुआ और एक नवीन सम्प्रदाय प्रवर्तित हुआ। इस चतुर्दण्डी-सम्प्रदाय के चार दण्ड आलाप, ठाय, गीत और प्रबन्ध थे। निम्नांकित ध्रुवपद—

विद्या सोई भली जौन साधी है रे लाल।
रंगमहल में दोउ जुरि बैठे रीझि मृगन दई माल॥
सात गुपित सात प्रगट चारौ डाँडी बाँधि आये नायक गोपाल।
बैजू के गाये तें भूलि गये सप्त सुर पिघिलौ पाहन बूड़े ताल॥

में 'चारौ डाँडी' शब्द चतुर्दण्डी का ही अपभ्रंश है। 'सात गुपित' का अर्थ 'सातों स्वरों के मूर्च्छनानुसारी नाम' और 'सात प्रगट' का अर्थ 'मेलानुसारी नाम' हैं।[3]

प्रस्तुत ध्रुवपद में किसी ने गोपाल और बैजू से सम्वद्ध इतिहास और किंवदन्तियों का मिला-जुला उल्लेख किया है। 'चतुर्दण्डी प्रकाशिका' के लेखक वेंकटमणी ने भी गोपाल नायक को चतुर्दण्डी-सम्प्रदाय का प्रवर्तक कहा है। इस सम्प्रदाय में स्वरों की संख्या तो बारह मानी गयी, यह ईरानी बारह स्वर-संज्ञाओं का प्रभाव है, रागों का वर्गीकरण भी इसी दृष्टि से हुआ, परन्तु चतुर्दण्डी-सम्प्रदाय के चारों दण्डों की कल्पना विशुद्ध भारतीय रही, जो आगे चलकर ध्रुवपद-गायकों में फली-फूली और क़व्वाली धारा सूफ़ियों के खानक़ाहों में जनप्रिय हुई। ग्वालियरी कलावन्तों को चतुर्दण्डी-सम्प्रदाय के अन्तर्गत मानना चाहिए।

अबुल् फ़ज़्ल के अनुसार खुसरो ने 'समित' और 'तातार' की सहायता से 'क़ौल' और 'तराना' का आविष्कार किया।[4] 'समित'[5] भारतीय कलाकारों की किसी 'समिति' की ओर संकेत करता है और 'तातार' का अर्थ तातार-

१. 'संगीत-चिन्तामणि' (पृ० ३१८ पर उद्धृत ध्रुवपद)
२. 'दिवलरानी खिज्र खाँ' (खिलजीकालीन भारत, पृ० १७३ पर उद्धृत)
३. संगीत-चिन्तामणि पृ०-३६७-३८७, पर विस्तृत विवरण देखिए
४. आईने अकबरी, ग्लैडविन कृत अनुवाद, पृ० १३०
५. माण्डौ के सुल्तान ग़यासुद्दीन के दरबार में भी गुणियों की एक 'समिति' थी, जिसकी चर्चा संगीत-रत्नाकर' के तेलुगु-टीकाकार विट्ठल ने यों की है: "सुरत्राण: स्वैरं स्वयमपि समाक्षिप्य समितौ…"
देखिए: भरत-कोष-भूमिका, पृ०-१२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रदेशीय तुर्क कलाकारों का समूह है।

भारतीय एवं अभारतीय कलाकारों को एकत्र बिठाकर संगीत पर विचार करने का बहुमूल्य कार्य अमीर खुसरो ने किया।

भारतीय ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति से खुसरो का परिचय न तो था और न हो सकता था। वेदाश्रित एवं पापहारिणी इस पद्धति का उपदेश वेदशत्रुओं और मूर्तिभंजकों को उस युग में कदापि नहीं दिया जा सकता था, अतः गोपाल नायक जैसे आचार्य ने भी अभारतीय मुक़ाम-पद्धति से रागों का वर्गीकरण स्वीकृत कर लिया और ईरानी बारह स्वरों के आधार पर राग-वर्गीकरण प्रचलित हो गया। 'मुक़ाम' का अर्थ राग अथवा रागप्रयोज्य स्वर-समूह था। संस्थान, ठाठ या मेल 'मुक़ाम' के ही पर्यायवाची शब्द हैं।

मुक़ाम-पद्धति अपनाने से 'संगीत-रत्नाकर' जैसे ग्रन्थ अबोध्य हो गये, राग और रस का पारस्परिक सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया, स्वरों में प्रयोग की सूक्ष्मता के कारण होनेवाले बारीक अन्तरों की ओर से ग्रन्थकारों का ध्यान हट गया। यहाँ तक कि आगे चलकर 'राग-विवोध' कार सोमनाथ ने यह स्पष्ट घोषणा कर दी कि यदि अभीष्ट स्वर में एक श्रुति कम या अधिक हो जायें, तो कोई दोष नहीं।[1]

ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति में एक स्वर का क्षेत्र चार श्रुतियों से अधिक नहीं हो सकता था, परन्तु मुक़ाम-पद्धति के प्रभाव से दो स्वरों के पंचश्रुतिक अन्तराल भी प्रयुक्त हो गये।

'स-रे', 'ग-म', 'प-ध', 'नि-स' जैसे द्विश्रुतिक अन्तरालों से युक्त 'मुक़ाम' मुसलमान क़व्वालों द्वारा मालवा और गौड़ जैसे उन प्रदेशों में प्रचलित हुए, जिन पर खुसरो के युग से पूर्व ही मुसलमानों का अधिकार हो चुका था। अतः इन द्विश्रुतिक अन्तरालों से युक्त मुक़ाम 'स, रे, ग, म, प, ध, नि' को दक्षिणात्य मेलवादियों ने 'मालव-गौड' कहा और उत्तर में इस स्वरावलि का नाम भैरव ठाठ हुआ। यही मालव-गौड पुरन्दरदास के द्वारा दक्षिण में जाकर राग-शिक्षण का आधार बना और उत्तर भारत में इस स्वरावलि से सम्बद्ध भैरव राग प्रथम राग कहलाया।

खुसरो-प्रणीत संगीत-ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु परचाद्वर्ती श्रद्धालु भक्तों ने अनेक आविष्कार उनके खाते में लिख दिये हैं।

वर्तमान 'सितार' का आविष्कार नेमत खाँ 'सदारंग' के छोटे भाई खुसरो खाँ ने किया, जो फ़ीरोज़ खाँ 'अदारंग' के पिता थे, यही कारण है कि मुग़ल सम्राट शाह आलम के ग्रन्थ 'नादिरातिशाही' (रचना-काल १७९७ ई०) से पूर्व

१. राग-विवोध, पृ० ६८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भारतीय वाद्यों की सूची में 'सितार' की चर्चा कहीं नहीं है, परन्तु श्रद्धालु भक्त जब तक 'सितार' का आविष्कारक अमीर खुसरो को न मानें, तब तक उन्हें सन्तोष नहीं होता।

तबले का आविष्कारक भी लोग खुसरो को कह डालते हैं, जबकि 'नादिरातिशाही' तक में किसी तबलावादक का उल्लेख नहीं है। संसार जानता है कि क़व्वाली के साथ ढोलक बजती है, परन्तु अर्धशिक्षित एवं अशिक्षित सज्जन अन्य मुसलमानों के आविष्कार का श्रेय भी अमीर खुसरो को दे डालते हैं। ऐसी भ्रान्तियों के जनक मुहम्मद करम इमाम जैसे इतिहासज्ञान-शून्य ग्रन्थकार हैं।

खुसरो निस्सन्देह युगप्रवर्तक भारतीय थे, महापुरुष थे, उनका महत्त्व इस तथ्य में है कि उन्होंने भारतीय विद्वानों को बारह स्वरों वाली मुक़ाम-पद्धति से परिचित कराया और भारतीय ग्रन्थों की विचारधारा 'मुक़ाम-पद्धति' की ओर मोड़ दी। यह सामान्य बात नहीं है। चाहे ठाठवादी भातखण्डे हों या मेलवादी वेंकरमखी, सभी इस दृष्टि से खुसरो के अनुयायी हैं।

चिश्ती-परम्परा में 'वसन्त' और 'रंग' का प्रवेश ब्रजभाषा में विरचित गीतों का, विभिन्न अवसरों पर अनिवार्य रूप से, गाया जाना खुसरो की ही देन है। आज भी शेख निज़ामुद्दीन चिश्ती की दरग़ाह में खुसरो के ब्रजभाषा-गीत परम्परा के रूप में गाये जाते हैं।

खुसरो विशुद्ध भारतीय थे, उन्होंने 'नूह सिपहर' में गर्वोक्ति करते हुए कहा है कि भारतवर्ष अन्य देशों की अपेक्षा इसलिए भी श्रेष्ठ है कि कविता द्वारा जादू करनेवाला खुसरो भारतीय है।[1]

भारतीय वैष्णवों की दृष्टि में गोपियाँ 'जीवात्मा' हैं और कृष्ण 'परमात्मा'। गोपीरूप जीवात्मा कृष्णरूपी परमात्मा में मिलन के लिए आकुल है। यह दृष्टिकोण खुसरो ने सर्वथा अपनाया था। हरदेव को निज़ामुद्दीन चिश्ती के आँसुओं में नृत्य करते हुए कृष्ण की छवि दिखायी दी थी।[2]

निज़ामुद्दीन औलिया की समाधि को देखकर अमीर खुसरो ने यह प्रसिद्ध दोहा कहा—

"गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँदेस।"

एक ब्रजवासी ही यह कह सकता है।

---

१. नूह सिपहर (खिलजीकालीन भारत, पृ० १८०)
२. चेहल रोज़ा (निज़ामी बंसरी में पृ० ७८ पर उद्धृत)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बैजू (ब्रजभाषा-ध्रुवपद के आदिकवि)

बैजू के जन्म-स्थान, माता-पिता, गुरु इत्यादि के विषय में प्रामाणिक रूप से कुछ भी कहा जाना सम्भव नहीं। इनके विषय में अनेक असंगत कल्पनाओं और किंवदन्तियों की सृष्टि हुई है। इन कथाओं में ऐतिहासिक दृष्टि से घोर अनुपयुक्तताएँ हैं और इनको लेकर महाग्रन्थों की सृष्टि हुई है।[1]

ग्वालियर-नरेश मानसिंह तोमर के राज्य-काल (१४८६-१५१६ ई०) में बैजू ने मानसिंह तोमर के उस कार्य में सहायता दी, जिसने उत्तर भारत में संगीत की धारा ही बदल दी। ब्रजभाषा-ध्रुवपदों की शैली का निर्माण और प्रशिक्षण बैजू के पौरोहित्य में हुआ, इस शैली ने एक ओर गुजराती सुल्तानों और दूसरी ओर अकबर से लेकर मुहम्मदशाह रंगीले तक सभी मुग़ल सम्राटों को प्रभावित किया तथा इन्हीं के प्रयत्नों से निर्मित विष्णुपद-शैली ने ब्रज में सूरदास जैसे महाकवि उत्पन्न किये, जिन्होंने तुलसीदास तक को प्रभावित किया।

इन महान् कार्यों को देखते हुए यह सिद्ध है कि बैजू मानसिंह के राज्यारोहण (१४८६ ई०) के कुछ ही पश्चात् ग्वालियर आये और मानसिंह तोमर की मृत्यु (१५१६ ई०) तक उनके आश्रित रहे।

निष्कर्ष यह है कि १४८६ ई० में बैजू एक प्रौढ़ गायक हो चुके थे, अन्यथा अपने महान् कार्य में मानसिंह तोमर उन्हें अपना प्रधान पुरोहित न बनाते। इसका अर्थ यह है कि बैजू का जन्म-काल १४५० ई० अथवा उससे पूर्व होना चाहिए।

मानसिंह तोमर की मृत्यु (१५१६ ई०) के पश्चात् ग्वालियर पर मानसिंह के पुत्र विक्रमाजीत ने १५१८ ई० तक शासन किया। सिकन्दर लोदी ने १५१८ ई० में ग्वालियर पर अधिकार किया और विक्रमाजीत को शम्साबाद का शासक बनाकर भेज दिया। बैजू और बख्शू भी शम्साबाद चले गये।

विक्रमाजीत की मृत्यु १५२६ ई० में हुई और बैजू तथा बख्शू कालिंजर के राजा कीरत के आश्रित हुए। वहाँ से इन लोगों को बहादुरशाह गुजराती (राज्य-काल १५२७-३७ ई०) ने अपने पास बुला लिया।

१५३५ ई० में हुमायूँ ने माण्डो पर अधिकार किया। संयोगवश बैजू को भी एक मुग़ल सैनिक ने बन्दी बनाया, परन्तु हुमायूँ के पक्ष के एक राजपूत राजा ने इन्हें पहचानकर हुमायूँ तक पहुँचा दिया और इनका परिचय दिया। बैजू ने हुमायूँ का हृदय, एक फ़ारसी ग़ज़ल गाकर उसका पत्थर जैसा हृदय पिघला दिया। हुमायूँ ने क़त्लेआम बन्द करा दिया और बैजू को प्रभूत पुरस्कार

---

१. हमारे संगीत-रत्न, पृ० २८०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देकर अपने आश्रय में रखा। बैजू द्वारा पत्थर पिघलाये जानेवाली बात का अर्थ इतना ही है।

अवसर पाते ही बैजू पुनः बहादुरशाह गुजराती के पास भाग गये। हुमायूँ को इससे बड़ा खेद हुआ।

इन तथ्यों का वर्णन 'मिराति-सिकन्दरी'[1] और 'बादशाहनामा'[2] जैसे प्रामाणिक ग्रन्थों में है।

बहादुरशाह गुजराती के राज्य-काल के पश्चात् ही बैजू का स्वर्गवास हो गया। बहादुरशाह गुजराती के पुत्र महमूद द्वितीय के युग में बैजू की चर्चा नहीं मिलती।

बैजू के इतिवृत्त के विषय में तो केवल इतना ही कहा जा सकता है। ब्रजभाषा-ध्रुवपद और ब्रजभाषा-विष्णुपद के आविष्कार में मानसिंह तोमर के प्रधान पुरोहित बैजू को परवर्ती[3] हरिदासजी का शिष्य कहना और बैजू को अकबरी दरबार में पहुँचा देना इतिहास से अपरिचित भक्तों की भावुकता-मात्र है।

जिस युग में मानसिंह तोमर के दरबार में रहकर बैजू ने कार्य किया, उस युग की झाँकी देख लेना बैजू का मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक है

खुसरो द्वारा प्रवर्तित मुक़ाम-पद्धति ने बहनी सुल्तानों, अफ़ग़ान सुल्तानों और शर्क़ी सुल्तानों के साथ-ही-साथ विजयनगर के नरेशों को भी प्रभावित कर लिया था। दक्षिण भारत में भारतीय ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति के मर्मज्ञ कल्लिनाथ जैसे इक्का-दुक्का व्यक्ति रह गये थे और उत्तर भारत में यह पद्धति कुछ संगीतजीवियों के कुल में गुप्त रूप से परम्परा के रूप में जीवित थी। दरबारों में मुक़ाम-पद्धति का ही बोलबाला था।

दिल्ली में सिकन्दर लोदी (राज्य-काल १४८८-१५१८ ई०) के दरबार में ब्राह्मण लोग मियाँ ताहा से 'खुसरो-पद्धति' के संगीत की शिक्षा ले रहे थे और मीरान सैयद नूरुल्लाह तथा सैयद नूरुल्लाह जैसे लोग संगीत के पारखी थे। ये दोनों जिस कलाकार को उचित समझते, उसे बादशाह के सम्मुख जाने

---

१. 'मिराति-सिकन्दरी', पृ० २४६, उर्दू 'आजकल', अगस्त १९५६, पृ० १०५ पर मौलाना अर्शी द्वारा उद्धृत; 'खुलासतुल् ऐश आलमशाही, पृ० १४६ 'अ', 'मिराति-आफ़ताबनुमा', पृ० ३८९ 'अ' भी मिराति-सिकन्दरी का समर्थन करते हैं।

२. उर्दू 'आजकल', अगस्त १९५६, पृ० १०३

३. देखिए : इसी पुस्तक में हरिदासजी से सम्बद्ध लेख

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की आज्ञा देते थे ।[1]

सिकन्दर लोदी मानसिंह का परमशत्रु था और मानसिंह के पुत्र विक्रमाजीत को इसी ने पराजित करके ग्वालियर पर अधिकार किया था, मानसिंह तोमर के शासन-काल में इसकी दाल न गली ।

मालवा में ग़यासुद्दीन खिलजी (राज्य-काल १४६९-१५०० ई०) भारतीय श्रुति-सिद्धान्त का मज़ाक उड़ा रहा था, जिसे 'संगीत-रत्नाकर' के तेलुगु टीका-कार विट्ठल के पिता ने बाईस श्रुतियों की सिद्धि करके मुँहतोड़ जवाब दिया था और पुरस्कार में एक सहस्र स्वर्णमुद्राएँ प्राप्त की थीं ।[2]

ग़यासुद्दीन खिलजी को भी मानसिंह तोमर एक आँख न सुहाता था ।

जौनपुर का हुसेनशाह शर्की (राज्य-काल १४६२-१५०० ई०) खुसरो की पद्धति से नवीन रागों की सृष्टि कर रहा था ।

गुजरात में महमूद बींगड़ा (राज्य-काल १४५८-१५११ ई०) जैसे दैत्य का शासन था ।

ऐसी स्थिति में बैजू की प्रतिभा को फूलने-फलने के लिए मानसिंह तोमर की राज्य-सभा के अतिरिक्त अन्य कहीं आश्रय नहीं मिल सकता था ।

उस युग तक बहमनी बादशाहों की दूरदर्शिता के कारण दक्षिण में लोक-भाषा दरबारी संगीत का माध्यम हो चुकी थी । सूफ़ी लोग भी दक्खिनी हिन्दी में पद्य-रचना कर रहे थे और क़व्वाल उनकी हिन्दी रचनाओं को गा रहे थे । लोकप्रिय प्रेमपरक रचनाएँ भी हिन्दी में हो रही थीं ।

इन परिस्थितियों का प्रभाव उत्तर में पड़ा और महमूद जैसे मुसलमान और लोहंग जैसे दाक्षिणात्य कलाकार की सहायता से मानसिंह तोमर की सभा में लोकभाषा (ब्रजभाषा) प्रतिष्ठित हुई ।

'विष्णुपद' विषय की दृष्टि से क़व्वाली का जवाब थे, तो विषय की दृष्टि से 'ध्रुवपद' शृंगारप्रधान ग़ज़लों का प्रत्युत्तर थे । विष्णुपद धार्मिक क्षेत्रों, मन्दिरों इत्यादि में प्रचलित और विकसित हुए तथा शृंगार-प्रधान ध्रुवपदों ने अपने विषय और लोकभाषा के कारण जनता के साथ-ही-साथ बादशाहों का मन भी मोहा । गुजरात और आगरा के मुस्लिम इतिहासकार अपने ग्रन्थों में मानसिंह तोमर की चर्चा करने के लिए विवश हुए । अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के युग में, चिरकाल से उपेक्षित, 'संगीत-रत्नाकर' पुनः विचार का विषय बना ।

'ध्रुवपद' का ढाँचा पुराना था, उस ढाँचे को नया रूप, रंग और नयी चमक

---

१. उत्तर तैमूरकालीन भारत, पृ० १३४

२. भरत-कोष, भूमिका, पृ० १२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दी गयी थी।

'ध्रुव' नामक प्रबन्ध की चर्चा 'संगीत-रत्नाकर' में है। 'ध्रुव' नामक प्रबन्ध में गाये जानेवाले पद (भाषा-भाग) 'ध्रुवपद' कहलाते थे।

'संगीत-रत्नाकर' के अनुसार 'ध्रुव' प्रबन्ध में उद्ग्राह (स्थायी), 'अन्तर' (अन्तरा) और 'आभोग' नामक तीन धातु (तुकें) होते थे।

'उद्ग्राह' में दो खण्ड होते थे, जिनकी स्वर-रचना सदृश होती थी।

'अन्तर' में एक खण्ड होता था, जिसमें उद्ग्राह में प्रयुक्त स्वरों की अपेक्षा ऊँचे स्वरों का प्रयोग होता था।

'उद्ग्राह' और 'अन्तर' को दो बार गाने के पश्चात् 'आभोग' का गान होता था, जिसमें दो खण्ड होते थे, इन दोनों खण्डों में से प्रथम खण्ड दो अवान्तर खण्डों में विभाजित होता था, जिनमें स्वर-रचना सदृश होती थी। आभोग का दूसरा खण्ड प्रथम खण्ड की अपेक्षा उच्चतर स्वरों में गाया जाता था। 'आभोग' में स्तुत्य (नायक अथवा राजा) का नाम रहता था। इसे गाने के पश्चात् 'उद्ग्राह' का प्रथम खण्ड गाकर गान सम्पन्न किया जाता था।[1]

'ध्रुव' नामक प्रबन्ध के सोलह भेद होते थे, जिनकी तालिका यों है—

१. जयन्त नामक ध्रुव में ग्यारह अक्षर होते थे, यह 'आदिताल' में गाया जाता था, शृङ्गार रस में इसका विनियोग था और इसका फल नायक, श्रोता एवं गायक की आयु और श्री में वृद्धि माना जाता था।

२. शेखर नामक ध्रुव में बारह अक्षर होते थे। यह 'निस्सारुक' ताल में गाया जाता था, वीर रस में इसका विनियोग था और ऋद्धि एवं सौभाग्य की प्राप्ति इसका प्रयोजन था।

३. उत्साह नामक ध्रुव में तेरह अक्षर होते थे, यह 'प्रतिमण्ठ' ताल में गाया जाता था, हास्य रस में इसका विनियोग था, इसका फल वंशवृद्धि था।

४. मधुर नामक ध्रुव में चौदह अक्षर होते थे, यह 'ह्यलीला' ताल में गाया जाता था, करुण रस में इसका विनियोग था, इसका फल 'भोग' था।

५. निर्मल नामक ध्रुव में पन्द्रह अक्षर होते थे, यह 'क्रीडा' ताल में गाया जाता था, शृंगार रस में इसका विनियोग था, इसका फल 'प्रभावृद्धि' था।

६. कुन्तल नामक ध्रुव में सोलह अक्षर होते थे, यह 'लघुशेखर' ताल में गाया जाता था। अद्भुत रस में इसका विनियोग था, इसका फल अभीष्ट-सिद्धि था।

७. कामल नामक ध्रुव में सत्रह अक्षर होते थे, यह झम्पा नामक ताल में गाया जाता था, विप्रलम्भ (वियोग) शृंगार में इसका विनियोग था, इसका

१. संगीत-रत्नाकर, प्रबन्धाध्याय, पृ० ३१३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

फल सिद्धिप्राप्ति था ।

८. चार नामक ध्रुव में अठारह अक्षर होते थे, यह निःसारु ताल में गाया जाता था, वीर रस में इसका विनियोग था, इसका फल हर्षोत्कर्ष की प्राप्ति था।

९. नन्दन नामक ध्रुव में उन्नीस अक्षर होते थे, एकताली ताल में गाया जाता था, वीर और शृंगार रस में इसका विनियोग था, इसका फल अभीष्ट-सिद्धि था ।

१०. चन्द्रशेखर नामक ध्रुव में बीस अक्षर होते थे, यह प्रतिमण्ठ ताल में गाया जाता था, वीर, हास्य और शृंगार में इसका विनियोग था, फल अभीष्ट-सिद्धि था ।

११. कामोद नामक ध्रुव में इक्कीस अक्षर होते थे, यह प्रतिमण्ठ ताल में गाया जाता था, शृंगार रस में इसका विनियोग था, अभीष्टसिद्धि इसका फल था ।

१२. विजय नामक ध्रुव में बाईस अक्षर होते थे, द्वितीय प्रतिमण्ठ में गाया जाता था, हास्य में इसका विनियोग होता था फल नायक की दीर्घायु था ।

१३. कन्दर्प नामक ध्रुव में तेईस अक्षर होते थे, यह आदि ताल में गाया जाता था, हास्य, शृंगार और करुण में इसका विनियोग था, इसका फल भोग-प्राप्ति था ।

१४. जयमंगल नामक ध्रुव में चौबीस अक्षर होते थे, यह क्रीडा ताल में गाया जाता था, शृंगार और वीर रस में इसका विनियोग था, विजय एवं उत्साह की प्राप्ति इसका फल था ।

१५. तिलक नामक ध्रुव में पच्चीस अक्षर होते थे, यह एकताली ताल में गाया जाता था, शृंगार और वीर रस में इसका विनियोग था, विजय और उत्साह की प्राप्ति इसका फल था ।

१६. ललित नामक ध्रुव में छब्बीस अक्षर होते थे, यह प्रतिमण्ठ ताल में गाया जाता था, शृंगार रस में इसका विनियोग था, इसका फल सर्वसिद्धि था ।[1]

'ध्रुव' नामक प्रबन्ध के सभी खण्डों की रचना उपर्युक्त अक्षर-संख्या-नियम के अनुसार की जा सकती है । यह भी हो सकता है कि केवल प्रथम दो खण्डों में अक्षर-संख्या-नियम का पालन किया जाये तथा अवशिष्ट खण्डों में अक्षर-संख्या यथारुचि रखी जाये, भरत के अनुसार इन ध्रुवप्रबन्धों का गान समस्त यज्ञों के फल का देनेवाला है ।[2]

---

१. संगीत रत्नाकर, प्रबन्धाध्याय, अडयार-संस्करण, पृ०३१५

२. वही,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कल्लिनाथ कहते हैं कि 'अक्षरार्थ' और 'पदार्थ' पर्यायवाची शब्द हैं, जहाँ अक्षर-संख्या-नियम न दिखायी दे, वहाँ पदों (शब्दों) की संख्या देखनी चाहिए, जहाँ इस दृष्टि से भी अनियम दिखायी दे, वहाँ जनरंजन जैसे दृष्ट फल की प्राप्ति तो होगी ही, भले ही अदृष्ट फल की प्राप्ति न हो। रस और ताल की युक्तता के कारण ऐसे ध्रुवों का परिगणन पूर्वोक्त सोलह ध्रुवों में न भी हो, परन्तु वे 'ध्रुव' तो कहलायेंगे ही।[1]

ध्रुवपदों का यह विधान और इस विधान में होनेवाला अनियम भी बैजू की दृष्टि में था, अतः ब्रजभाषा-ध्रुवपद का ढाँचा इस रूप में मिल गया। सम्भवतः 'आभोग' के दो खण्डों को क्रमशः संचारी और आभोग कहा गया और स्थायी (उद्ग्राह), अन्तर (अन्तरा), संचारी और आभोग नामक चार तुकों की सृष्टि हो गयी।

मानसिंह तोमर और बैजू के प्रयत्नों से ध्रुवपदों का वह राजमार्ग पुनः खुल गया, जो शताब्दियों से अवरुद्ध हो गया था। यहाँ तक कि मुग़ल-दरबार में ग़ज़लों का रंग भी फीका पड़ गया।

बैजू ने बख्शू को प्रशिक्षित किया और अनेक अन्य अज्ञातनाम व्यक्तियों को भी। तानसेन बैजू के प्रशिष्य और बख्शू के शिष्य थे।

बैजू निश्चितरूपेण हिन्दू थे, परन्तु वे मुक़ाम-पद्धति और उसकी कमियों

---

१. संगीत-रत्नाकर, कल्लिनाथ-टीका, पृ० ३१२

२. मिराति-सिकन्दरी, २४९, उर्दू 'आजकल', अगस्त १९५६, पृ० १०५ पर मौलाना अर्शी द्वारा उद्धृत

३. 'राग-दर्पण' की मूल प्रति के अनुसार मानसिंह तोमर की सभा में आश्रित नायक पाण्डवी नामक व्यक्ति तैलंगाने से स्नान के लिए कुरुक्षेत्र आया था। भ्रमवश 'मानसिंह और मानकुतूहल', पृ० ५८ पर पाण्डवी के स्थान पर बख्शू को तैलंगाने से स्नान के लिए कुरुक्षेत्र आया हुआ व्यक्ति लिख दिया गया है। यही भूल 'सहसरस' की सम्पादकीय भूमिका में पृष्ठ १०८ पर हुई।

'सहसरस' शाहजहाँ के द्वारा कराया हुआ बख्शूकृत एक सहस्र ध्रुवपदों का संकलन है, जिसमें एक तत्कालीन फ़ारसी भूमिका भी सम्मिलित है।

इण्डिया-आफिस-लाइब्रेरी में सुरक्षित 'सहसरस' की दो प्रतियों की ओर हमने संगीत-नाटक अकादमी, दिल्ली की भूतपूर्व सेक्रेटरी कुमारी निर्मला जोशी का ध्यान दिलाया और उन्होंने उन दोनों प्रतिलिपियों की चित्र-लिपियाँ मँगवा लीं। डा. कुमारी प्रेमलता शर्मा ने 'सहसरस' का लिप्यन्तरण और सम्पादन और अकादमी ने १९७२ ई० में इसका प्रकाशन किया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

को भी भलीभाँति समझते थे। वे नीतिज्ञ थे, उन्होंने ग़ज़ल गाकर हुमायूँ को रिझाया। हुमायूँ ने उन्हें विशेष घोड़ा और वस्त्र दिये, साथ-ही-साथ यह भी कहा कि बैजू जितने बन्दियों को चाहें, छुड़ा सकते हैं और बैजू ने असंख्य बन्दी छुड़ा लिये।

बैजू लोभी न थे। हुमायूँ उन्हें जो भी पुरस्कार देता, वह पुरस्कार बैजू उस मुग़ल को दे देते थे, जिसने उन्हें बन्दी बनाया था। 'वह चाहता, तो बैजू का वध कर देता।[२]

बैजू मानसिंह तोमर की सभा के ऐसे रत्न थे, जिन्होंने अकबर के पिता का मन मोहकर भावी ध्रुवपदगायकों के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया।

बख्शू

बख्शू ग्वालियर के ही निवासी थे[3] और वे नवयौवन से मानसिंह तोमर के आश्रय में रहे।[१] 'बादशाहनामा' के अनुसार मानसिंह तोमर ने बख्शू को प्रशिक्षित किया। अर्थात् बैजू जहाँ ब्रजभाषा ध्रुवपद के निर्माण में पुरोहित थे, वहाँ बख्शू इस प्रयोग का प्रमुख माध्यम थे।

नाम से बख्शू मुसलमान प्रतीत होते हैं, परन्तु मानसिंह के अनुग्रह और संरक्षण के कारण हिन्दुओं की परम्पराएँ और मान्यताएँ उनके लिए परकीय नहीं थीं। नायिकाभेद से उनका प्रगाढ़ परिचय था।

'सहसरस' की फ़ारसी भूमिका के अनुसार वे मानसिंह तोमर की मृत्यु के पश्चात् मानसिंह के पुत्र विक्रमाजीत (राज्य-काल १५१६-१५१८ ई०) के आश्रित होकर ग्वालियर में ही रहे। १५१८ ई० में जब सिकन्दर लोदी ने ग्वालियर पर अधिकार किया और विक्रमाजीत को शम्सावाद का अधिकारी बनाकर वहाँ भेज दिया तब बख्शू भी वहीं चले गये। विक्रमाजीत की मृत्यु (१५२६ ई०) के पश्चात् बख्शू कालिंजर के राजा कीरत के आश्रम में चले गये और वहाँ से उन्हें बहादुरशाह गुजराती (राज्य-काल १५२७-१५३७ ई०) ने बुलवा लिया।

बहादुरशाह गुजराती के पुत्र महमूद द्वितीय का महामन्त्री दरिया ख़ाँ संगीत का बहुत बड़ा संरक्षक था, उसके मन्त्रित्व-काल में अहमदाबाद के घर-घर में संगीत गूँजने लगा था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय बख्शू वृद्ध हो चले थे और अगली पीढ़ी उभर आयी थी। दरिया ख़ाँ के युग में भी बख्शू ध्रुवपदों की रचना कर रहे थे। उस समय इनका पुत्र हुसेनी वहाँ चमक रहा था।[२]

---

१. सहसरस, फ़ारसी भूमिका का अनुवाद, पृ० १२

२. मिराति-सिकन्दरी, मौलाना अर्शी द्वारा उर्दू 'आजकल', अगस्त १९५६, पृ० १०३ पर उद्धृत

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बैजू के शिष्य और बख्शू के गुरुबन्धु कलाकार बहादुरशाह गुजराती के दरबार में तो थे ही, दरिया खाँ के युग में भी अत्यन्त वृद्ध होकर जीवित थे और उस समय के प्रसिद्ध गायक नायक अब्मू के गान से उनकी मुर्दा हड्डियों में नवजीवन का संचार हो जाता था।[1] नायक चतुर के पुत्र रंग खाँ और मलही तथा खेमकरन भी उसी दरबार में थे तथा हुसेनी और अब्मू की पीढ़ी के व्यक्ति थे।[2]

'सहसरस' की फ़ारसी भूमिका में बख्शू के गाने की अत्यन्त प्रशंसा की गयी है। आलाप और ध्रुवपद-गायन पर उनके अधिकार को अद्भुत और अनुपम बताया गया है। शाहजहाँ के युग तक बख्शू का महत्त्व तानसेन से अधिक ही था। तानसेन ने बख्शू की रचनाओं की शैली में इतने अच्छे ध्रुवपद लिखे कि तानसेन के अनेक ध्रुवपद बख्शू के ध्रुवपदों में मिल गये। यद्यपि शाहजहाँ ने अपने युग के गायकों को एकत्र करके बख्शूकृत दो सहस्र ध्रुवपदों का संग्रह किया और उनमें से भी एक सहस्र ध्रुवपद छाँटकर 'सहसरस' में संकलित किये, तथापि 'सहसरस' की फ़ारसी भूमिका में यह कहा गया कि इन जाँचे-परखे एक सहस्र ध्रुवपदों में भी इस बात की सम्भावना है कि इनमें तानसेनकृत कुछ ध्रुवपद मिल गये हों।

उस युग में ध्रुवपदों के रचयिता ध्रुवपदों में 'संगीत-रत्नाकर' की परम्परा के अनुसार 'स्तुत्य' (आश्रयदाता) का नाम डालते थे, अपना नहीं। अगली पीढ़ियों के ध्रुवपद-गायक उन्हीं ध्रुवपदों में अपने आश्रयदाता का नाम डालकर गाते थे। इसीलिए 'सहसरस' के अधिकांश ध्रुवपदों में शाहजहाँ का नाम अंकित है, परन्तु शाहजहाँ शब्द के नीचे फ़ारसी अक्षर 'मीम' (म), बे (ब), काफ़ (क) और दाल (न) लिखा हुआ है।

'म' से चिह्नित ध्रुवपद एक सौ अठारह हैं, सम्भवतः इनमें स्तुत्य मानसिंह तोमर थे। 'ब' से चिह्नित ध्रुवपद तीन सौ चौबीस हैं, जिनमें हिन्दू रीति-नीति विषयक ध्रुवपदों का स्तुत्य 'विक्रमाजीत' और 'सुल्तान' जैसे विशेषणों अथवा अन्य मुस्लिम मुहावरों से युक्त ध्रुवपदों का स्तुत्य 'बहादुरशाह गुजराती' है। 'क' से अंकित तिरासी ध्रुवपदों का स्तुत्य कालिंजर-नरेश 'कीरत' है और 'द' से अंकित ध्रुवपदों का स्तुत्य 'दरिया खाँ' है।

दो सौ इकतीस ध्रुवपदों में शाहजहाँ के नाम के नीचे कोई अक्षर नहीं है। और एक सौ पचास ध्रुवपद मुद्राहीन हैं।

एक ध्रुवपद में स्तुत्य 'इब्राहीम' है, यह सिकन्दर लोदी का पुत्र इब्राहीम

१. मिराति-सिकन्दरी, मौलाना अर्शी द्वारा उर्दू 'आजकल', अगस्त १९५६, पृ० १०३ पर उद्धृत
२. वही

- 118
325
83

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लोदी प्रतीत होता है, विक्रमाजीत जिसके सामन्त थे तथा जिसकी ओर से बाबर के विरुद्ध लड़ते हुए स्वर्गवासी हुए।

तीन ध्रुवपद 'फ़' और एक ध्रुवपद 'न' से अंकित है। लखमीसेन पूरनमल और खिज्रखान की मुद्रा से अंकित भी एक-एक ध्रुवपद है। दो ध्रुवपद 'सूरजमल' मुद्रा से अंकित हैं और बख्शू की मुद्रा से अंकित ध्रुवपद केवल पाँच हैं। प्रतीत होता है कि ये चिह्न बख्शू के कुछ अन्य प्रशंसकों की ओर संकेत करते हैं।

बख्शू के अनेक ध्रुवपद साक्षी हैं कि वे ग्राम-मूर्च्छना-सिद्धान्त से भलीभाँति परिचित थे, स्वर-प्रस्तार और मात्रा-प्रस्तार उनके लिए हस्तामलक थे। उनके जीवनके अन्तिम-काल में विजयनगर-साम्राज्य के महामन्त्री रामामात्य जब ग्राम-मूर्च्छना-सिद्धान्त भूलकर 'स्वर-मेल-कलानिधि' (रचना-काल १५४९ ई०) लिख रहे थे, तब ग्वालियर-परम्परा के गुणी भरत और शार्ङ्गदेव के विधान को भली-भाँति समझते थे।

बख्शू के ध्रुवपदों में मेल या 'ठाठ' शब्द की चर्चा तक नहीं है और वे रत्नाकर के द्वादश विकृत स्वरों की ही चर्चा पुनः-पुनः कर रहे हैं।

'सहसरस' में भैरव, मालकोस, हिण्डोल, श्री, विभास, देश कार, रामकली, गूजरी, दसाख, विलावल, अलैया, सूहा, सुघराई, पंचम, गान्धार, खट, पूरिया, गुनकली तोडी, देसी, धमाश्री, मालश्री, जैतश्री, आसावरी, मलार, नट, गौड, मधमाद, सावन्त, सारंग, गौड सारंग, मारवा, पूर्व, गौरी, त्रवण, कामोद, भूपाली, कल्याण, हमीर कल्याण, जैतकल्याण, रामकल्याण, शामकल्याण, छायानट, कानरा, अडाना, शंकराभरण, जैजैवन्ती, केदारा, एमनकेदारा और विहागडा प्रयुक्त हुए हैं। सहसरस का संकलन बख्शू से कई पीढ़ियों के पश्चात् हुआ है, अतः यह भी सम्भव है कि शाहजहाँ के समय तक कुछ ध्रुवपदों के राग बदल गये हों।

बख्शू के ध्रुवपदों में एकताली, आदताल मशहूर व अठताला, समताल, झूमरताल, कमलमण्ठ मशहूर बफ़ाख्ताई, जतलगन, चतुर्थ ताल, झपताल, तृतीय ताल और परतताल प्रयुक्त हुए हैं।

'सहसरस' की भाषा में ऋजुता है, ऐसी ऋजुता बख्शू से परवर्ती वृन्दावन-वासी स्वामी हरिदासजी के पदों में भी पायी जाती है। बख्शू अपने नवयौवन से ही मानसिंह तोमर (राज्यारोहण-वर्ष १४८६ ई०) के साथ हैं। अतः प्रत्येक दृष्टि से ये हरिदासजी से कहीं ज्येष्ठ हैं। हरिदासजी के उपास्य श्यामा-श्याम हैं और बख्शू के उपास्य राजा या बादशाह। शृंगार दोनों का ही विषय है। बख्शू ने केलि का लौकिक वर्णन किया है। उनकी नायिकाओं में प्रायः गणिकाएँ हैं, या वे हैं जिनकी कोटि निश्चित नहीं की जा सकती।

'प्रमोद-तरंग,' 'प्रबोध-तरंग', 'लीलाविनोद', 'विद्याधर', 'विद्याराइ', 'रंगराइ', 'सुघरराइ' जैसी उपाधियाँ भी अनेक ध्रुवपदों में आयी हैं, इस प्रकार की उपाधियाँ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नर्तकीविशेष अथवा गायिकाविशेष का बोध करती हैं।

बख्शू का अन्तिम जीवन गुजरात में बीता, इसीलिए शाहजहाँ के युग में बख्शू के ध्रुवपदों का प्रचार आगरा की ओर के गायकों में अधिक नहीं रहा था।[1] बख्शू की शैली के अनुसार आलाप, गान और तान प्रस्तुत करनेवाला कोई गायक नहीं था।

अकबरी दरबार में तानसेन छाये रहे, जिनमें अपने मार्गदर्शक बख्शू की प्रायः सभी विशेषताएँ थीं। जहाँगीर के दरबार में तानसेन के शिष्यों का बोल-बाला रहा। शाहजहाँ के दरबार में तानसेन के पुत्र विलास खाँ का दामाद लाल खाँ था, जो तानसेन का भी शिष्य था और विलास खाँ तथा तानसेन के अन्य शिष्यों का भी। लाल खाँ की प्रशंसा करते हुए 'सहसरस' की फ़ारसी भूमिका में कहा गया है कि शाहजहाँ ने उसे 'गुणसमुद्र खाँ' उपाधि दी है। यद्यपि वह ध्रुवपदों की रचना में असमर्थ है, तथापि गाने में, गाने की सूक्ष्मताओं को प्रदर्शित करने में, शैली के सौन्दर्य और गति की परिपक्वकता में उच्चकोटि का अद्वितीय कलाकार है। उसके गाने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उसने तानसेन से ही गाना सीखा हो। तानसेन के ध्रुवपदों को लाल खाँ जैसा अन्य कोई नहीं गा सकता। हमें शाहजहाँ का कृतज्ञ होना चाहिए कि उसने 'सहसरस' के रूप में बख्शू के ध्रुवपदों को सुरक्षित रखा।

शाहजहाँ के युग के पश्चात् ध्रुवपद की अवनति हुई और बख्शू की परम्परा तिरोहित हो गयी, आज स्थिति यह है कि ध्रुवपदों का पूर्ण रूप प्रस्तुत करने तथा उनके साहित्य-पक्ष का अर्थ समझनेवाले ध्रुवपद-गायक खोज के विषय हो गये हैं।

गोपाल (गुजराती)

बहादुरशाह गुजराती के दरबार में आश्रित[2] गोपाल मानसिंह तोमर के दरबारी गायक बैजू का शिष्य[3] और बख्शू का गुरुबन्धु था। यह बहादुरशाह गुजराती के पुत्र महमूद द्वितीय के महामन्त्री दरिया खाँ के मन्त्रित्व-काल (१५३८-५४ ई०) में जीवित था। नायक अब्भू का गान सुनकर इसकी मुर्दा हड्डियों में नवजीवन का संचार हो जाता था।[4] इस युग में बख्शू का पुत्र हुसेनी भी दरिया खाँ का आश्रित था।

---

१. सहसरस, फ़ारसी भूमिका, पृ० ११
२. मिराति-सिकन्दरी, मौलाना अर्शी द्वारा उर्दू 'आजकल', अगस्त १९५६, पृ० १०५ पर उद्धृत
३. वही, पृ० १०५
४. वही, पृ० २०३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१५५४ ई० में तानसेन मुहम्मद आदिलशाह अदली के दरबार में थे। गुजरात के सुल्तानों और सूर वंश के अफ़गान सुल्तानों के पारस्परिक सम्बन्ध अच्छे न थे। गुजरात-दरबार के आश्रित गोपाल और सूरवंश के आश्रित तानसेन में प्रति-स्पर्धा होना स्वाभाविक है, परन्तु इस प्रतियोगिता या प्रतिस्पर्धा के विषय में ऐतिहासिक साक्ष्य अभी तक उपलब्ध नहीं है। हाँ, अनेक पश्चात्कालीन ऐसे ध्रुवपद अवश्य उपलब्ध होते हैं, जिनसे गोपाल और तानसेन की प्रतिस्पर्धा की व्यंजना होती है। इन ध्रुवपदों की प्रामाणिकता के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इनमें पत्थर पिघलाने जैसी घटनाओं की चर्चा है

हरिण गीत के प्रभाव से वश में हो जाते हैं और बहेलिये उनका शिकार कर लेते हैं, इस तथ्य की चर्चा शार्ङ्गदेव ने भी की है और अमीर ख़ुसरो ने भी, परन्तु पत्थर पिघलाने, दीपक जलाने और पानी बरसाने की चर्चा किसी प्रामाणिक संगीत-ग्रन्थ में नहीं है।

भगवान् का परम अनुग्रह है कि बैजू और गोपाल को मुसलमान कहने का दुःसाहस अभी नहीं किया जा सका है।

तानसेन को मुसलमान कहनेवाले इतिहास से अपरिचित मुस्लिम लेखक अमीर ख़ुसरो से गोपाल नायक को पराजित कराते रहे हैं, तो गोपाल और बैजू को तानसेन से हरवाते रहे हैं। इनके द्वारा गढ़ी हुई कथाएँ विचित्र हैं।

बैजू, बख्शू, तानसेन और गोपाल को हरिदासजी का शिष्य कहनेवाले महानुभाव भी अनेक कपोल-कल्पनाओं की सृष्टि करते रहे हैं।

इतिहास का ज्ञान रखनेवाले जानते हैं कि उस युग में कश्मीर पर मुस्लिमों का शासन था, परन्तु श्रद्धालु भक्त उस समय कश्मीर का शासन किसी हिन्दू के हाथ में देकर गोपाल को कश्मीर भेज देते हैं।[1] कश्मीर में सिन्धु (?) नदी के तीर पर गोपाल की अन्त्येष्टि करा देते हैं।[2] कोई मीरा बैजू का सिखाया हुआ 'मल्हार' राग गाकर सिन्धु नदी के तट पर भस्मीभूत गोपाल की हड्डियाँ जल पर तैरा लेती है।[3]

इन लोगों की दृष्टि में गोपाल लोभी और गुरुद्रोही थे, वे राज्याश्रय के लोभ में कुछ कश्मीरी व्यापारियों के साथ ही कश्मीर जाते हैं।[4]

तानसेन भी इन सज्जनों की कल्पना से कश्मीर पहुँच जाते हैं।

यद्यपि सारा संसार जानता है कि अकबर की राजधानी आगरा थी, तथापि

१. हमारे संगीत-रत्न, पृ० १६७
२. वही, पृ० १६८
३. वही, पृ० १६९
४. वही, पृ० २८३, २८६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भावुक सज्जन अकबर को दिल्ली का बादशाह बना देते हैं।[१]

इतिहास से परिचित सज्जन जानते हैं कि तानसेन को अकबर ने बलात् आगरा बुलाया था, उन्हें लाने के लिए जलाल खाँ कूर्ची ससैन्य भेजा गया था,[२] परन्तु आख्यान गढ़नेवाले लोगों के अनुसार तानसेन आगरा में पहुँचकर दिल्ली दरबार के गायकों को मुकाबले के लिए ललकारते हैं।[३]

गोपाल की भी प्रतियोगिता बैजू से होती है।[४]

अस्तु, ऐसी ही अप्रामाणिक और विचित्र बातों ने इतिहास को ढक लिया है। इनकी उपेक्षा की जानी चाहिए।

स्वामी हरिदासजी

वृन्दावनवासी रसिकशिरोमणि स्वामी हरिदासजी एक रससिद्ध भक्त गायक थे। भक्तों में वे प्रथम ध्रुवपद-गायक हुए हैं। सिद्धान्त के अठारह पद तथा श्याम-श्यामा की अलौकिक निकुंज-लीला के वर्णन से युक्त अत्यन्त मनोरम एवं रस-निर्झर एक सौ दस पद स्वामी हरिदास का अनुपम काव्य हैं, जो 'केलिमाल' में संगृहीत हैं।

स्वामीजी की अनुवर्तिनी विरक्त-परम्परा तथा गोस्वामी-परम्परा में किसी भी व्यक्ति की प्रसिद्धि संगीतज्ञ के रूप में नहीं और न आज ही गोस्वामी सज्जनों के द्वारा निर्मित प्रसिद्ध विहारीजी के मन्दिर में ही गाया-बजाया जा सकता है। हाँ, स्वामीजी के समाधि-स्थल निधि-वन में संगीत हो सकता है।

गोस्वामियों और विरक्त-परम्परा के हरिदासी साधुओं में संगीतज्ञों और गायकों का सर्वथा अभाव तथा विहारीजी के मन्दिर के प्रांगण में संगीत का सर्वथा वर्जित होना संगीत के विद्यार्थियों को आश्चर्यचकित कर देता है, परन्तु यह तथ्य है।

हरिदासजी के समकालीन किसी भी लेखक ने यह नहीं कहा कि हरिदासजी किसी को भी संगीत की शिक्षा देते थे। दे सकते भी नहीं थे, क्योंकि संगीत उनके लिए श्यामा-श्याम को रिझाने अथवा उनकी निकुञ्ज-लीलाओं को वर्णित करने का साधनमात्र था।

वैष्णवों में साम्प्रदायिक मर्यादा की रक्षा का ध्यान सदैव रहा है। यह सत्य है कि कुछ वैष्णव सम्प्रदायों ने अस्पृश्यों और मुसलमानों के लिए भी भक्ति

---

१. हमारे संगीत-रत्न पृ० २८४
२. देखिए इसी पुस्तक में तानसेन-विषयक लेख
३. हमारे संगीत-रत्न, पृ० २८४
४. वही, पृ० २८६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के द्वार खोल दिये, परन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ कि विरक्त संगीतज्ञ सन्तों ने ऐसे गवैये तैयार किये हों, जिनका कार्य 'राजाओं' या बादशाहों, को 'अन्नदाता' कहना हो। आचार-विचार, आहार-विहार, रीति-नीति, चारित्र्य इत्यादि की दृष्टि से सर्वथा विपरीत संगीतजीवियों को भला वे धर्म-साधक दिव्य संगीत की शिक्षा किस पवित्र और उदात्त लक्ष्य से प्रेरित होकर देते! हरिदासजी ने भी कभी कोई संगीतज्ञ उत्पन्न नहीं किया।

महापुरुषों के महाप्रयाण के सैकड़ों वर्ष पश्चात् उनके अनुवर्ती कभी-कभी ऐसी बातों को जन्म देते हैं, जो कालान्तर में अत्यन्त भ्रामक किंवदन्तियाँ बन जाती हैं। ऐतिहासिक शोध की दृष्टि से शून्य लोग ऐसी किंवदन्तियों को निरपराध स्वर्गस्थ महापुरुष के माहात्म्य से सम्बद्ध कर देते हैं, फलतः इतिहास नहीं, इतिहास के आभास की सृष्टि होती है।

राजनीतिक दृष्टि से पराजित जाति सांस्कृतिक दृष्टि से स्वयं को शासक जाति की अपेक्षा श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए कुछ मधुर और सुखद कल्पनाओं की सृष्टि कर लेती है। इसी प्रेरणा के वशीभूत होकर कुछ लोगों ने हरिदासजी और तानसेन के स्वर्गवास के सैकड़ों वर्ष पश्चात् तानसेन को हरिदासजी का शिष्य कहा, तो कुछ लोगों ने वल्लभ-कुल-सम्प्रदाय के गोविन्द स्वामी का। मुसलमान भी क्यों पीछे रहते, उन्होंने तानसेन को शेख़ मुहम्मद ग़ौस ग्वालियरी के जन्म से उत्पन्न बना डाला और ग्वालियर में तानसेन की क़ब्र का आविष्कार कर लिया तो हरिदासजी के भक्तों ने ऐसे चित्र उत्पन्न कर दिये, जिनमें अकबर और तानसेन स्वामी हरिदासजी की सेवा में उपस्थित हैं। यही नहीं, निधि-वन में तानसेन की समाधि होने की बात भी बड़े ज़ोर-शोर से कही गयी।

आज ये सब किंवदन्तियाँ कुछ लोगों का 'ईमान' बन गयी हैं और वास्तविकता की खोज में बड़ी बाधा हैं। इन किंवदन्तियों को आश्रय मानकर कुछ लोगों ने हरिदासजी का जन्म-संवत् निश्चित करने का प्रयत्न किया। एक आधुनिक विद्वान् लेखक ने हरिदासजी के जन्म-वर्ष के निश्चय का आधार इस किंवदन्ती को माना है कि हरिदासजी तानसेन के गुरु थे।[१]

विभिन्न लेखकों ने हरिदासजी के जन्म-वर्ष विभिन्न दिये हैं, उन पर दृष्टिपात करना उचित है—

(क) 'भक्त सिन्धु' के अनुसार स्वामीजी का जन्म-वर्ष १४४१ विक्रमाब्द (१३८४ ई०) है।[२] इस समय दिल्ली का शासक फ़ीरोज़ तुग़लक़ (१३५१-८८ ई०) था। यह मत सर्वथा अग्राह्य है, क्योंकि ब्रजभाषा-ध्रुवपद का आविष्कारक

१. कृष्ण-भक्ति-काव्य में सखी-भाव, पृ० ४३९
२. मथुरा ए डिस्ट्रिक्ट मेमोअर, ग्राउज, पृ० २२१

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मानसिंह तोमर (राज्य-काल १४८६-१५१६ ई०) हुआ है और उसके राज्यारोहण-काल १४८६ ई० से एक सौ दो वर्ष पूर्व हरिदासजी का जन्म सम्भव नहीं।

(ख) गोपाल कवि के अनुसार हरिदासजी का जन्म १५०९ वि० (१४५२ ई०) में हुआ।[३] यह मत भी उपेक्षणीय है, क्योंकि इस दृष्टि से मानसिंह तोमर के राज्यारोहण-वर्ष में हरिदासजी की आयु चौंतीस वर्ष होती है। चौंतीस वर्ष की आयु में, 'अनाविष्कृत' ध्रुवपद का शौक हरिदासजी को होना असम्भव है।

(ग) बलदेव कवि के अनुसार हरिदासजी ने १५१५ वि० (१४५८ ई०) में जन्म लिया,[४] यह मत भी (ख) में वर्णित कारणों से उपेक्षणीय है।

(घ) सहचरिशरण के अनुसार हरिदासजी १५३५ वि० (१४७८ ई०) में उत्पन्न हुए।[५] इसके अनुसार मानसिंह तोमर के राज्यारोहण-वर्ष में हरिदासजी जी की आयु केवल आठ वर्ष होती है।

(ङ) 'निजमत सिद्धान्त' के अनुसार स्वामीजी का जन्म-वर्ष १५३७ वि० (१४८० ई०) है,[६] अर्थात् इस दृष्टि से मानसिंह तोमर के राज्यारोहण के समय हरिदासजी केवल छः वर्ष के थे।

(च) सुदर्शनसिंह चक्र स्वामीजी का जन्म-वर्ष १५६९ वि० (१५१२ ई०) बताते हैं,[७] अर्थात् मानसिंह तोमर की मृत्यु (१५१६ ई०) के समय स्वामीजी केवल चार वर्ष के थे।

(छ) गो० रामनाथजी शास्त्री की दृष्टि में स्वामीजी का जन्म-वर्ष १५८४ वि० (१५२७ ई०)[८] है, अर्थात् स्वामीजी का जन्म मानसिंह तोमर की मृत्यु के ग्यारह वर्ष पश्चात् हुआ था।

(ज) डॉ० गोस्वामी जन्म-संवत् के विषय में 'च' और 'छ' का अनुकरण न करके, 'ग' का अनुकरण करते हुए स्वामीजी का जन्म-संवत् १५२५ वि० (१४७८ ई०) के आसपास मानते हैं, क्योंकि ऐसा किये बिना तानसेन को

---

३. वृन्दावनधामानुरागावली, 'कृष्णभक्ति-काव्य में सखीभाव, पृ० ४३६ पर उद्धृत

४. बलदेवकृत वंशावली „ „

५. सहचरिशरणकृत गुरु प्रणालिका „ „

६. निजमत सिद्धान्त, मध्य खण्ड, पृ० ५४

७. केलिमाल की भूमिका, पृ० २१

८. हरिदास कुंजविहारी सर्वस्व, हस्तलिखित, 'कृष्णभक्ति-काव्य में सखीभाव, पृ० ४३६ पर उद्धृत

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हरिदासजी का शिष्य कहने की बात नहीं उठती। डॉ० गोस्वामी ने तानसेन का जन्म-वर्ष १५५० वि० (१४९३ ई०) के लगभग माना है,[1] यदि डॉ० गोस्वामी अन्य गोस्वामी सज्जनों के मत का अनुसरण करके हरिदासजी का जन्म-वर्ष १५१२ ई० या १५२७ ई० मानें तो तानसेन की आयु हरिदासजी की अपेक्षा उन्नीस अथवा चौंतीस वर्ष अधिक माननी पड़ेगी और तानसेन को हरिदासजी का शिष्य कहने में बड़ी बाधा उत्पन्न हो जायेगी।

मानसिंह तोमर द्वारा आविष्कृत ध्रुवपद की शैली में रचना करनेवाले और उसी शैली में गानेवाले स्वामी हरिदासजी का संगीत-गुरु भी ग्वालियर-परम्परा में प्रशिक्षित कोई व्यक्ति ही होना चाहिए। परन्तु इस विषय में सभी आश्चर्यजनक रूप से मौन हैं।

बख्शू के सहस्र ध्रुवपदों का संग्रह 'सहसरस' अब प्रकाशित हो चुका है। बख्शू मानसिंह तोमर के भी शिष्य थे और बैजू के भी। ब्रजभाषा-ध्रुवपद के आविष्काररूपी यज्ञ में मानसिंह के प्रधान पुरोहित बैजू थे। अतः हरिदासजी को संगीत में बैजू और बख्शू के अनुवर्ती किसी संगीतज्ञ का शिष्य होना चाहिए।

बख्शू और हरिदासजी की शैली एक है, परन्तु हरिदासजी के ध्रुवपदों की भाषा और शैली कहीं अधिक प्रांजल, उदात्त, सरस और मनोरम है। अतः हरिदासजी बख्शू के परवर्ती हैं और इस दृष्टि से स्व० गोस्वामी रामनाथजी के अनुसार हरिदास का जन्म-वर्ष (१५२७ ई०) हमें मान्य है।

यदि बैजू और तानसेन को हरिदासजी का शिष्य कहने का आग्रह छोड़ दिया जाये और स्वामी हरिदासजी के संगीत-गुरु के विषय में भी सोचा जाये, तो सत्य के अधिक निकट आया जा सकता है।

प्रस्तुत पंक्तियों के विनम्र लेखक को भी श्री हरिदासजी के वंश का दौहित्र होने का गौरव प्राप्त है, परन्तु उसके विचार में 'दरबारी' कलाकारों को हरिदासजी जैसी महाविभूति का शिष्य कहने से सम्प्रदाय का गौरव घटता है, बढ़ता नहीं।

वस्तुतः अकबर से स्वामीजी का कोई सम्बन्ध नहीं था, अकबरी दरबार के किसी इतिहासकार ने स्वामीजी की कोई चर्चा नहीं की, जबकि अबुल्-फज्ल ने 'आईने अकबरी' के प्रथम भाग में (पृ० ५३७-५४७ पर) मधुसरस्वती, मधुसूदन, नारायण मिश्र, हरिजी सूर, यदुरूप नारायण, मधुभट्ट, श्रीभट्ट, विष्णुनाथ, रायकृष्ण, बलभद्र मिश्र, वासुदेव मिश्र, रमणभट्ट, गोपीनाथ, भगीरथ भट्टाचार्य जैसे हिन्दू विद्वानों का सादर उल्लेख किया है।[2]

१. कृष्णभक्ति-काव्य में सखीभाव, पृ० ४३८
२. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० २४ पर उद्धृत

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यदि अकबर को स्वामीजी के दिव्य संगीत के रसास्वादन का सौभाग्य सचमुच प्राप्त हुआ होता, तो वह तानसेन की मृत्यु पर यह कभी न कहता कि पिछले सहस्र वर्ष से ऐसा संगीतज्ञ नहीं हुआ।

कुछ लोगों को यह कहने में अत्यन्त हर्ष का अनुभव होता है कि अकबर लगभग १६२७ वि० (१५७० ई०) में स्वामी हरिदासजी के दर्शन के लिए आया था, साथ-ही-साथ ही वे हरिदासजी का जन्म-वर्ष १४७८ ई० के आसपास मानते हैं, परन्तु ऐसी स्थिति में हरिदासजी की सेवा में अकबर की उपस्थिति के समय (१५७० ई० में) स्वामीजी की आयु (१४७८+९२=१५७० ई०) बानवे वर्ष सिद्ध होती है। इस आयु में संगीत सुनाकर किसी को रसमग्न किया जाना केवल श्रद्धालुओं के सहज विश्वास का विषय तो हो सकता है, तर्क का नहीं।

पहले किसी वस्तु का आविष्कार होता है, उसके निखरने, उजलने, बनने या सँवरने में कुछ समय लगता है, धीरे-धीरे वह वस्तु लोकप्रिय होती है, फलतः अन्य व्यक्ति भी उसकी ओर आकृष्ट होते हैं। मानसिंह के मन में ध्रुवपद-गीति को ब्रजभाषा-माध्यम देने की कल्पना आयी। बैजू ने इस कार्य में प्रमुख सहायता दी, बख्शू के माध्यम से ब्रजभाषा-ध्रुवपद का प्रयोग और प्रचार हुआ, अनेक व्यक्ति इस परम्परा में दीक्षित हुए, हरिदासजी भी इस परम्परा की ओर अनुरक्त हुए। उन्होंने इस कला के माध्यम से श्यामा-श्याम की उपासना की और वृन्दावन का मार्ग अपनाया, अवशिष्ट व्यक्ति राज्याश्रय की खोज में रहे और इस विद्या से जीविकोपार्जन करने लगे, यह सीधी-सी बात है। इस परम्परा के अनेक संगीतजीवियों को हम अकबरी दरबार के प्रमुख कलाकारों में पाते हैं।

'केलिमाल' में ग्यारह रागों का प्रयोग हुआ है। 'नट' (दो पद), गौरी (छः पद), कान्हरा (तीस पद), केदारा (बाईस पद), कल्यान (बारह पद), सारंग (ग्यारह पद), विभास (दस पद), बिलावल (दो पद), मलार (आठ पद), गौड (दो पद) और वसन्त (पाँच पद) स्वामीजी द्वारा प्रयुक्त हुए हैं।

तन्तुवाद्यों में किन्नरी और अघौटी (अर्द्धवीणा) के साथ ही रबाब जैसा अभारतीय वाद्य भी पदों में चर्चा का विषय बना है। अवनद्ध वाद्यों में मृदंग की चर्चा है, तो 'ढप' (दफ़) जैसे अभारतीय वाद्य की भी। घन वाद्यों में 'ताल' (झाँझ या मँजीरा) हैं, तो सुषिर वाद्यों में वंशी स्वामीजी के पदों में आये हैं।

'सुर देना', 'आलापना', 'लाग-डाट', 'उरपतिरप', 'चन्द्रागति, 'औघर ताल देना', 'ताण्डव', 'लास्य', 'अंगहार' जैसे पारिभाषिक शब्द भी 'केलिमाल' के ध्रुवपदों में आये हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रकृतिवर्णन, रूपचित्रण, प्रेम-व्यंजना, रस-व्यंजना, अलंकार-विधान इत्यादि बातें हरिदासजी के काव्य की विशेषताएँ हैं।

सामान्यतया स्वामीजी की भाषा ब्रजभाषा है, जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्द, तद्भव शब्द और देशज शब्द भी हैं। बन्दे, अख्तपार, दर, पिदर, सदकें, विसात, सतरंज, रुख, फ़ील, पयादे जैसे अभारतीय भाषाओं के शब्द भी हैं।

रामानन्दी सम्प्रदाय के अग्रदासजी, बल्लभ-सम्प्रदाय के श्रीगोविन्द स्वामी, राधावल्लभीय सम्प्रदाय के श्री ध्रुवदासजी एवं चैतन्य-सम्प्रदाय के श्री प्रियादासजी ने श्रद्धापूर्वक श्री हरिदासजी का स्मरण किया है।[1]

हरिदासजी के सम्बन्ध में एक पक्ष कहता है कि वे आशुधीरजी के दीक्षित शिष्य (संगीत में नहीं अपितु सखी-सम्प्रदाय में) थे। हरिदासजी के पिता का नाम गंगाधर एवं माता का नाम चित्रा था। राजपुर में हरिदासजी का जन्म हुआ था, वे सनाढ्य ब्राह्मण थे। गोस्वामियों के पूर्वज जगन्नाथ पंजाब के सारस्वत ब्राह्मण और बिहारीजी के पुजारी थे।[2]

इस मत का आधार 'निजमत सिद्धान्त' है, जिसकी रचना स्वामीजी के सैकड़ों वर्ष पश्चात् हुई है और जो डॉ० गोस्वामी के अनुसार निश्चित रूप से अप्रामाणिक ग्रन्थ है, इसमें अनेक चरित्र गढ़े गये हैं।[3] हम इस सम्बन्ध में डॉ० गोस्वामी से पूर्णतया सहमत हैं तथा इतना और जोड़ देना चाहते हैं कि इस अप्रामाणिक ग्रन्थ में ही यह कपोल-कल्पना भी है कि तानसेन हरिदासजी के शिष्य थे और अकबर हरिदासजी का दर्शन करने तानसेन के साथ आया था।

हरिदासजी के सम्बन्ध में दूसरा पक्ष यह है कि स्वामी हरिदासजी आशुधीरजी के पुत्र थे, जगन्नाथ और गोविन्द उनके भाई थे, उनकी माता का नाम गंगा था। उनका जन्म हरिदासपुर में हुआ था।[4] उनकी पत्नी का नाम विजया या हरिमती था। हरिदासजी के काव्य में श्रृंगार-शोभा का वर्णन जैसा है, वह बताता है कि हरिदासजी को गृहस्थ-जीवन का अनुभव था।[5]

दूसरे पक्ष के समर्थन में डॉ० शरणविहारी गोस्वामी ने अखण्डनीय तर्क दिये हैं।

स्वामी हरिदास का निकुंज-गमनकाल (स्वर्गवास-काल) १६२७ वि०

---

१. कृष्णभक्ति-काव्य में सखी भाव, पृ० ४४२-४४३
२. वही, पृ० ४१५
३. वही, पृ० ४१४
४. वही, पृ० ४१४
५. वही, पृ० ४२५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(१५७० ई०) और संवत् १६४६ वि० (१५६२ ई०) के मध्य में हुआ।[1]

तानसेन (कण्ठाभरण वाणीविलास)

तानसेन की मृत्यु पर तानसेन के विषय में अकबर के भावनात्मक उद्गार थे कि पिछले सहस्र वर्ष से ऐसा गायक उत्पन्न नहीं हुआ। ये उद्गार 'अकवर-नामा' नामक ग्रन्थ में अंकित हैं और 'आईने अकवरी' में गिनाये हुए अकवरी दरबार के प्रमुख गुणियों की सूची में सर्वप्रथम तानसेन के नाम के साथ भी लिख दिये गये हैं।

अकबर बेचारे ने अपने युग से पूर्व सहस्र वर्ष में उत्पन्न हुए गायकों को न तो सुनाया और न देखा था, उसने तो भावना में आकर जो कुछ मुँह में आया कह डाला। तानसेन अकबर के लाड़ले थे, स्नेह में सबकुछ उचित है।

अकबर के द्वारा तानसेन को दिया हुआ यह 'प्रमाणपत्र' उन लोगों को खलता रहा, जो 'संगीत' को ईश्वरोपासना का साधन मानते हैं और जिनकी दृष्टि में संगीत के द्वारा 'नर' की स्तुति अनुचित है। इस भावना ने तानसेन की मृत्यु के दो सौ वर्ष पश्चात् गुल खिलाया।

वल्लभ-सम्प्रदाय द्वारा अठारहवीं शती ई० के उत्तरार्द्ध में संकलित 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में तानसेन के संगीत का मोल 'कौड़ियों' में निश्चित किया गया और उसे गोविन्द स्वामी का शिष्य करार दिया गया। यही नहीं, उसे वैष्णव बनाकर आजीवन गोविन्द स्वामी की ही सेवा में रखा गया।[2]

इस कल्पना से वल्लभ-कुल-सम्प्रदाय के कुछ ऐसे श्रद्धालुओं को भले ही तृप्ति हुई हो जो बादशाही गवैया को 'अपने ही घर का चेला' सिद्ध करना

---

१. वही, पृ० ४३८

२. तानसेन-विषयक दन्त-कथाओं से परिचित होने के लिए देखिए—'मिश्र-बन्धु-विनोद', प्रथम भाग, पृ० २८२, २८३, ३०६, २७६—'शिवसिंह-सरोज', पृ० ४२६, ४०२,—'ए स्केच ऑव हिन्दी-लिटरेचर', पृ० ३६—'नेशनल फ्लैग एण्ड अदर ऐसेज', पृ० ७७, ८१, ८४—'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता', पृ० ४७५, ४७६, १६१, १६३,—'अमर कलाकार तानसेन', संगीत कला, विलावल अंक—'अकबर दी ग्रेट मुगल', पृ० ४२२—'अष्टछाप और वल्लभ-कुल-सम्प्रदाय', पृ० ६८, ७७—'कविता-कौमुदी', प्रथम भाग, पृ० २३०—नाभादासकृत 'भक्तमाल', पृ० ६०६—'निजमत सिद्धान्त सार'—'हमारे संगीत-रत्न', पृ० १६१, ५४६, ५१२,—'अकवरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० ५८, ११४—उर्दू 'आजकल' मूसिक़ी-नम्बर, अगस्त १६५६ में क़ाजी मेरान धौलपुरी का लेख 'तानसेन'।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चाहते हों, परन्तु अबुल्-फ़ज़्ल के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अकबरनामा' में तानसेन की मृत्यु-तिथि विद्यमान है, जो सिद्ध करती है कि तानसेन यावज्जीवन अकबरी दरबार के आश्रित रहे। अतः 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' का तानसेन-विषयक प्रसंग सर्वथा कल्पित है।

जिस भावना के वशीभूत होकर 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में तानसेन को गोविन्द स्वामी का शिष्य बनाया गया, उसी भावना के प्रवाह में बहकर 'निजमत सिद्धान्त' में तानसेन को स्वामी हरिदासजी का शिष्य घोषित किया गया, इस प्रचार को कुछ अधिक बल मिला, क्योंकि वृन्दावन में हरिदास जी की समाधि का एक विशिष्ट महत्त्व है।

मुसलमान सज्जनों ने जब यह देखा कि वैष्णव लोग तो यह सबकुछ लिखकर तानसेन को हथियाये ले रहे हैं, तब उन्होंने तानसेन को शैख़ मुहम्मद ग़ौस के आशीर्वाद से उत्पन्न घोषित कर दिया। शैख़ मुहम्मद ग़ौस के सम्प्रदाय में संगीत सर्वथा त्याज्य और निषिद्ध है, अतः मुसलमानों के इस वर्ग ने तानसेन का संगीतगुरु हरिदासजी को मानकर सन्तोष किया, परन्तु बैजू (!) को तानसेन से परास्त करा दिया। और तो और, ग्वालियर-स्थित शैख़ मुहम्मद ग़ौस के मक़बरे में तानसेन की एक समाधि का भी आविष्कार कर डाला, इसके उत्तर में निधि-वन (वृन्दावन) के अहाते के पास 'तानसेन' की समाधि होने की बात स्वामी हरिदासजी के अनुवर्तियों द्वारा प्रचारित की गयी।

इन तीनों पक्षों में कोई भी पक्ष अपना आग्रह छोड़ने के लिए प्रस्तुत नहीं है, अतः निम्नांकित मतभेदों और विषमताओं की सृष्टि हुई है—

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तानसेन को 'बड़ी जाति वारे' (मुसलमान) बताती है। 'निजमत सिद्धान्त' के अनुसार तानसेन तैलंग ब्राह्मण थे। 'मिश्र-बन्धु-विनोद' तानसेन को ग्वालियरवासी ब्राह्मण बताता है। 'शिवसिंह-सरोज' के अनुसार तानसेन गौड़ ब्राह्मण थे। क़ाजी मेराज धौलपुरी तानसेन को बेहट निवासी ब्राह्मण कहते हैं।

यदि इन समस्त मतों पर श्रद्धा की भी जाये, तो तानसेन को तैलंग और गौड़ साथ-साथ मानना होगा, जो सर्वथा असम्भव है। तानसेन मुसलमान हुए थे या नहीं, यह अलग विषय है। अतः पूर्वोक्त मतों के आधार पर तानसेन की जाति का निर्णय सर्वथा असम्भव है।

यह तो रही जाति की बात। अब तानसेन के गुरु को ढूंढा जाये। 'निजमत सिद्धान्त' के अनुसार तानसेन राजाराम बघेला और हरिदासजी के शिष्य थे। 'मिश्र-बन्धु-विनोद' की सम्मति में तानसेन के संगीतगुरु शैख़ मुहम्मद ग़ौस और बैजू थे। गोविन्द स्वामी के गाने पर भी तानसेन मोहित थे। 'शिवसिंह-सरोज' के अनुसार हरिदासजी तानसेन के काव्यगुरु थे और शैख़

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुहम्मद ग़ौस संगीत-गुरु। क़ाजी मेराज धौलपुरी के अनुसार शैख़ मुहम्मद ग़ौस और हरिदासजी परस्पर मित्र थे। शैख़ साहब तानसेन के 'पीर' थे और हरिदासजी संगीतगुरु।

मतभेदों के इस चक्र-व्यूह में से तानसेन के वास्तविक संगीत-गुरु की खोज करना सुकर नहीं।

शैख़ मुहम्मद ग़ौस जैसे परहेज़गार और निरपराध सूफ़ी को उस गाने-बजाने के चक्कर में लोगों ने केवल इसलिए फँसा दिया है कि तानसेन को मुसलमान सिद्ध किया जा सके। शैख़ मुहम्मद ग़ौस बेचारे तो अपने सम्प्रदाय के दृष्टिकोण के अनुसार संगीत को सुन तक नहीं सकते थे, इस तथ्य से अपरिचित सज्जनों ने शैख़ मुहम्मद ग़ौस को 'गवैया' और तानसेन का 'उस्ताद' बना डाला। कुछ लोग राजा रामचन्द्र को भी गवैया बना बैठे। बड़ी मनोरंजक बात यह है कि वल्लभ-सम्प्रदाय के लोग तानसेन के सम्बन्ध में हरिदासजी की कोई चर्चा नहीं करते और हरिदासजी के अनुयायी आज भी तानसेन के संगीतगुरु के प्रसंग में गोविन्द स्वामी का नाम तक नहीं लेते।

'निजमत सिद्धान्त' के अनुसार तानसेन के आश्रयदाता रामचन्द्र बघेल और अकबर थे। मिश्रबन्धु किसी ग्वालियर-नरेश रामनिरंजन (!) को तानसेन का आश्रयदाता मानते हैं, जिसका अस्तित्व ग्वालियर में कभी नहीं था। 'शिवसिंह-सरोज' की सम्मति में दौलत खाँ और रामसिंह बघेला ने तानसेन को आश्रय दिया। क़ाजी मेराज धौलपुरी के अनुसार दौलत खाँ, दिल्ली के कोतवाल मुल्ला सलामत और राजा रामचन्द्र तानसेन के आश्रयदाता थे।

'निजमत सिद्धान्त' के अनुसार तानसेन दीपक राग गाकर दीपक जलाते थे, ओरछानिवासिनी मलारगायिका कुछ कुलबधुओं ने तानसेन को हरिदासजी के पास भेजा। मेराज धौलपुरी की राय में मलार पर अधिकार रखनेवाली नारी गुजरात की एक वेश्या थी, जो अपनी नथ कुएँ में डाल देती और उस नथ को कुएँ से बाहर निकालने के लिए मलार गाकर कुएँ का पानी उफना देती थी और उसके ऊपर तैरती (!) नथ उठा लेती थी। तानसेन ने इस वेश्या को भी हराया, साथ-ही-साथ बैजू को भी हिरन बुलाकर और पत्थर पिघलाकर हराया, जो तानसेन के साथ प्रतियोगिता करने के लिए ग्वालियर आया था। यह सब हज़रत मुहम्मद ग़ौस की दुआ का कमाल था।

भला इन आख्यानों का क्या किया जाये, जो अपने-अपने सम्प्रदाय का गौरव बढ़ाने के लिए तानसेन की मृत्यु के सैकड़ों वर्ष पश्चात् गढ़े गये हैं!

इन सभी सज्जनों को विवशतापूर्वक प्रणाम करके कुछ ऐसे प्रामाणिक ग्रन्थों को देखा जाये, जो अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगज़ेब इत्यादि के युग में प्रामाणिक लेखकों के द्वारा लिखे गये हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रामाणिक आधार-ग्रन्थ निम्नांकित हैं—

१. अकबरी दरबार के इतिहासकार अबुल्फ़ज़्ल की कृति 'अकबरनामा' और उसका तीसरा भाग 'आईने अकबरी'। तानसेन की मृत्यु के समय तक अबुल्फ़ज़्ल अकबरी दरबार में रहा।

२. अकबरी दरबार के एक अन्य विद्वान् मुल्ला अबुल्कादिर बदायूनी-रचित ग्रन्थ 'मुन्तखबुत्तवारीख'। यह ग्रन्थ अकबर की चोरी से लिखा गया था और अकबर की आलोचना से परिपूर्ण है। जहाँगीर के काल में इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि करने और इसे बेचने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था।

३. जहाँगीर की डायरी 'तुज़्के जहाँगीरी' और उसके युग का इतिहास 'जहाँगीरनामा'।

४. जहाँगीर के आश्रित लेखक मुजतमद खाँ की कृति 'इक़बालनामा जहाँगीरी'।

५. शाहजहाँ के आदेश से सम्पादित 'सहसरस' की भूमिका। 'सहसरस' में बख्शू के एक सहस्र ध्रुवपदों का संग्रह है।

६. शाहजहाँ और औरंगज़ेब के युग में कश्मीर के गवर्नर फ़क़ीरुल्लाह की कृति 'राग-दर्पण', जिसे औरंगज़ेब को समर्पित करने के लिए लिखा गया। तानसेन की संगति करनेवाला भगवान पखावजी दीर्घजीवी हुआ और 'राग-दर्पण'कार के घनिष्ठ सम्पर्क में रहा। तानसेन के कुछ शिष्यों, पुत्रों और पौत्रों से भी 'राग-दर्पण'कार का प्रत्यक्ष परिचय था।

७. औरंगज़ेब के युग में लिखित 'औरंगज़ेबनामा'।

तानसेन की जाति

तानसेन कलावन्त नामक संगीतजीवी जाति में उत्पन्न हुए थे। अबुल्-फ़ज़्ल ने ढारी, क़व्वाल, हुरकिया, दफ़ज़न, नटवा और कलावन्त नामक संगीत-जीवी जातियों का वर्णन किया है, इन जातियों में केवल 'कीर्तनिया' वर्ग ब्राह्मण बताया गया है। कीर्तनिया लोगों का कार्य 'कीर्तन' करना था, अन्य समस्त संगीतजीवी जातियाँ दरबारों में नाच-गाकर आजीविका कमाती थीं।

अबुल्फ़ज़्ल के अनुसार ग्वालियरनिवासी ध्रुवपद-गायक कलावन्त कहलाते थे, ढोल के साथ पंजाबी गीत गानेवाले और युद्ध-भूमि में वीरों को प्रोत्साहित करने के लिए कड़खा गानेवाले लोग 'ढारी' थे, फ़ारसी ग़ज़लें गानेवाले लोग 'क़व्वाल' कहलाते थे। 'आवज' पर औरतों की संगति करनेवाले 'डरकिया' कहे जाते थे, ध्रुवपद गानेवाली और ढप बजाकर नाचनेवाली औरतें 'दफ़ज़न' कहलाती थीं। पखावज, रबाब और मंजीरों के साथ गाने-बजानेवाले बंगाली नटवा थे और पखावज, रबाब तथा मंजीरों के साथ कीर्तन करनेवाले ब्राह्मण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'कीर्तनिया' कहलाते थे ।[१]

इन सभी वर्गों में अबुल्फ़ज़्ल ने केवल 'कीर्तनिया' वर्ग को ब्राह्मण कहा है ।

कत्थक, भाट तथा अन्य संगीतजीवी हिन्दू जातियाँ आजकल भी अपने नामों के साथ 'महाराज', 'मिश्र', 'पाण्डे', 'पाठक' इत्यादि जैसे विशेषण लगा रही हैं । यह रोग तानसेन के युग में नहीं फैला था ।

जिन लोगों ने तानसेन को हरिदासजी अथवा गोविन्द स्वामी का शिष्य बनाना चाहा, उन्होंने निरपराध तानसेन को ब्राह्मण भी बना दिया ।

ब्राह्मणों के लिए दरबारी संगीत को आजीविका बनाना सदैव निषिद्ध रहा है ।

अस्तु, अबुल्फ़ज़्ल के कथन के अनुसार सिद्ध है कि तानसेन का जन्म उस संगीतजीवी जाति में हुआ था, जो अकबरी युग में 'कलावन्त' कहलाती थी ।

तानसेन का जन्म-काल

अबुल्फ़ज़्ल ने तानसेन की मृत्यु का वर्ष १५८९ ई० तो बताया है, परन्तु यह नहीं कहा कि मृत्यु के समय तानसेन की आयु कितनी थी । तानसेन की आयु के विषय में तानसेन के समसामयिक इतिहासकार मौन हैं ।

तानसेन के जन्म-वर्ष का अनुमान लगाने के लिए प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थों में निम्नांकित आधार प्राप्त होते हैं—

१. सन् १५६२ ई० के आसपास तानसेन राजा रामचन्द्र के दरबार से रिटायर होकर विरक्त जीवन व्यतीत करना चाहते थे ।[२]

२. १५७५ ई० में तानसेन के कण्ठ की ध्वनि जंगली जानवरों जैसी हो गयी थी, अर्थात् वे अत्यन्त वृद्ध हो गये थे ।[३]

३. अकबरी दरबार के प्रमुख छत्तीस कलाकारों में तानसेन के शिष्य मियाँ चाँद का स्थान पाँचवाँ है, अर्थात् इकतीस कलाकार तानसेन के शिष्य से भी 'जूनियर' हैं, इन जूनियर लोगों में नायक चिरजू और परबीन खाँ जैसे कलावन्त भी हैं ।[४]

इन तथ्यों से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मृत्यु के समय तानसेन की आयु पिचानवे वर्ष के आस-पास थी । क्योंकि अकबरी दरबार में उनका

---

१. आईने अकबरी, खण्ड-२, पृ० ७३४, ग्लैडविन-कृत अनुवाद
२. आईने अकबरी, खण्ड-२, पृ० २७९, वेवरिज-कृत अनुवाद
३. मुन्तख़बुत्तवारीख़, खण्ड-२, पृ० २७३, डब्ल्यू, एच्० लो-कृत अनुवाद
४. आईने अकबरी, पृ० ६८०, ब्लाकमैन-कृत अनुवाद

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रवेश १५६२ ई० में हुआ, जबकि वे रामचन्द्र 'रीवाँ-नरेश' के दरबार से 'रिटायर' होने का विचार कर रहे थे, उस समय उनकी प्रसिद्धि उच्चतम शिखर पर पहुँच चुकी थी, उनकी कला से प्रसन्न होकर रीवाँ-नरेश एक बार उन्हें एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ पुरस्कार में दे चुके थे।[1] उस समय उनकी आयु उनहत्तर-सत्तर वर्ष के लगभग होगी।

१५७५ ई० में जब अत्यन्त वृद्धावस्था के कारण उनका कण्ठस्वर सर्वथा अश्राव्य हो गया था, तब उनकी आयु तिरासी-चौरासी वर्ष रही होगी। उनके बड़े पुत्र तानतरंग खाँ उनसे कम-से-कम बीस वर्ष छोटे अवश्य होंगे, तानतरंग खाँ की आयु तब कम-से-कम पचास वर्ष की अवश्य होगी, जब तानसेन अकबरी दरबार में आये थे। चिरजू नायक जैसे व्यक्ति और उनके पुत्र परवीन खाँ का तानतरंग खाँ की अपेक्षा जूनियर होना यही सिद्ध करता है कि नायक चिरजू तानतरंग खाँ की पीढ़ी के व्यक्ति थे।

बाबा रामदास, सुबहान खाँ, सुरज्ञान खाँ, मियाँ चाँद, विचित्र खाँ, बीर-मण्डल खाँ, शिहाब खाँ, सरोद खाँ और मियाँ लाल जैसे ग्वालियरी कलाकार तानतरंग खाँ की अपेक्षा, अबुल्फ़ज़्ल के द्वारा दी हुई छत्तीस क़लाकारों की सूची में, सीनियर हैं, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि तानतरंग खाँ को तानसेन का पुत्र होने के कारण इस सूची में कुछ ऊपर चढ़ा दिया गया है। तानतरंग खाँ इस सूची में अपने स्थान पर अपने गुण और अपनी आयु के कारण हैं।

अकबरी दरबार के कलाकारों की इस सूची में तानसेन के दूसरे पुत्र विलास खाँ का उल्लेख न होना यह सिद्ध करता है कि विलास खाँ अपने बड़े भाई तानतरंग खाँ से काफी छोटे थे और अबुल्-फ़ज़्ल की दृष्टि में इस योग्य नहीं थे कि उन्हें प्रमुख कलाकारों की सूची में स्थान दिया जाता। इन सभी बातों का निष्कर्ष यह है कि तानसेन का जन्म-वर्ष १४९३ ई० के आस-पास था।

शैख़ मुहम्मद ग़ौस के आशीर्वाद से तानसेन के जन्म की बात विशुद्ध कपोल-कल्पना है। शैख़ मुहम्मद ग़ौस ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जवाहर खम्सः' की रचना १५२३ ई० में की जबकि उनकी आयु इक्कीस वर्ष थी। इस तथ्य का उल्लेख 'मुआसिरुल्-उमरा' नामक ग्रन्थ में है। इस दृष्टि से शैख़ मुहम्मद ग़ौस का जन्म-वर्ष १५०२ ई० सिद्ध होता है। इस तथ्य को देखते हुए शैख़ साहब बेचारे तानसेन की अपेक्षा आयु में छोटे थे। शैख़ साहब के जन्म-वर्ष के विषय में यह मत अधिक विश्वसनीय है।

---

१. मुन्तखबुत्तवारीख, द्वितीय खण्ड, पृ० २७३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अबुल्फ़ज़्ल के अनुसार शैख़ मुहम्मद ग़ौस का जन्म-वर्ष १४८३ ई० है, क्योंकि अबुल्-फ़ज़्ल ने लिखा है कि शैख़ मुहम्मद ग़ौस की मृत्यु १० मई, १५६३ ई० को हुई।[1] जबकि उनकी आयु ८० वर्ष की थी।

शैख़ मुहम्मद ग़ौस ने ग्वालियर के किले पर बाबर का अधिकार बाबर से मिलकर करा दिया था।[2] एक युग में वे हुमायूँ के परमशत्रु बहादुरशाह गुजराती के परम मित्र हो गये। कालान्तर में जब अकबर 'बादशाह' हो गया और बैराम ख़ाँ उसका अभिभावक था, तब बैराम ख़ाँ ने शैख़ मुहम्मद ग़ौस को बन्दी बनाने का आदेश दिया, परन्तु वे आगरा से भागने में सफल हो गये और ग्वालियर पहुँचकर फ़क़ीर हो गये।[3]

यदि शैख़ मुहम्मद ग़ौस के साथ तानसेन के निकट-सम्बन्ध होते तो वे अकबरी दरबार के लाड़ले न बनते।

शैख़ मुहम्मद ग़ौस और तानसेन के किसी भी सम्बन्ध की चर्चा सूफ़ियों के किसी प्रामाणिक इतिवृत्त में नहीं। ग्वालियर में तानसेन की तथाकथित समाधि की चर्चा १८५४ ई० में प्रणीत ग्रन्थ 'मअदन-उल-मूसिक़ी' तक में नहीं है।

पुरातत्त्व-विभाग (ग्वालियर) के एक अधिकारी श्री एम० बी० गर्दे नामक सज्जन को किसी ने शैख़ मुहम्मद ग़ौस के मक़बरे के निकट स्थित एक क़ब्र की ओर संकेत करके बता दिया कि यह मियाँ तानसेन की क़ब्र है और उन्होंने एक तख़्ती में यह लिखकर वहाँ लटका दिया :

> "तानसेन को गवैये इल्मेमूसिक़ी (संगीतशास्त्र) का बादशाह मानते हैं। आपने संगीत की शिक्षा ग्वालियर के संगीत-विद्यालय में प्राप्त की। यह संगीत-विद्यालय राजा मानसिंह तोमर ने स्थापित किया था। कुछ समय तक आप (तानसेन) रीवाँ के राजा रामचन्द्र के दरबार में रहे, जिनसे बादशाह अकबर ने आपको माँग लिया। अकबरी दरबार के नवरत्नों में आप मूर्धन्य थे। कहते हैं कि आपसे अच्छा गवैया हिन्दुस्तान में आज तक नहीं हुआ।"
>
> "तानसेन हिन्दू थे, जैसाकि उनके नाम से प्रकट है, परन्तु 'आईने अकबरी' में शैख़ अबुलफ़ज़्ल ने आपको मियाँ तानसेन लिखा है।[1] इस मुसलमान विशेषण के अतिरिक्त मुसलमानों के क़ब्रिस्तान में आपकी क़ब्र होना यह सिद्ध करता है कि आपने इस्लाम धर्म अंगीकृत कर लिया था।

---

१. अकबरनामा, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ १३३

२. मुग़ल़कालीन भारत, (बाबर), पृ० २१९-२२०, सैयिद अतहर अब्बास रिज़वी

३. अकबरनामा, द्वितीय खण्ड, पृ० १३३-१३५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आपकी ठीक-ठीक मृत्यु-तिथि ज्ञात नहीं, यह सादी समाधि एक उच्चकोटि के कलाकार का अत्यन्त सामान्य स्मारक है।

"ग्वालियर आनेवाला प्रत्येक संगीतजीवी गायक इस समाधि के दर्शन के लिए आता है। मक़बरे के निकट स्थित एक इमली के वृक्ष की पत्तियों को वेश्याएँ और गायक इस विश्वास से खाते हैं कि उनकी आवाज़ में सुरीलापन आ जाये, प्रसाद रूप में लोग ये पत्तियाँ साथ भी ले जाते हैं।"

हस्ताक्षर एम० बी० गर्दे, पुरातत्त्व-विभाग
ग्वालियर
(आलीजाह दरबार प्रेस, ग्वालियर में मुद्रित)[1]

गर्दे महोदय का इतिहास सम्बन्धी ज्ञान अत्यन्त दयनीय है। 'अकबरनामा' में अबुलफ़ज़्ल ने तानसेन की मृत्यु-तिथि लिखी है, परन्तु ग्वालियर पुरातत्व विभाग के श्री गर्दे को 'अकबरनामा' पढ़ने का अवकाश कहाँ था, उन्होंने तो उस टिप्पणी पर हस्ताक्षर कर दिये, जो दफ़्तर ने लिखी थी। अस्तु, पिछले पचास-साठ वर्षों से वहाँ गाना-बजाना भी प्रतिवर्ष होने लगा। एक भूल कैसे-कैसे अनर्थों को जन्म देती है! अबुलफ़ज़्ल ने 'आईने अकबरी' में तानसेन को कहीं मुसलमान नहीं कहा।

भगवान् का परम अनुग्रह है कि गर्दे महोदय द्वारा हस्ताक्षरित टिप्पणी में शैख़ मुहम्मद ग़ौस के साथ तानसेन का कोई सम्बन्ध नहीं बताया गया।

अस्तु, यह सिद्ध है कि तानसेन के साथ शैख़ मुहम्मद ग़ौस का कोई सम्बन्ध नहीं।

क़ाजी मेराज धौलपुरी तानसेन का जन्म-वर्ष १५२४ ई० मानते हैं। साथ-ही-साथ यह भी कहते हैं कि विक्रमाजीत (मृ० १५२६ ई०) ने तानसेन को 'तानसेन' उपाधि दी। अर्थात् दो साल के तानसेन ने विक्रमाजीत से उपाधि प्राप्त की। इतिहास के साथ क़ाजी साहब का अपरिचय दयनीय स्थिति तक पहुँचा हुआ है। न उन्हें विक्रमाजीत के मृत्यु-वर्ष का ज्ञान है और न तानसेन के मृत्यु-वर्ष का। ऐसे सज्जनों के लेख हँसकर उपेक्षा कर देने योग्य हैं। वास्तव में बेचारा विक्रमाजीत (राज्य-काल १५१६-१८ ई०) दो वर्ष राजा रहा। इसी अवधि में वह किसी कलाकार को उपाधि दे सकता था। १५१८ ई० में सिकन्दर लोदी ने ग्वालियर को अपने अधिकार में करके विक्रमाजीत को शम्साबाद की जागीर दे दी और १५२६ ई० में विक्रमाजीत इब्राहीम लोदी की ओर से बाबर के विरुद्ध युद्ध करता हुआ मारा गया।

---

१. क़ाजी मेराज धौलपुरी के द्वारा उर्दू 'आजकल', अगस्त १९५६, पृ० ९६ पर उद्धृत

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

क़ाजी साहब को तो तानसेन का जन्म उन शैख़ मुहम्मद ग़ौस की दुआ से कराना है, जो वस्तुत: तानसेन से आयु में छोटे थे, इसीलिए क़ाजी साहब ने तानसेन का जन्म १५२४ ई० में कराया।

तानसेन का धर्म

तानसेन ने इस्लाम धर्म कभी अंगीकृत नहीं किया। अकबर ने तानसेन को 'कण्ठाभरणवाणीविलास' उपाधि दी थी।[1]

मुग़ल बादशाह यदि मुसलमान गवैयों को उपाधि देते थे, तो उसके साथ 'ख़ाँ' अवश्य लगा होता था। जहाँगीर ने शौक़ी नामक कलाकार को 'आनन्द ख़ाँ' उपाधि दी, शाहजहाँ ने विलास ख़ाँ के दामाद लाल ख़ाँ को 'गुनसमन्दर ख़ाँ' उपाधि दी। 'कण्ठाभरणवाणीविलास' उपाधि हिन्दू को ही दी जा सकती थी।

तानसेन के मुसलमान पुत्र तानतरंग ख़ाँ और विलास ख़ाँ थे और हिन्दू पुत्र हमीरसेन और सूरतसेन। तानतरंग ख़ाँ की चर्चा 'आईने अकबरी' में है, विलास ख़ाँ, हमीरसेन और सूरतसेन के विषय में 'रागदर्पण' साक्षी है। यह स्थिति सिद्ध करती है कि विवाहित हिन्दू पत्नी के अतिरिक्त तानसेन की कोई मुस्लिम उपपत्नी भी थी। हिन्दू पत्नी के पुत्र हमीरसेन और सूरतसेन और मुस्लिम पत्नी के पुत्र तानतरंग ख़ाँ एवं विलास ख़ाँ थे। सम्भव है, इन दोनों की माँ कोई मुस्लिम संगीतसाधिका हो।

तानसेन के पहले 'मियाँ' विशेषण सूफ़ियों के साथ उनके घनिष्ठ सम्पर्क के कारण लगा। शैख़ सलीम चिश्ती प्रतिदिन तानसेन का गाना सुनते थे और अपने स्वर्गवास के दिन भी उन्होंने तानसेन का गाना सुना था। अकबर शैख़ सलीम चिश्ती का परम भक्त था। शैख़ साहब के आशीर्वाद से शाहज़ादा सलीम (सम्राट् जहाँगीर) का जन्म हुआ था। इन्हीं शैख़ सलीम चिश्ती का सान्निध्य प्रतिदिन प्राप्त करने के लिए अकबर ने सीकरी को राजधानी बनाया था।

'मियाँ' और 'मिर्ज़ा' शब्द विशेषण या उपाधियाँ हैं, अन्यथा हमें मिर्ज़ा राजा जयसिंह को भी मुसलमान मानकर उनकी क़ब्र भी कहीं ढूँढ़नी पड़ेगी। इस वंश के राजाओं को 'मिर्ज़ा' उपाधि मुग़ल दरबार से मिली। 'मिर्ज़ा' शब्द 'मीरज़ादा' का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ अमीर या सरदार की सन्तान होता है। आज भी सूफ़ियों के सम्पर्क में आ जानेवाले उनके हिन्दू मुरीदों के वंशज 'मियाँ' कहलाते हैं। बंगाल में 'ख़ाँ' उपाधि से युक्त ब्राह्मण भी मिल जायेंगे, 'ख़ाँ' जिनकी आनुवंशिक उपाधि है। हो सकता है, तानसेन भी श्रद्धावश शैख़ सलीम चिश्ती के मुरीद हो गये हों।

---

१. सहसंरस, भूमिका, पृ० १२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तानसेन का एक ध्रुवपद 'राग-माला' नामक एक संग्रह में प्राप्त है, जिसमें तानसेन के नाम के पूर्व मियाँ भी है, शैख की चर्चा भी है और तानसेन पुनर्जन्मवादी भी हैं। तानसेन का इस ध्रुवपद में पुनर्जन्मवादी होना उन्हें हिन्दू ही सिद्ध करता है।[1]

'अकबरनामा' के अनुसार तानसेन की अन्त्येष्टि को 'सुपुर्देखाक़' करना कहा गया है, इसका अर्थ 'गाड़ना' भी हो सकता है और 'जलाना' भी। यह फ़ारसी मुहावरा है। जैसे 'अन्तिम संस्कार' शब्द का अर्थ मुसलमान के प्रसंग में 'गाड़ना' और किसी हिन्दू के प्रसंग में 'जलाना' होगा।

तानसेन की मृत्यु आगरे में हुई और उनकी शव-यात्रा के साथ शाही गवैये गाते-बजाते, विवाहोत्सव जैसा मनाते हुए गये।[2] अत्यन्त दीर्घजीवी व्यक्तियों की मृत्यु पर उनकी अर्थी का विमान बनाना, विवाहोत्सव जैसा मनाना और शव-यात्रा के साथ गाना-बजाना विशुद्ध हिन्दू प्रथा है। यद्यपि शैख निज़ामुद्दीन चिश्ती की शव-यात्रा के साथ भी क़व्वाल क़व्वाली गाते हुए चल रहे थे, तथापि उसका विषय निर्वेदात्मक था, वह शव-यात्रा विवाहोत्सव नहीं थी।[3]

आगरा से ग्वालियर तक लोग शव-यात्रा के साथ गाते-बजाते गये हों, यह सम्भव नहीं। यदि तानसेन ग्वालियर में दफ़नाये गये होते, तो उनकी क़ब्र की चर्चा अबुल्फ़ज्ल ने अवश्य की होती, क्योंकि अबुल्फ़ज्ल की मृत्यु तानसन की मृत्यु (१५८९ ई०) के तेरह वर्ष बाद २२ अगस्त, १६०२ ई० को हुई।[4] 'आईने अकबरी' और 'अकबरनामा' का सम्पादन इस वर्ष तक हो रहा था। इनमें तानसेन की किसी क़ब्र का उल्लेख नहीं, अतः ग्वालियर में विद्यमान तानसेन की तथाकथित क़ब्र वस्तुतः किसी और तानसेन की है, जिसे इसी शताब्दी में तानसेन की क़ब्र कहा जाने लगा है। तानसेन कई हुए हैं।

वास्तव में अकबरी दरबार के तानसेन यावज्जीवन हिन्दू रहे।

तानसेन की संगीत-शिक्षा

मानसिंह तोमर की मृत्यु (१५१६ ई०) के समय तानसेन की आयु पच्चीस-छब्बीस वर्ष थी, ध्रुवपदों का निर्माण इस समय हो रहा था और लोग इस शैली में प्रशिक्षित किये जा रहे थे। इस दृष्टि से तानसेन बख़्शू के शिष्यों

---

१. संगीत-चिन्तामणि, पृ० ४२८
२. अकबरनामा, द्वितीय खण्ड, पृ० ८८०
३. चेहल रोजा, निज़ामी बंसरी, पृ० ३३७-३३८
४. मुग़लकालीन भारत (हुमायूं), भाग प्रथम, पृ० ३९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और बैजू के प्रशिष्यों में थे। शाहजहाँ की आज्ञा से संकलित बख्शू के सहस्र ध्रुवपदों के संग्रह 'सहसरस' की भूमिका में तानसेन से पूर्व बख्शू की चर्चा है और कहा गया है कि तानसेन रचित अनेक ध्रुवपद बख्शू के ध्रुवपदों में मिल गये हैं।[१]

बैजू हुमायूँ के पास से भागकर पुनः बहादुरशाह के पास चले गये थे,[२] अतः मुग़ल इतिहासकारों ने बैजू के सम्बन्ध में मौन का आश्रय लिया है, परन्तु बख्शू की चर्चा अबुल्फ़ज़्ल ने भी की है और 'सहसरस' में तो बख्शू की प्रशंसा जी खोलकर गयी है।

'सहसरस' के अनुसार मानसिंह की मृत्यु (१५१६ ई०) के पश्चात् उसके पुत्र विक्रमाजीत ने बख्शू को आश्रय दिया। सिकन्दर लोदी ने जब विक्रमाजीत को हराकर शम्साबाद का अधिकारी नियुक्त किया, तब बख्शू भी विक्रमाजीत के साथ गये। विक्रमाजीत की मृत्यु (१५२६ ई०) के पश्चात् बख्शू कालिंजर के राजा कीरत के पास चले गये और वहाँ से बहादुरशाह गुजराती (राज्य-काल १५२७-३७ ई०) के पास।[३] सम्भव है कि विक्रमाजीत के मृत्यु-वर्ष (१५२६ ई०) तक तानसेन विक्रमाजीत के ही आश्रय में रहे हों और उससे शिक्षा प्राप्त करते रहे हों।

तानसेन मुहम्मद आदिलशाह 'अदली' (राज्य-काल १५४९-५६ ई०) को गुरुवत् समझते थे,[४] यह बादशाह संगीतमर्मज्ञ था और बाबा रामदास तथा बाज़बहादुर भी इसके शिष्य थे।[५] अदली खुसरो-पद्धति का पण्डित था। 'राग-दर्पण' के अनुसार बाज़बहादुर भी ख़ुसरो-पद्धति के ही मर्मज्ञ थे। तानसेन ने अदली के दरबार में रहकर इस पद्धति से परिचय प्राप्त किया। अकबर से पराजित होनेवाला प्रसिद्ध हेमूँ इसी अदली का महामन्त्री था।

एक अप्रकाशित ध्रुवपद में तानसेन ने 'गोपाचल' (ग्वालियर) की अत्यन्त प्रशंसा की है, जिसमें कहा है कि मुझे राग-रागिनी का ज्ञान मकरन्द की कृपा से हुआ।[६] सम्भव है, इनसे तानसेन को संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा मिली हो

---

१. सहसरस, भूमिका, पृ० १०
२. मिराति-सिकन्दरी, पृ० २४९, रामपुर की हस्तलिखित प्रति; उर्दू 'आजकल', अगस्त १९५६, पृ० १०५ पर रामपुर की रज़ा-लायब्रेरी के विद्वान् प्रबन्धक मौलाना अर्शी द्वारा उद्धृत
३ सहसरस, भूमिका, पृ० ११
४. मुन्तखबुत्तवारीख, प्रथम खण्ड, पृ० ५५७
५. वही, पृ० ५५
६. 'राग-माला' (हस्तलिखित)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और यही तानसेन के पिता हों। शिवसिंह सरोज ने तानसेन के पिता का नाम मकरन्द लिखा है।

तानसेन के आश्रयदाता

पुष्ट प्रमाणों के आधार पर तो तानसेन के आश्रयदाता तीन थे : मुहम्मद आदिलशाह अदली, राजा रामचन्द्र और अकबर। बख्शू के साथ राजा विक्रमाजीत के आश्रय में तानसेन का रहना अनुमान मात्र है।

क़ाजी मेराज धौलपुरी का कथन है कि विक्रमाजीत (राज्य-काल १५१६-१८ ई०) ने तानसेन को 'तानसेन' उपाधि दी। अपने इस कथन में उन्होंने अकबर के समकालीन फ़ज़ल अलीशाह के द्वारा प्रणीत ग्रन्थ 'तवारीख़ कुल्लियात-ग्वालियर' और १८८९ ई० में मुद्रित 'मुन्तख़बुत्तवारीख़' (पृ० १३१) को आधार-रूप में उद्धृत किया है।[1] इस दृष्टि से विक्रमाजीत भी तानसेन के आश्रयदाता थे।

अकबरी दरबार में तानसेन का सम्मान और उसके कारण

अकबरी दरबार में तानसेन अनिच्छापूर्वक आये थे। अकबरी दरबार से गया हुआ जलाल खाँ कूर्ची उन्हें बलात् लाने के लिए भेजा गया था। राजा रामचन्द्र उन्हें अकबरी दरबार में भेजना नहीं चाहते थे।[2]

राजा रामचन्द्र ने एक बार प्रसन्न होकर तानसेन को एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ पुरस्कारस्वरूप दी थीं।[3] अकबर में इतनी उदारता न थी। राजा रामचन्द्र पर अकबर की कोप-दृष्टि थी, अतः अपने उदार आश्रयदाता को इस कोप से बचाने के लिए तानसेन को सम्भवतः अकबरी दरबार में आना पड़ा। वैसे तो वे प्रायः सत्तर वर्ष की आयु होने के कारण संन्यास ले लेना चाहते थे, इसी तथ्य को अबुल्फ़ज़्ल ने इस प्रकार कहा कि तानसेन रामचन्द्र के दरबार से रिटायर होना चाहते थे।[4]

अकबरी दरबार में पहुँचते ही तानसेन अकबर के पीर शेख़ सलीम चिश्ती के परम भक्त हो गये। शेख़ साहब यावज्जीवन तानसेन का गाना सुनते रहे, यहाँ तक कि अपने स्वर्गवास के दिन भी उन्होंने तानसेन का गाना सुना। इस तथ्य का उल्लेख 'जहाँगीरनामा' में है। तानसेन की इस नीति से अकबर की

---

१. उर्दू 'आजकल', अगस्त १९५६, पृ० ८७
२. मुन्तख़बुत्तवारीख़, खण्ड-२, पृ० २७३
३. वही, पृ० ३४५
४. अकबरनामा, द्वितीय खण्ड, पृ० २७९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रसन्नता स्वाभाविक थी।

अपने विनम्र और सरल स्वभाव के कारण तानसेन ने अकबरी दरबार के कलाकारों में मूर्धन्य स्थान प्राप्त किया। संगीत में विकास तो तानसेन ने किया ही, ध्रुवपदों के विषय-वस्तु में भी परिवर्तन किया।[1]

जहाँगीर के अनुसार तानसेन अकबरी दरबार के कलाकारों में सर्वश्रेष्ठ कवि थे। तानसेन ने अपने अनेक ध्रुवपदों में अकबर का नाम डाल दिया।[2]

तानसेन की योग्यता और कुशलता ने अकबर का मन अपने हाथ में ले लिया और अकबर ने तानसेन को 'कण्ठाभरणवाणीविलास' उपाधि से अलंकृत किया।

'इक़बालनामा जहाँगीरी' के अनुसार जब पहली बार अकबर ने तानसेन का गाना सुना, तब एक करोड़ दाम (ताँबे का सिक्का) दिये।[3] कहाँ राजा रामचन्द्र की एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ और कहाँ एक करोड़ ताँबे के सिक्के। ऐसी स्थिति में यह कहा जाना ठीक नहीं कि तानसेन लोभवश अकबरी दरबार में आये थे।

तानसेन की योग्यता

'सहसरस' के अनुसार तानसेन गान-कला के उच्चतम शिखर पर पहुँचे हुए गायक थे। यद्यपि अकबरी दरबार में और भी अच्छे गायक और ध्रुवपद-रचयिता थे, तथापि ध्रुवपदों की रचना और गान में वैसा कोई न था। उनका कण्ठस्वर अत्यन्त पुष्ट और पाटदार था, उनकी शैली परिपक्व थी और गान अत्यन्त मोहक था। स्वर और वाणी की देवी भारतीयों की दृष्टि में सरस्वती है, जिसके द्वारा सबको वाणी की स्फूर्ति और गीत-गान की शक्ति प्राप्त होती है। तानसेन उस वाणी के विलास थे, जो उनके कण्ठ का आभरण थी, इसीलिए अकबर ने उन्हें 'कण्ठाभरणवाणीविलास' उपाधि दी।[4] तानसेन सर्पर्दाइयों (स्वरप्रदायियों, साथ-साथ सुर लगानेवालों) के साथ गाते थे। शाही दरबार के गायक तानसेन की रचनाओं का अत्यधिक सम्मान करते थे। शाहजहाँ के

१. अकबरनामा, द्वितीय ख़ण्ड, पृ० २७६
२. तुज़्के जहाँगीरी, प्रथम खण्ड, पृ० ४१३, अलेक्जेंडर रोजर्स का अनुवाद
३. अकबरनामा, द्वितीय खण्ड, पृ० २७६ की पाद-टिप्पणी में उद्धृत
४. सिद्ध है कि तानसेन हिन्दू थे, कोई मुसलमान यह उपाधि लेने को तैयार न होगा। इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय ने जब सरस्वती का स्मरण अपने ध्रुवपदों में किया, तब मुल्लाओं ने हल्ला मचा दिया था। देखिए : 'किताबे नवरस', भूमिका, पृ० १४६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

युग में भी तानसेन के प्रायः दो सहस्र ध्रुवपद प्रचार में थे।[१]

तानसेन मूर्च्छना-पद्धति के भी पण्डित थे और मुक़ाम-पद्धति के भी। 'राग-माला' नामक एक हस्तलिखित ग्रन्थ में तानसेन का एक ध्रुवपद प्राप्त है, जिससे प्रतीत होता है कि 'संगीत-रत्नाकर' के स्वराध्याय को तानसेन गुरु-शिष्य-परम्परा के प्रसाद से जानते थे। ध्रुवपद निम्नांकित है :

'धैवत, पंचम, मधिम, गन्धार, रिखब, खरज, सुर साधि, साधि, साधि गुनी निषाद रे।
तेरहों अलंकार बाईस श्रुति साधि बाद उचारि सरिगमपधनिस सुघर सनि धपमगरे।
त्रिविधि त्रिविधि त्रिविधि सुरन मधि तृतीय, तृतीय, तृतीय वितंत जानत विदमान रे।
सप्त सुर तीनि ग्राम, इकईस मूर्च्छना, छतीस भेद नादवाद तानसेन-विधान रे।[२]

इस ध्रुवपद की व्याख्या यहाँ आवश्यक नहीं। इतना समझ लेना पर्याप्त है कि दाक्षिणात्यों का शंकराभरण ही अकबरी युग में मूल ठाठ हो गया था, यही ईरानियों का 'बुज़ुर्ग मुक़ाम' था और यही भरत के षड्ज ग्राम की निषाद से आरम्भ होनेवाली शुद्ध मूर्च्छना थी।[३] तानसेन इस रहस्य को समझते थे। वे यह भी जानते थे कि उदात्त स्वर उदात्त स्वर के, अनुदात्त स्वर अनुदात्त स्वर के और स्वरित स्वर स्वरित स्वर के संवादी तथा प्रतिनिधि होते हैं।

तानसेन की सन्तानें और शिष्य-प्रशिष्य

तानतरंग खाँ और विलास खाँ तथा सूरतसेन और हमीरसेन मियाँ तानसेन के पुत्र थे। तानतरंग खाँ की चर्चा अबुल्फ़ज्ल ने 'आईने अकबरी' में की है और अवशिष्ट तीन की फ़क़ीरुल्लाह ने 'राग-दर्पण' में। सोहिलसेन और सुधीनसेन क्रमशः तानसेन के पौत्र एवं प्रपौत्र थे।

'राग-दर्पण' के अनुसार लाल खाँ विलास खाँ का दामाद था, जिसे शाहजहाँ ने 'गुनसमन्दर खाँ' उपाधि दी थी। मुग़ल दरबार में तानतरंग खाँ के पश्चात् तानसेन का आनुवंशिक पद लाल खाँ को दिया जाना सिद्ध करता है कि तानतरंग खाँ और विलास खाँ के कोई पुत्र न था। 'औरंगज़ेबनामा' के अनुसार लाल खाँ के पुत्र ख़ुशहाल खाँ, बिसराम खाँ और रसबैन खाँ थे। इनका एक

---

१. सहसरस भूमिका, पृ० १२
२. इस ध्रुवपद की व्याख्या के लिए देखिए : 'संगीत-चिन्तामणि', पृ० ३७३
३. संगीत-चिन्तामणि, पृ० २५०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भाई और था, जिसका नाम 'औरंगज़ेबनामा' में नहीं है।

मियाँ चन्द, रंग खाँ और बख़्त खाँ तानसेन के शिष्य थे, 'राग-दर्पण' इस सम्बन्ध में प्रमाण है। अकबरी दरबार के छत्तीस प्रमुख कलाकारों की सूची में मियाँ चाँद का स्थान पाँचवाँ, तानतरंग खाँ का चौदहवाँ और रंग खाँ (रंगसेन आगरानिवासी) का इक्कीसवाँ है। बख़्त खाँ ही सम्भवतः बख़्तर खाँ है, जो इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (बीजापुर सुल्तान) का गुरु था। बख़्त खाँ का शिष्य 'राग-दर्पण' के अनुसार बसन्ती था।

'औरंगज़ेबनामा' के अनुसार १६७२ ई० में बिसराम खाँ की मृत्यु हुई। उस अवसर पर औरंगज़ेब ने ख़ुशहाल खाँ और बिसराम खाँ के पुत्र भूपत खाँ को मातमी खिलअत दी।

बिलास खाँ का एक शिष्य था, मिसरी खाँ ढारी। इसे औरंगज़ेब के भाई शुजा ने शाहजहाँ से माँग लिया था। मिसरी खाँ ढारी बंगाल में शुजा के साथ रहा। इसकी चर्चा भी 'राग-दर्पण'कार ने की है।

तानसेन की सन्तति-परम्परा और शिष्य-परम्परा की इतनी ही चर्चा प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थों में हमें प्राप्त हुई है।

तानसेन की काल्पनिक सन्तानें

महापुरुषों के वंश से अपना काल्पनिक सम्बन्ध स्थापित करने का रोग संगीतजीवियों में प्रायः रहा है, कुछ तन्त्रीवादकों ने स्वयं को तानसेन से सम्बद्ध सिद्ध करने के लिए (उन्नीसवीं शती ई० में) तानसेन की एक कल्पित पुत्री की कल्पना कर डाली और स्वयं को उसकी सन्तान कहने लगे। तानसेन की उस काल्पनिक पुत्री सरस्वती का विवाह किसी मिसरीसिंह से कराने के पश्चात् उस कल्पनाप्रसूत मिसरी खाँ का मुसलमान नाम नबात खाँ रख दिया, क्योंकि फ़ारसी में 'नबात' मिसरी को कहते हैं। 'सदारंग' को इस नबात खाँ की सन्तति-परम्परा में रख दिया और इस कृत्य से 'सदारंग' की सारी सन्तानें सेनिया बन गयीं।

तानसेन के किसी दामाद की चर्चा किसी इतिहासकार ने नहीं की। लाल खाँ बिलास खाँ के दामाद थे।

मिसरी खाँ जन्मजात ढारी और बिलास खाँ का शिष्य था। यह औरंगज़ेब के युग में हुआ। इस निर्दोष मिसरी खाँ को ही मिसरीसिंह या नबात खाँ बनाकर तानसेन का दामाद घोषित कर दिया गया।

अकबरी युग के कलाकारों में एक नबात खाँ की चर्चा 'राग-दर्पण'कार ने की है, परन्तु न तो उन्हें नौमुस्लिम बताया है न तानसेन का दामाद।

अकबरी दरबार में प्रवेश के समय तानसेन की आयु लगभग सत्तर वर्ष

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

थी। इस समय से पूर्व तानतरंग खाँ, विलास खाँ, हमीरसेन और सूरतसेन जन्म ले चुके थे।

मुहम्मदशाह रंगीले के युग में भी तानसेन की सन्तति-परम्परा में उत्पन्न दो भाई रहीमसेन और तानसेन (तृतीय) विद्यमान थे। प्रत्यक्षदर्शी दरगाह क़ुली खाँ ने उस युग में केवल इन दो भाइयों को ही तानसेन की औलाद कहा है, 'सदारंग' को नहीं। 'सदारंग' से दरगाह क़ुली खाँ, भलीभाँति परिचित थे।[1]

तानसेन 'अताई' ?

'राग-दर्पण'कार ने उन लोगों को अताई कहा है, जो संगीत के क्रियापक्ष से ही परिचित हों। नायक वे हैं जो ग्रन्थ का अध्ययन करके उसके अनुसार सिखाते हों। 'राग-दर्पण' के अनुसार अकबरी दरबार के कलाकार 'अताई' थे, जिनमें सर्वप्रथम थे तानसेन।

'सहसरस' का संकलन शाहजहाँ ने कराया और 'राग-दर्पण'कार भी शाहजहाँ तथा औरंगज़ेब के युग में कश्मीर का गवर्नर रहा। 'सहसरस' की भूमिका में बख्शू और तानसेन के विषय में जो कुछ लिखा गया है, उससे व्यंजित होता है कि शाहजहाँ की दृष्टि में तानसेन की अपेक्षा बख्शू का महत्त्व अधिक था। शाहजहाँ ने बख्शू के ध्रुवपदों का संकलन तो कराया, परन्तु तानसेन के ध्रुवपदों का संकलन कराने की आवश्यकता न समझी। केवल यह कहकर सन्तोष कर लिया कि यदि तानसेन के ध्रुवपदों को संगृहीत किया जाये, तो उनकी संख्या दो हज़ार तक पहुँच सकती है।[2]

'सहसरस' की भूमिका में वर्णित विचारों से 'राग-दर्पण'कार प्रभावित है, इसीलिए उसने तानसेन को 'अताई' तक लिख डाला है।

हमारी दृष्टि में तानसेन न तो निरक्षर थे, न सिद्धान्तज्ञानशून्य। वे रस, अलंकार, नायिका-भेद इत्यादि से भी भलीभाँति परिचित थे।

उन्हें जहाँ बैजू और बख्शू की परम्परा का ज्ञान मिला था, वहाँ वे खुसरो-पद्धति के भी पण्डित थे। बख्शू के ध्रुवपदों का विषय केवल शृंगार है, परन्तु तानसेन के ध्रुवपदों में प्रताप-वर्णन, प्रबोध, वैराग्य, सूफ़ियों की स्तुति इत्यादि भी हैं। अबुल्फ़ज़्ल ने भी इस नवीनता की ओर संकेत किया और उसका श्रेय तानसेन को दिया है।

अकबरी युग के पुण्डरीक, श्रीकण्ठ, जहाँगीरी युग के सोमनाथ तथा

---

१. 'सदारंग' और उनके युग के दिल्लीवासी कलाकार, 'संगीत', अगस्त १९६९, पृ० ५-१८

२. सहसरस, भूमिका, पृ० १२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शाहजहाँ-युग के गोविन्द दीक्षित ने वर्तमान 'तोडी' ठाठ के स्वरों की चर्चा तक नहीं की है। इस ठाठ में गेय 'मियाँ की तोड़ी' के आविष्कर्त्ता तानसेन हैं। यह 'ठाठ' मुक़ाम-पद्धति की देन है। भरत अथवा शार्ङ्गदेव की मूर्च्छनाओं में इस ठाठ का मिलना असम्भव है। इस ठाठ के राग 'मुलतानी' का आविष्कार शैख बहाउद्दीन ज़करिया मुलतानी (मृ० १२६७ ई०) कर चुके थे। वेंकटमखी ने 'चतुर्दण्डी प्रकाशिका' (रचना-काल १६६० ई०) में 'पन्तुवराली' के नाम से इस ठाठ की चर्चा की है और इसे 'तुरुष्कप्रिय' (मुसलमानों को रुचिकर) कहा है। वेंकटमखी की परम्परा पर यह तानसेन के शिष्य-प्रशिष्यों का ही प्रभाव है।

'मियाँ की सारंग' और 'मियाँ की मलार' भी मूर्च्छना-पद्धति के अन्तर्गत नहीं आते, इन्हें मुक़ाम-पद्धति और मेल-पद्धति में भी समेटना कठिन है। इन रागों में निषाद के दोनों रूपों का सुखदायी प्रयोग तानसेन की देन है।

लाल खाँ

ये तानसेन के पुत्र विलास खाँ के दामाद थे। बचपन में ही तानसेन की सेवा में आ गये। तानसेन ने विलास खाँ की पुत्री का विवाह इनसे करा दिया। इन्हें तानसेन से भी शिक्षा मिली और तानसेन के शिष्यों से भी, यद्यपि संगीतशास्त्र की शिक्षा न मिलने के कारण ये ध्रुवपदों की रचना करने में असमर्थ थे, तथापि तानसेन के ध्रुवपदों को गाने में ये अद्वितीय थे और इन्होंने तानसेन-परम्परा को शाहजहाँ के युग तक अक्षुण्ण रखा था।[1]

इनके चार पुत्र थे। उनमें से तीन—खुशहाल खाँ, बिसराम खाँ और रसबैन खाँ—का नाम तो उपलब्ध होता है, चौथे का नहीं।[2]

१६३७ ई० में इन्हें शाहजहाँ ने 'गुनसमन्दर खाँ' उपाधि दी। १६५२ ई० में इनका स्वर्गवास हुआ।[3]

'सहसरस' के संकलन के समय यह जीवित थे। सहसरस की फ़ारसी भूमिका में इनके विषय में कहा गया है :

"तानसेन के शिष्य-प्रशिष्यों में लाल खाँ है, जिसे 'वन्दगान आला हजरत

---

१. राग-दर्पण, नवाँ बाब, रज़ा लाइब्रेरी की हस्तलिखित प्रति; 'बादशाहनामा' २/५, मौलाना अर्शी द्वारा उर्दू 'आजकल', अगस्त १९५६, पृ० १०७ पर उद्धृत

२. औरंगज़ेबनामा, पृ० १०, २२, अनुवादक देवीप्रसाद, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई द्वारा १९०९ में प्रकाशित

३. 'बादशाहनामा' २/५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ख़लीफ़ा इलाही' (शाहजहाँ) ने गुनमन्दर खाँ की पदवी से गौरवान्वित किया है। यह लाल खाँ गीत-रचना में असमर्थ है, क्योंकि इसने इस कला की विद्या का अध्ययन नहीं किया, किन्तु गाने में, गाने की सूक्ष्मताओं को प्रस्तुत करने में और शैली के सौन्दर्य और गति की पक्वता प्रस्तुत करने में उच्चकोटि का कलाकार है। आलाप के समय यह पूरी शक्ति और अधिकतम कौशल व्यक्त करता है। ध्रुवपदों को इतने अच्छे ढंग से गाता है कि ग्रन्थकारों ने गीत और गाने के जो गुण बताये हैं, उन सबका निर्वाह करता है। अपने गुरु एवं तानसेन के पट्टशिष्यों से इसने जिस ढंग से सुना है, उसका अनुसरण करता है। इसका गाना इतना परिपक्व एवं व्यवस्थित है, मानो उसने (सबकुछ) तानसेन से ही सुना और सीखा हो। आज तानसेन के ध्रुवपदों को लाल खाँ की भाँति कोई नहीं गा सकता, इसीलिए वह नाना प्रकार के राजकीय उपायनों और उपहारों से गौरवान्वित हुआ है। उसके चार पुत्र हैं, जो उसके साथ गाते हैं।"[1]

'राग-दर्पण' के अनुसार मृत्यु (१६५२ ई०) के समय लाल खाँ की आयु अस्सी-नब्बे वर्ष थी। इस दृष्टि से लाल खाँ का जन्म-वर्ष १५६२ ई० और १५७२ ई० के मध्य में होना चाहिए।[2]

भातखण्डे संगीतशास्त्र, चौथा भाग, पृष्ठ २१७ पर लाल खाँ के साथ बड़ा अन्याय हुआ है, वहाँ खुशहाल खाँ का बाप किसी असद खाँ को बना दिया गया है और बेचारे लाल खाँ अपने प्रसिद्ध पुत्र खुशहाल खाँ के पितृत्व से वंचित कर दिये गये हैं। कोई लाल खाँ (द्वितीय) खुशहाल खाँ के पुत्र घोषित कर दिये गये हैं। भातखण्डेजी को उस वंश-वृक्ष की परीक्षा करने का अवसर नहीं मिला था, यदि 'औरंगज़ेबनामा' पढ़ने का अवसर स्वर्गीय भातखण्डेजी जैसे प्रबुद्ध व्यक्ति को मिला होता तो भातखण्डे संगीतशास्त्र में लाल खाँ और खुशहाल खाँ जैसे निरपराध व्यक्तियों के साथ अकारण अन्याय न हुआ होता।

खुशहाल खाँ

खुशहाल खाँ, तानसेन के पुत्र बिलास खाँ के दौहित्र (धेवते) और लाल

---

१. सहसरस, फ़ारसी-भूमिका का अनुवाद, पृ० १२-१३
२. 'संगीत-चिन्तामणि' में पृ० २८३ पर प्रमादवश हमसे भूल हुई है। १६०८ ई० में जिसकी मृत्यु हुई, वह 'लाल कलावन्त' एक अन्य व्यक्ति था, जो बचपन से ही अकबर की सेवा में आ गया था। इसकी एक उपपत्नी ने उसके मरने पर विष खाकर आत्महत्या कर ली।—'तुज़्के जहाँगीरी' (हस्तलिखित), पृ० ७१—'इक़बालनामा जहाँगीरी' (हस्तलिखित), पृ० ८४७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

खाँ के ज्येष्ठ पुत्र थे।[१] खुशहाल खाँ के तीन अन्य सहोदर और थे।[२] 'औरंगज़ेब-नामा' उनमें से बिसराम खाँ और रसबैन खाँ का नाम तो बताता है, तीसरे का नहीं।[३] बिसराम खाँ के पुत्र का नाम 'भूपत' था, जिन्हें बिसराम खाँ की मृत्यु (१६७२ ई०) होने पर औरंगज़ेब ने मातमी खिलअत दी।[४]

लाल खाँ की मृत्यु के पश्चात् शाहजहाँ के दरबार में आनुवंशिक स्थान खुशहाल खाँ को मिला। शाहजहाँ को खुशहाल खाँ का गाना अत्यन्त प्रिय था। खुशहाल खाँ अपने द्वारा रचित ध्रुवपदों को 'शाहजहाँ' मुद्रा से अंकित करते थे, इससे सिद्ध होता है कि वे अपने पिता लाल खाँ की भाँति संगीतशास्त्र ज्ञानशून्य नहीं थे।

एक राजनीतिक कारण से खुशहाल खाँ सम्राट शाहजहाँ के कोपभाजन और शाहज़ादा औरंगज़ेब के कृपापात्र हो गये। घटना इस प्रकार है :

"एक दिन शाहजहाँ ने अमीरुल्-उमरा (महामन्त्री) अलीमर्दान खाँ से पूछा कि तुम्हारी दृष्टि में कौन शाहज़ादा सम्राट् बनेगा। अलीमर्दान खाँ अत्यन्त बुद्धिमान् था। इस बात को ताड़ गया कि बादशाह का अनुग्रह दाराशिकोह पर है, यद्यपि उसमें सम्राट बनने की योग्यता नहीं है। साथ ही उसने यह सोचा कि स्पष्ट बात कहता हूँ, तो शिष्टाचार के विपरीत है और मिथ्या-भाषण स्वामीभक्ति के विरुद्ध है। इन सब बातों का विचार करके महा-मन्त्री ने शाहजहाँ से निवेदन किया कि मुर्शिद क़ुली खाँ जिस शाहज़ादे से सहयोग करेगा, वही शाहज़ादा सम्राट् होगा।

मुर्शिद क़ुली खाँ ईरान के बादशाह अब्बास द्वितीय की सभा का एक अमीर था और अलीमर्दान खाँ के साथ शाहजहाँ की सेवा में उपस्थित होकर सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। शाहजहाँ को महामन्त्री अलीमर्दान खाँ की सम्मति पर पूरा विश्वास था, उसने दारा को संकेत किया कि मुर्शिद क़ुली खाँ को प्रसन्न करो, साथ-ही-साथ मुर्शिद क़ुली खाँ की नियुक्ति दाराशिकोह की सेवा में कर दी। दाराशिकोह ने अपने पूज्य पिता के सेवकों की क़द्र न की। मुर्शिद क़ुली खाँ थोड़े ही दिनों में दाराशिकोह से बचने लगा।

इन्हीं दिनों औरंगज़ेब को दक्षिण का सूबेदार बनाया गया, तो वह कुशल-मंगल जानने के बहाने महामन्त्री अलीमर्दान खाँ के घर पहुँचा और बोला कि

---

१. 'खुलासतुल् ऐश आलमशाही'—'मिरातिआफ़ताबनुमा', पृ० ३६० (आ), मौलाना अर्शी द्वारा उर्दू 'आजकल', अगस्त १९५६, पृ० १०८ पर उद्धृत
२. सहसरस, फ़ारसी-भूमिका का अनुवाद, पृ० १३
३. औरंगज़ेबनामा, द्वितीय भाग, १०, २२
४. वही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुर्शिद क़ुली खाँ को मेरे साथ दक्षिण भेजिए, इस सम्बन्ध में सम्राट् शाहजहाँ से स्वयं कुछ निवेदन करना मैं उचित नहीं समझता, आप स्वयं यह कार्य कराने का प्रयत्न करें। महामन्त्री ने औरंगज़ेब को वचन तो दे दिया, परन्तु उन्हें साहस न होता था कि वे इस विषय में शाहजहाँ से कुछ निवेदन करें। इसी मानसिक उलझन को एक बार महामन्त्री ने अपने किसी मित्र के सम्मुख व्यक्त कर दिया, वह व्यक्ति खुशहाल खाँ का भी मित्र था और यह बात खुशहाल खाँ से कह बैठा। खुशहाल खाँ ने उससे कहा कि यदि महामन्त्री मुझे एक लाख रुपये कृपापूर्वक देने का कष्ट करें, तो उनका प्रार्थनापत्र मैं स्वीकृत कराये देता हूँ, शर्त यह है कि जब मैं संकेत करूँ, तब ही सम्राट् से इस विषय में निवेदन किया जाये।

खुशहाल खाँ की यह बात अमीरुल्-उमरा तक पहुँची और उन्होंने यह बात मान ली।[1]

कुछ दिनों के पश्चात् नौरोज़ के उत्सव में खुशहाल खाँ और बिसराम खाँ अपने स्थान पर खड़े हुए तोड़ी गा रहे थे और शाहजहाँ पूर्णरूपेण रसमग्न था कि खुशहाल खाँ ने संकेत किया और महामन्त्री ने मुर्शिद क़ुली खाँ का प्रार्थना-पत्र सम्राट की सेवा में प्रस्तुत कर दिया। रसमग्न शाहजहाँ ने प्रार्थनापत्र पढ़े बिना ही स्वीकृतिसूचक हस्ताक्षर बना दिये।

महामन्त्री ने आज्ञापत्र 'ख़िलअतख़ाने' को भेज दिया। दूसरे दिन मुर्शिद क़ुली खाँ को, विदा करने के लिए ख़िलअतख़ाने में बुलाया गया। 'ख़िलअत-ख़ाने' के दारोगा ने शाही आज्ञापत्र शाहजहाँ की सेवा में प्रस्तुत किया। शाहजहाँ ने मुर्शिद क़ुली खाँ का प्रार्थना-पत्र मँगवाया। उस पर अपने हस्ताक्षर देखकर शाहजहाँ मन-ही-मन चौंका, परन्तु उसने नीतिवश यह प्रकट नहीं किया कि प्रार्थनापत्र पर स्वीकृति असावधानता के क्षणों में प्रार्थनापत्र पढ़े बिना ही दी गयी है और मुर्शिद क़ुली खाँ को, विदा के समय दी जानेवाली खिलअत देने का आदेश भी दे दिया।

कुछ दिनों के बाद शाहजहाँ को वास्तविकता का ज्ञान हो गया। फलतः खुशहाल खाँ और बिसराम खाँ को उनके आनुवंशिक स्थान से हटाकर उनका पद गिरा दिया गया।[1]

औरंगज़ेब के सिंहासनासीन होने पर खुशहाल खाँ के दिन भी फिरे। उन्हें भी अपने पिता की उपाधि 'गुणसमुद्र खाँ' प्राप्त हुई।[2] औरंगज़ेब इनकी बड़ी

१. 'ख़ुलासतुल् ऐश आलमशाही', 'मिराति आफ़ताबनुमा' ३९० (आ), मौलाना अर्शी द्वारा उर्दू 'आजकल', अगस्त १९५६, पृ० १०८ पर उद्धृत
२. 'राग-दर्पण', नवाँ बाब

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

क़द्र करता था। १६५८ ई० में औरंगज़ेब बादशाह हुआ था, दस वर्ष पश्चात् १६६८ ई० में औरंगज़ेब ने आदेश दिया कि गायक लोग दरबार में सलाम करने तो आयें, परन्तु दरबार में गायें नहीं।

खुशहाल ख़ाँ के चारित्र्य से ज्ञात होता है कि मुग़ल दरबारों में कलाकार राजनीति से निर्लिप्त नहीं थे।

नेमत ख़ाँ 'सदारंग'

आगरा के स्थान पर दिल्ली के राजधानी बनने के पश्चात् दरबार और दरबार के आश्रित कलाकारों पर सूफ़ियों के प्रभाव के कारण 'खयाल' का प्रचार 'ध्रुवपद' की अपेक्षा अधिक हो गया था। दिल्ली में 'क़व्वाल' भी बहुसंख्यक थे। ध्रुवपद की परम्परा को हिन्दू-कला और 'खयाल' एवं 'क़व्वाली' को मुस्लिम कला समझा जाने लगा था।[1]

नेमत ख़ाँ 'सदारंग' को इस पृष्ठभूमि में देखा जाना चाहिए। नेमत ख़ाँ 'सदारंग' परमोल ख़ाँ के पुत्र थे और ख़ुसरो ख़ाँ उनके कनिष्ठ सहोदर थे। औरंगज़ेब (राज्यकाल १६५८-१७०७ ई०) के युग में नेमत ख़ाँ का जन्म हुआ। इनकी प्रारम्भिक संगीत-शिक्षा औरंगज़ेब के पुत्र बहादुरशाह प्रथम (मुहम्मद मुअज़्ज़मशाह—राज्यकाल १७०७-१२ ई०) के युग में तातारी क़व्वाल, एक बंगाली नटवे, महाकवि देव तथा उस युग के अन्य कलाकारों के चरणों में हुई। जहाँदारशाह (राज्यकाल ग्यारह महीने) के दरबार में इन्हें सम्मान मिला और मुहम्मदशाह रंगीले (राज्यकाल १७१९-४८ ई०) ने तो इन पर अनुग्रहोंकी

---

१. निज़ामुलमुल्क़ आसफ़जाह प्रथम के साथ उनके एक अमीर दरगाह क़ुली ख़ाँ भी दिल्ली आये थे। दरगाहक़ुली ख़ाँ मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार तथा दरबार के गुणियों से भलीभाँति परिचित थे। निज़ामुलमुल्क़ मुहम्मदशाह रंगीले के महामन्त्री थे, परन्तु अनुभवहीन मुहम्मदशाह अपने महामन्त्री की सम्मति का मज़ाक उड़ाया करता था। निराश होकर महामन्त्री निज़ामुलमुल्क ने दिल्ली छोड़ दी और हैदराबाद पर अधिकार करके वह स्वतन्त्र शासक हो गया।

दरगाह क़ुली ख़ाँ दिल्ली में ही रहे और उन्होंने नादिरशाही आक्रमण के परिणामस्वरूप दिल्ली की दुर्दशा देखी। इस युग के मेलों, सूफ़ियों के मक़बरों, शायरों और कलाकारों का वर्णन दरगाह क़ुली ख़ाँ ने एक छोटी-सी पुस्तिका में किया, जिसका अनुवाद स्वर्गीय ख्वाजा हसन निज़ामी ने किया है। इस अनुवाद का प्रथम संस्करण १९३३ ई० और द्वितीय संस्करण १९४९ ई० में ख्वाजा साहब ने 'पुरानी दिल्ली के हालात' शीर्षक से प्रकाशित किया। वह पठनीय है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वर्षा कर दी। मुहम्मदशाह रंगीले के युग के अन्तिम भाग में 'सदारंग' का देहावसान हुआ। फ़ीरोज़ खाँ 'अदारंग' सदारंग के भतीजे, दामाद और शिष्य थे।[1]

नेमत खाँ सदारंग का अधिकार कई विद्याओं और अनेक भाषाओं पर था। उन्होंने कई विषयों के सम्बन्ध में रचनाएँ की थीं।[2]

'सदारंग' सूफ़ी सन्तों की समाधियों पर उपस्थित होते थे।[3] उस युग के संगीतप्रेमी सूफ़ियों में मजनूं नानकशाही[4], शाह कमाल[5], शाह ग़ुलाम मुहम्मद और शाह रहमतउल्ला प्रमुख थे।

लतीफ़ खाँ नामक एक विलासी रईस नेमत खाँ 'सदारंग' का परम मित्र था, सदारंग लतीफ़ खाँ के घर पर भी कभी-कभी संगीतगोष्ठी में गाते थे। उनकी आवाज़ में बड़ा जादू था।[6]

प्रत्येक मुस्लिम महीने की बारहवीं तारीख को 'सदारंग' अपने घर संगीत-सभा रखते थे जिसमें दिल्ली के अमीर और रईस भी आते थे। लोगों का आना प्रातः-काल से आरम्भ होता और शाम तक महफ़िल इतनी भर जाती थी कि तिल रखने के लिए भी स्थान नहीं रहता था। रात-भर महफ़िल रहती, उसमें 'सदारंग' भी गाते अथवा बीन बजाते थे। उनकी कला से महफ़िल सर्वथा रसमय हो जाती थी।[7]

'सदारंग' के भाई (ख़ुसरो खाँ) भी सदारंग की ही भाँति संगीतमर्मज्ञ थे। वे अनेक वाद्य बजाते थे और उनका उन सभी वाद्यों पर अधिकार था। ख़ुसरो खाँ तीन तार वाले एक वाद्य (सितार) पर सभी राग-रागिनियाँ भली-भाँति प्रस्तुत करते थे और नये-नये रागों का आविष्कार करते थे। तीन तारों वाला वह वाद्य (सितार) एक अद्भुत वस्तु समझा जाता था और लोग उसे देखकर आश्चर्य करते थे।[8]

'सदारंग' के शिष्य और दामाद फ़ीरोज़ खाँ 'अदारंग' अपने युग के अप्रतिम गायक और बीनकार थे। उनकी कला कठिन परन्तु परिपक्व थी, वे ध्रुवपदों,

---

१. मिराति-आफ़तावनुमा, पृ० ३९२ 'आ', मौलाना अर्शी द्वारा उर्दू 'आजकल', अगस्त १९५६, पृ० १०८ पर उद्धृत
२. पुरानी दिल्ली के हालात, पृ० ६६
३. वही, पृ० ६६
४. वही, पृ० ३४-३५
५. वही, पृ० ३६
६. वही, पृ० ४०
७. वही, पृ० ६६-६७
८. वही, पृ० ६७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तरानों और खयालों की रचना भी करते थे।[१]

'सदारंग' का शिष्य क़ासिम अली जैसा सुन्दर था, वैसी ही छविमती उसकी कला भी थी। यह अपनी पीढ़ी के कलाकारों में सर्वश्रेष्ठ और मुहम्मदशाह रंगीले का परम अनुग्रहभाजन था। दिल्ली के अमीर और रईस इसकी बड़ी इज्ज़त करते थे।[२]

पन्नाबाई 'सदारंग' की विशिष्ट शिष्याओं में थी। इसके गाने में जादू था। यह अत्यन्त सभ्य, शिष्ट और शीलवती, मधुभाषिणी एवं सात्विक प्रकृति की गायिका थी। नये-नये रागों का आविष्कार करती थी।[३]

'सदारंग' की दूसरी शिष्या कमालबाई यथानाम तथागुण थी। यह 'मुहम्मद शाह' की मुद्रा से अंकित सदारंग के खयाल अत्यन्त सुन्दर ढंग से गाती थी। दिन-रात गाने पर भी नहीं थकती थी। मुहम्मदशाह के दरबार में इसकी अत्यन्त प्रतिष्ठा थी।[४]

'सदारंग' के विषय में हमें इतनी ही जानकारी प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर मिली है।

तानसेन-परम्परा के साथ 'सदारंग' का कोई पारिवारिक सम्बन्ध नहीं था। तानसेन के वंशजों में 'सदारंग' के समय केवल रहीमसेन और तानसेन (तृतीय) जीवित थे, जिनका गुण भी उनकी वंश-परम्परा का परिचय देता था।[५]

'सदारंग' के युग के पर्याप्त समय पश्चात् उन्हें किसी लाल खाँ (सानी) का बेटा घोषित कर दिया गया। विसराम खाँ के पुत्र भूपत के बाप 'सदारंग' बना दिये गये।[६] तानसेन को मुसलमान और अपना पूर्वज सिद्ध करने के लिए तानसेन की कल्पित पुत्री की सृष्टि कर ली गयी और सदारंग को तानसेन की पुत्री के कल्पित वंशजों की दसवीं पीढ़ी में रख दिया गया।[७] हमें खेद है कि ऐसी बातों की असंगतियों पर स्व० भातखण्डेजी जैसे तार्किक व्यक्ति ने ध्यान न दिया और उन्होंने असंगत वंश-वृक्षों को अपने साहित्य में भी स्थान दे दिया।[८]

---

१. मिराति-आफताबनुमा, पृ० ३९२ 'ब'
२. पुरानी दिल्ली के हालात, पृ० ७०-७१
३. वही, पृ० ८९-९०
४. वही, पृ० ९०-९१
५. वही, पृ० ६९-७०
६. हमारे संगीत-रत्न, पृ० ४०४
७. वही, पृ० ४०३
८. भातखण्डे-संगीतशास्त्र, चतुर्थ भाग, पृ० २१७-२१८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'सदारंग' जैसा गायक, वादक और ध्रुवपद रचयिता बनने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति उदारहृदय और गुणग्राही हो। 'सदारंग' ने किसी भी व्यक्ति का शिष्य बनने में संकोच का अनुभव न किया। वे एक नटवे के भी शिष्य थे—नाचना, गाना, रबाव, पखावज और ताल (मंजीरा) बजाना जिसकी जाति का कार्य था।

'सदारंग' तुर्किस्तान के तातार प्रदेश के निवासी एक क़व्वाल के भी शिष्य थे और अपने युग के अन्य अनेक गुणियों के भी। उन्होंने महाकवि देव जैसे काव्य और संगीत के समर्थ आचार्य के चरणों में बैठकर संगीत और साहित्य के सिद्धान्तों का अध्ययन, मनन और अभ्यास किया था।

'सदारंग' स्वयं भी नवीन रागों का निर्माण करते थे। उनकी शिष्याएँ तक नवीन रागों की रचनाएँ करती थीं। नवीन सृष्टि और नवीन दृष्टि को उस युग में प्रोत्साहन मिलता था।

'सदारंग' के जीवन से उन लोगों को शिक्षा लेनी चाहिए, जो संगीतजीवियों के वंश में उत्पन्न होने पर संकुचितमस्तिष्क हो जाते हैं, जो न तो वास्तविक शिक्षा लेना चाहते और न लेते हैं, साहित्य और काव्य से सम्बन्ध रखना जो अनावश्यक समझते हैं, न तो स्वयं सोचते हैं, न चिन्तन को प्रोत्साहन देते हैं, न चिन्तन करते हैं।

आज भी संगीतजीवी जातियों में उत्पन्न अनेक व्यक्ति ऐसे हैं, जो बचपन में अनाथ हो जाने पर भी किसी और से सीखना अपने बाप-दादा की तौहीन समझते हैं और केवल अभ्यास के बल पर ज़माने-भर के उस्ताद बनने का दावा करते हैं।

शब्द और अर्थ की उपेक्षा करके तानों के हर्राटे मारनेवाले सज्जन 'सदारंग' की परम्परा के अनुयायी तो कदापि नहीं हैं।

वीणा अमूर्त स्वर को मूर्त कर देती है, 'सदारंग' अच्छे बीनकार होने के कारण ही अच्छे गायक थे। बीनकार जबतक अच्छा गायक न हो, तब तक उसमें पूर्णता नहीं आती।

सरस्वती वीणावादिका भी है, पुस्तकधारिणी भी। 'वीणा' सिद्धान्तों के प्रयोग का माध्यम है और 'पुस्तक' चिन्तन का संगृहीत रूप। 'सदारंग' सरस्वती के महान् उपासक थे, 'पुस्तक' और 'वीणा' दोनों पर ही उनका अधिकार था। विचारशून्य, निरक्षर अथवा क्रियाहीन व्यक्तियों को न तो 'सदारंग' का वास्तविक भक्त कहा जा सकता है, न उत्तराधिकारी।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१९वीं-२०वीं शती के कुछ अन्य प्रमुख कलाकार

बैराम खाँ

उन्नीसवीं शती ई० के प्रसिद्ध ध्रुवपद-गायक बैराम खाँ इमामबख्श[1] के पुत्र थे, इनका जन्म-स्थान सहारनपुर जिले का अम्बैठा नामक स्थान है। इमामबख्श ने अपने पुत्र बैराम खाँ को भी विद्वान् बनाया। बैराम खाँ को संगीत का शास्त्रीय ज्ञान भी था और ये प्रयोग के भी पण्डित थे। इन्हें जयपुर-नरेश महाराज रामसिंह ने अत्यन्त आदरपूर्वक रखा।

कहा जाता है कि बैराम खाँ को प्रकृति ने सुन्दर कण्टस्वर न दिया था। अतः इन्होंने एक गायिका की असुन्दर परन्तु कोकिलकण्ठी बालिका को गाने की शिक्षा दी। यही बालिका आगे चलकर भारत-कोकिला गौकीबाई कहलायी, जिसके गाने का सिक्का बड़े-बड़े उस्ताद मानते थे।

ग्वालियर के एक प्रसिद्ध गायक किसी को अपने सम्मुख कुछ समझते न थे और जो गवैया सामने आता, उससे मुर्ग़ की तरह 'कुकड़ूँ कूँ' जैसी बाँग जब तक न दिलवा लेते, तब तक दरबार में उसकी पहुँच न होने देते। बैराम खाँ ने एक सारंगीवादक का अधिकार 'खण्डमेरु' की पाँच हज़ार चालीस तानों पर करा दिया और भेज दिया। 'खण्डमेरु' वाली ये तानें उन खाँ साहब को आतीं न थीं जो मनुष्य की सन्तान से मुर्ग़ की बोली बुलवाया करते थे। पूर्वोक्त सारंगीवादक ने उनकी बुद्धि ठिकाने पर लगा दी।

मुबारक़ अली खाँ क़व्वाल बच्चे, रजब अली खाँ बीनकार, अमरतसेन, घग्घे खुदाबख्श, हैदरबख्श जैसे कलाकार बैराम खाँ के युग में थे। इनमें से कुछ लोग बैराम खाँ के निष्प्रभाव कण्ठस्वर का मज़ाक उड़ाते थे।[2] बैराम खाँ ने इसका

---

१. इमामबख्श जन्मतः ब्राह्मण थे और इनका नाम गोपाल था। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान् और महान् संगीतज्ञ थे। इनके स्वतन्त्र और स्वच्छन्द आचरण ने इन्हें जाति-बहिष्कृत कर दिया। फलतः प्रणय के वशीभूत होकर इन्होंने इस्लाम अंगीकृत किया। बैराम खाँ की माँ मुसलमान थीं, अतः बैराम खाँ जन्मतः मुसलमान थे।

२. संगीतज्ञों के संस्मरण; पृ० ३१
आगरावाले स्वर्गीय विलायत हुसैन खाँ द्वारा लिखित यह पुस्तक 'संगीत-नाटक-अकादेमी' द्वारा १९५९ ई० में प्रकाशित हुई। इसके 'प्रकाशकीय वक्तव्य' में कहा गया है—"इस पुस्तक में प्रस्तुत सामग्री की विश्वसनीयता अथवा प्रामाणिकता की कोई ज़िम्मेदारी अकादेमी की नहीं है। उस्ताद विलायत हुसेन खाँ के निजी संस्करण होने के नाते मूलतः इसकी सारी ज़िम्मेदारी उन्हीं की है।"

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उत्तर गौकीबाई, फ़रीद खाँ पंजाबी, मौलाबख्श साँखड़ेवाले और मियाँ कालू पटियालेवाले और बीनकार बन्दे अली खाँ जैसे शिष्य तैयार करके दिया।

बैराम खाँ ने अपने पुत्र अकबर खाँ और सद्दू खाँ को तो शिक्षा दी ही, अपने भाई हैदर खाँ के पोते ज़ाकिरुद्दीन खाँ और अल्लाह बन्दे खाँ को भी तैयार किया।

बैराम खाँ निरक्षर गायकों की आलोचना करते थे, राग को भ्रष्ट करनेवाले कलाकारों की प्रशंसा कभी न करते थे, इसीलिए वे अपने युग में लोकप्रिय न हुए परन्तु उनकी योग्यता और विद्वत्ता का लोहा सभी मानते और उनका आदर करते थे। ये जयपुर में ही स्वर्गवासी हुए।

रजब अली खाँ बीनकार

इनका जन्म अलीगढ़ में हुआ और इन्हें अम्बैठेवाले हसन खाँ से बीन की शिक्षा मिली। ये सितार और दिलरुबा भी अच्छा बजाते थे। ये जयपुर-नरेश महाराज रामसिंह के दरबार में थे।[1] बैराम खाँ, घग्घे ख़ुदाबख्श, अमृतसेन और मुबारक अली खाँ जैसे लोग जयपुर-दरबार में इनके साथ थे।

रजब अली खाँ गाना भी अच्छा गाते थे, परन्तु बीनकार की हैसियत से ही इन्होंने अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त की। इन्हें सन्तुष्ट करने के लिए ही बैराम खाँ ने गौकीबाई को तैयार किया था।

रजब अली खाँ को राज्य की ओर से जागीर भी मिली थी और एक हवेली भी। इनके घर प्रतिदिन संगीत-चर्चा होती और संगीत-गोष्ठी भी। महाराज माधोसिंह के राज्य-काल के आरम्भ में इनका स्वर्गवास हुआ।[2]

मुशर्रफ़ खाँ बीनकार इनके भानजे थे। अपने परिश्रम से मुशर्रफ़ खाँ ने अत्यन्त ख्याति अर्जित की, ये अपने युग के श्रेष्ठ बीनकार थे। इन्होंने पेरिस की यात्रा भी की थी और वहाँ के श्रोताओं को भी अपनी कला से रिझाया था। मुशर्रफ़ खाँ का स्वर्गवास १९०९ ई० में हुआ।[3]

मुशर्रफ़ खाँ के बड़े बेटे मुसाहब अली खाँ थे और अन्य एक पुत्र सादिक़ अली खाँ। मुसाहब अली खाँ बीन भी बजाते थे और दिल बहलाने के लिए ग़ज़ल इत्यादि भी अत्यन्त सुन्दर ढंग से गाकर श्रोताओं को रिझा लिया करते थे।[4]

---

१. संगीतज्ञों के संस्मरण, पृष्ठ १९४
२. वही, पृ० १९५
३. वही, पृ० १९५-९६
४. वही, पृ० १९६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सादिक़ अली खाँ ने अपने पिता से ही बीन की शिक्षा ली। अलवर-नरेश महाराज जयसिंह ने इन्हें आश्रय दिया। १९३४ ई० में ये रामपुर-नरेश नवाब रज़ा अली खाँ की सेवा में चले गये। सादिक़ अली खाँ का स्वर्गवास १७ जुलाई, १९६४ ई० को हुआ।[1]

बड़े मुहम्मद खाँ (क़व्वालबच्चे)

क़ौल अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ 'सुभाषित' या 'सूक्ति' है। 'क़ौल' गानेवाले व्यक्ति 'क़व्वाल' कहलाते थे। यह कहना ग़लत है कि 'क़व्वाल' लोगों की परम्परा अमीर ख़ुसरो के समय से आरम्भ हुई। अमीर ख़ुसरो के जन्म से पूर्व शम्सुद्दीन इल्तुतमिश के राज्य-काल (१२१०-३५ ई०) में क़ाजी हमीदुद्दीन नागौरी का क़व्वाल महमूद था, जिसने इल्तुतमिश की सभा में गाया था।[2]

समवर्ती क़व्वालों ने अमीर ख़ुसरो की रचनाएँ भी गायीं, यह सत्य है।

क़व्वालों की परम्परा के गायक क़व्वाल बच्चे कहलाते हैं। मुहम्मदशाह रंगीले के युग में ताज खाँ, मुईनुद्दीन, बुरहानी और जट्टा जैसे प्रसिद्ध क़व्वाल थे।[3]

अस्तु, उन्नीसवीं शती ई० में शकर और मक्खन नामक क़व्वाल अत्यन्त प्रसिद्ध थे।[4] कुछ लोगों का कथन है कि इन लोगों ने ऐसे तालों में 'स्थायी' और 'खयाल' बाँधे, जो ध्रुवपदों में प्रयुक्त नहीं होते, तथा इन्हें इस सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया कि लोग दंग रह गये।[5] मुहम्मदशाह रंगीले के युग में भी खयाल गाया जाता था, उस समय भी खयाल की दो शैलियाँ प्रचलित थीं। एक नयी कहलाती थी और दूसरी पुरानी।[6]

शकर खाँ के दो पुत्र मुहम्मद खाँ और अहमद खाँ थे। मुहम्मद खाँ ने दक्षिण में खयाल का सिक्का जमा दिया था। ये दक्षिणी ढंग से रहते थे, बालों का जूड़ा बाँधे रहते थे। तान, पल्टा, तहरीर और ज़मज़मे का प्रयोग बहुत करारे ढंग से करते थे।[7] दक्षिण की यात्रा से इन्हें अनुभव हुआ और इन्होंने

---

१. 'धर्मयुग', २२ नवम्बर, १९६४ के अंक में लेखक की श्रद्धांजलि
२. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ५७
३. वही, पृ० ७९
४. वही, पृ० ८४
५. 'आजकल' (उर्दू), १९५६, पृ० ६१
६. इसी पुस्तक में 'मुहम्मदशाह रंगीले के युग के कुछ अन्य कलाकार' पढ़िए।
७. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ८४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ख़याल-गायकी को तान और फिरत दी। भातखण्डेजी का कथन है कि मुहम्मद खाँ के गान-प्रकार को देखकर ही ग्वालियर के गायकों ने अपनी शैली बदल दी, तब से ख़याल में भयंकर तानबाज़ी करने की परिपाटी-सी पड़ गयी।[१]

चमत्कारप्रिय श्रोताओं को मुहम्मद खाँ की पेचदार और बलदार तानें अत्यन्त चकित करनेवाली प्रतीत हुईं। जब ये ग्वालियर पहुँचे, तब ग्वालियर-नरेश सिन्धिया ने मुहम्मद खाँ की गायकी को बहुत पसन्द किया।[२] सिन्धिया नत्थन खाँ और पीरबख़्श के शिष्य थे, जिनकी ख़याल-गायकी में ध्रुवपद की गम्भीरता और लयकारी में होरी का प्रभाव स्पष्ट था, परन्तु महाराज का स्वभाव चमत्कारप्रिय था जो सम्भवतः महाराष्ट्र के वीरतापूर्ण स्वभाव की विशेषता है; अतः मुहम्मद खाँ के गाने की जटिलता ने ग्वालियर-नरेश का मन मोह लिया और उन्होंने नत्थन खाँ के पुत्र हद्दू खाँ, हस्सू खाँ और नत्थू खाँ से कहा कि जब मुहम्मद खाँ गायें, तब तुम लोग पर्दे के पीछे बैठकर सुनो और उनकी शैली पर अभ्यास करो।[३] इन लोगों ने यही किया।

मुहम्मद खाँ पर जब यह रहस्य खुला, तब उन्होंने अप्रसन्न होकर ग्वालियर छोड़ दिया।[४] उस समय इनका वेतन बारह सौ रुपये मासिक था।

मुहम्मद खाँ ने अन्तोगत्वा रीवाँ-नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह का आश्रय लिया और १८४० ई० के लगभग[५] वहीं इनका स्वर्गवास हुआ।[६] ग्वालियर-नरेश दौलतराव सिन्धिया के दीवान त्र्यम्बकरावजी ने एक बार मुहम्मद अली खाँ का वेतन घटाकर जब केवल तीन सौ रुपये मासिक कर दिया, तब महाराज ने दीवान साहब की भर्त्सना की थी,[७] परन्तु जब मुहम्मद खाँ ने ग्वालियर छोड़ने का संकल्प कर लिया तब उन्होंने किसी की न सुनी।

मुहम्मद खाँ के भाई अहमद खाँ का राग अत्यन्त शुद्ध रहता था।[८]

मुहम्मद करम इमाम के अनुसार मुहम्मद खाँ का एक पुत्र क़ुतुबअली विवाहिता पत्नी से था और तीन किसी रक्षिता से थे।[९] इनमें मुनव्वर खाँ

---

१. भातखण्डे-संगीतशास्त्र, भाग-४, पृ० २२७
२. संगीतज्ञों के संस्मरण, पृ० १४६
३. वही, पृ० ६६
४. भातखण्डे-संगीतशास्त्र, भाग-४, पृ० २१६
५. संगीतज्ञों के संस्मरण, पृ० ६७
६. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ८४
७. भातखण्ड-संगीतशास्त्र, भाग-४, पृ० २२६-२७
८. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ८४
९. वही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और मुराद अली की चर्चा तो मुहम्मद करम इमाम ने 'मअदन्-उल्-मूसिक़ी' में की है, परन्तु तीसरे के विषय में कुछ नहीं लिखा। ये तीसरे पुत्र प्रसिद्ध मुबारक अली ख़ाँ थे, जो करम इमाम के समय छोटे रहे होंगे।

स्व० विलायत हुसेन ख़ाँ ने मुहम्मद ख़ाँ के पुत्रों में अमान अली ख़ाँ, बाक़र अली ख़ाँ और फ़ैयाज़ ख़ाँ भी गिनाये हैं, सम्भव है ये मुहम्मद करम इमाम के युग में बहुत छोटे रहे हों।[1] बाक़र अली ख़ाँ रामपुर-नरेश नवाब कल्वे अली ख़ाँ की सेवा में थे।[2]

मुहम्मद ख़ाँ के ग्वालियर-निवास और हद्दू ख़ाँ के द्वारा उनकी गान-शैली उड़ाये जाने की कहानी मुहम्मद करम इमाम के द्वारा चर्चा का विषय नहीं बनी। उसने बड़े मुहम्मद ख़ाँ को भी सुनाया और हद्दू ख़ाँ को भी। मुहम्मद करम इमाम के अनुसार बड़े मुहम्मद ख़ाँ ने रीवाँ में ही आश्रय लिया और वहीं वे स्वर्गवासी हुए।[3]

मुबारक अली ख़ाँ

बड़े मुहम्मद ख़ाँ के पुत्रों में मुबारक अली ख़ाँ को सर्वाधिक प्रसिद्धि मिली। वास्तव में इन्हीं को बड़े मुहम्मद ख़ाँ का वास्तविक प्रतिनिधि कहा जा सकता है।

इन्हें अलवर के महाराज शिवदानसिंह ने आश्रय दिया था। अलवर में मुबारक अली ख़ाँ का वेतन दो सहस्र रुपये मासिक था। जब अलवर-नरेश पर आर्थिक संकट आया, तब जयपुर-नरेश महाराज रामसिंह ने मुबारक अली ख़ाँ को आश्रय दिया। उस समय जयपुर-दरबार में बैराम ख़ाँ, घग्घे ख़ुदाबख़्श, रजब अली ख़ाँ बीनकार और अमृतसेन जैसे सितारवादक थे। जयपुर-दरबार में मुबारक अली ख़ाँ का अत्यन्त सम्मान था। इनके सत्संग से आगरेवाले नत्थन ख़ाँ और अतरौलीवाले अल्लादिया ख़ाँ ने अत्यन्त लाभ उठाया।

मुबारक अली ख़ाँ ने स्वयं किसी शिष्य को परिश्रम से नहीं सिखाया, इनसे सुन-सुनकर ही इनके भक्तों ने लाभ उठाया।

पेचीदा फ़िरत में मुबारक़ अली ख़ाँ अनुपम थे। इनकी तान की गुत्थियाँ अच्छे-अच्छे गायकों की समझ में नहीं आती थीं। प्रत्येक तान इस ख़ूबसूरती से सम पर आती थी कि सुननेवाले चकित रह जाते थे।

ये अत्यन्त प्रसन्नमुख थे और सभी से स्नेहपूर्वक व्यवहार करते थे। हद्दू ख़ाँ से इनकी प्रशंसा सुनने पर ग्वालियर-नरेश ने इन्हें निमन्त्रित किया और वे

---

१. संगीतज्ञों के संस्मरण, पृ० ६८

२. वही

३. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ८४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इनसे अति प्रसन्न हुए। ग्वालियर-नरेश ने इन्हें अपने दरबार में रखना चाहा, परन्तु ये जयपुर-नरेश की नौकरी छोड़ने के लिए सहमत न हुए।

मुबारक़ अली खाँ का स्वर्गवास १८८० ई० में जयपुर में ही हुआ।[1]

तानरस खाँ

तानरस खाँ का वास्तविक नाम क़ुतुबबख़्श था। 'तानरस खाँ' इनकी उपाधि थी। इनके पिता का नाम क़ादिरबख़्श और दादा का नाम क़ुतुबबख़्श था। दिल्ली के निकट डासना नामक गाँव में तानरस खाँ का जन्म हुआ। उन्हें अपने पिता क़ादिरबख़्श से संगीत की भरपूर शिक्षा मिली। शिक्षा पूर्ण होने के पश्चात् वे दिल्ली आये और अन्तिम मुग़ल बादशाह बहादुरशाह ज़फ़र के प्रधान दरबारी गायक नियुक्त हुए। बहादुरशाह ने ही उन्हें 'तानरस खाँ' उपाधि दी। बहादुरशाह उनका बड़ा सम्मान करता था। तानरस खाँ की बरात जब अतरौली गयी तब बादशाह ने बरात को अतरौली ले जाने के लिए सवारियों का प्रबन्ध किया और दूल्हा तानरस खाँ के, मोतियों का सेहरा, स्वयं बाँधा था। चाँदनी महल नामक मुहल्ला बादशाह ने तानरस खाँ को दिया था, जिसमें अब भी एक गली 'तानरस खाँ की गली' कहलाती है।

तानरस खाँ एक महान् और सफल कलाकार हो जाने पर भी अपनी कला और विद्या में निरन्तर वृद्धि करना चाहते थे, इसलिए वे अपने काल के प्रसिद्ध गुणी मियाँ अचपल के शिष्य हो गये। मियाँ अचपल क़व्वालबच्चे थे और फ़क़ीर स्वभाव के सज्जन थे। तानरस खाँ की सेवा से प्रसन्न होकर मियाँ अचपल ने उन्हें अपनी परम्परा के रहस्य बताये।

बहादुरशाह के पतन (१८५७ ई०) के पश्चात् तानरस खाँ अलवर पहुँचकर अलवर-नरेश महाराज शिवदानसिंह के आश्रित हो गये। ये समय-समय जोधपुर, जयपुर, ग्वालियर और दतिया जैसी रियासतों में भी निमन्त्रित किये जाते रहे। नेपाल-सम्राट् ने भी प्रसन्न होकर इन्हें पुरस्कृत किया था।

नेपाल से लौटकर ये हैदराबाद के निज़ाम मीर महबूब अली खाँ के दरबारी गायक हो गये। इनका वेतन साढ़े सात सौ रुपये मासिक निश्चित हुआ। वेतन के अतिरिक्त बहुमूल्य पुरस्कार भी इन्हें समय-समय पर मिलते रहते थे। इन्हें हैदराबाद में दरबार से जायदाद भी मिली। इसका एक हिस्सा आज भी 'मूसिक़ी मंज़िल' कहलाता है, जिसमें तानरस खाँ के वंशज रहते हैं।

तानरस खाँ का स्वर्गवास १८९० ई० में हुआ,[2] उस समय इनकी आयु प्रायः एक सौ वर्ष थी। ये 'शाह ख़ामोश' की क़ब्र के पास दफ़न हुए। तानरस खाँ की

१. संगीतज्ञों के संस्मरण, पृ० ६९-७०
२. वही, पृ० ८८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बनवायी हुई एक मस्जिद भी यहाँ है।[१]

तानरस खाँ स्थायी और खयाल के अतिरिक्त तराना भी बहुत अच्छा गाते थे। तराने के बोलों की काट-तराश का अभ्यास इन्हें विशेष रूप से था। इनकी तमाम तानें आमद की होती थीं। ये तराने के किसी भी बोल से उठकर सम पर आ जाते थे, जिससे सुननेवाले चकित होते और प्रशंसा करते थे। इन्होंने तरानों की रचना भी की है।[२] क़व्वाली में भी इनका बड़ा नाम था। अजमेर शरीफ़, कालिंजर शरीफ़ और दिल्ली की तमाम दरग़ाहों के सज्जाद और पीरज़ादे इनकी क़व्वाली से अत्यन्त प्रसन्न होते और इनका सम्मान करते थे।[३]

उन दिनों गवैयों की महफ़िल में बैठकर गाने की अनुमति केवल उन लोगों को ही मिलती थी, जो किसी आनुवंशिक गायक के विधिवत् शिष्य हुए हो, इसलिए पंजाब के मियाँ काले ने अलीबख्श और फ़तह अली (प्रसिद्ध अलिया फत्तू) को जयपुर में तानरस खाँ का शिष्य करा दिया।[४]

तानरस खाँ का कथन था कि रागमर्मज्ञ ख़याल-गायक और ध्रुवपद-गायक दोनों ही विलम्बित में राग की शुद्धता को बनाये रख सकते हैं, द्रुत में राग की शुद्धि रखना विरले ही लोगों का काम है।[५] तानरस खाँ सभी गान-शैलियों के मर्मज्ञ थे। इनकी आवाज़ बुलन्द और सुरीली थी।

तानरस खाँ के अन्य चार सहोदर हैदर खाँ, मदार खाँ, अलीबख्श खाँ और हाजी जीवन खाँ थे। तानरस खाँ के दो पुत्र ग़ुलाम ग़ौस खाँ और उमराव खाँ थे। शब्बू खाँ और जहूर खाँ तानरस खाँ के भतीजे थे और अपनी तान और फिरत के लिए देश-भर में प्रसिद्ध थे। तानरस खाँ के भानजे मुहम्मद सिद्दीक ने भी प्रसिद्धि प्राप्त की।[६]

तानरस खाँ के शिष्यों में पंजाब के अलीबख्श और फ़तह अली थे। इन दोनों भाइयों ने पंजाब में तानरस खाँ की गायकी पहुँचायी और इन दोनों भाइयों के शागिर्दों में मियाँजान खाँ, काले खाँ और कसूरवाले अलीबख्श खाँ ने अखिल भारतीय ख्याति प्राप्ति की। स्व० बड़े गुलाम अली खाँ के पिता कसूरवाले अली बख्श खाँ थे और काले खाँ चाचा थे।[७]

---

१. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त १९५६ ई०, पृ० २२८
२. संगीतज्ञों के संस्मरण, पृ० ८५
३. वही, पृ ८७
४. वही, पृ० ८६
५. वही
६. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त १९५६ ई०, पृ० १८
७. वही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तानरस खाँ के शिष्यों में मेवात के प्रसिद्ध सारंगीवादक उजागरसिंह थे। खेतड़ीवाली नन्हींबाई अपने समय की प्रसिद्ध सुन्दरी थीं। तानरस खाँ ने इन्हें श्रमपूर्वक शिक्षा दी। इन्होंने अपने गाने से बैराम खाँ की प्रसिद्ध शिष्या गौकी बाई को सन्तुष्ट किया। नन्हींबाई को महाराज जोधपुर ने जागीर दी। नन्हीं बाई भी अखिल भारतीय ख्याति की गायिका हुईं।

हद्दू खाँ

ग्वालियर-निवासी हद्दू खाँ और उनके भाई हस्सू खाँ और नत्थे खाँ और गुलाम इमाम के विषय में मुहम्मद करम इमाम ने लिखा है कि ये बहुत हट्टे-कट्टे और दबंग थे, अपने सामने दूसरे को कम समझते थे।[1] अपनी आयु के अन्तिम समय में हस्सू खाँ का मस्तिष्क कुछ विकृत हो गया था।[2] इनकी सम्मति थी कि इनके युग की बी रहीमनबाई चरखारीवाली उस युग के कलाकारों की अपेक्षा अधिक पौरुषपूर्ण ढंग से गाती थीं।[3] स्पष्ट है कि उस युग के गायकों को हद्दू खाँ की यह सम्मति कैसी लगती होगी।

हद्दू खाँ के पिता का नाम नत्थन खाँ था। उनका 'खयाल' ध्रुवपद और होरी की गायकी से प्रभावित था, परन्तु हद्दू खाँ ने ग्वालियर-नरेश दौलतराय सिन्धिया की आज्ञा से बड़े मुहम्मद खाँ का गाना सुना और उनकी शैली अपनायी। उसी युग से ग्वालियर की गायकी तानप्रधान हो गयी। हद्दू खाँ ने ताजमहल के गुम्बद को अपनी तान का एक दाना कहा था।[4] उनके इस कथन से इनके चरित्र के विषय में मुहम्मद करम इमाम की उक्ति की सत्यता सिद्ध होती है।

हद्दू खाँ के शिष्यों में उनके पुत्र मुहम्मद खाँ और रहमत खाँ प्रमुख थे। बन्ने खाँ पंजाबी, इमदाद खाँ, सहसवान के इनायत हुसेन खाँ और नज़ीर खाँ भी इनके शिष्य थे।

पण्डित दीक्षित, पण्डित बालागुरु, पण्डित जोशी, शंकराव पण्डित और बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर भी इनके शिष्य थे।

हद्दू खाँ की परम्परा ने अपने लिए कुछ ऐसे राग चुन लिये, जिनमें तानों के लिए सुविधा थी, इन रागों की संख्या सीमित है। जो राग वीणा जैसे वाद्यों के लिए हैं अथवा महासंकीर्ण हैं, उन्हें इस परम्परा ने दूर से ही प्रणाम कर लिया।

---

१. मुसलमान और संगीत, पृ० ८४

२. वही, पृ० वही

३. वही, पृ० ८४

४. संगीतज्ञों के संस्मरण, पृ० १४८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इनकी परम्परा महाराष्ट्र में अधिक लोकप्रिय हुई। बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर ने प्रसिद्ध विष्णु दिगम्बरजी को तैयार किया।

हद्दू खाँ की प्रसिद्धि के कारण अनेक गुणी ग्वालियर-परम्परा से अपना सम्बन्ध जोड़ने लगे, परन्तु ऐसे अनेक कलाकारों की गायकी में परस्पर साम्य ढूँढ़ना खोज का विषय है।

ग्वालियर की खयाल-परम्परा सम्भवतः लखनऊ-निवासी शकर खाँ के पुत्र मुहम्मद खाँ का अनुकरण-मात्र है, अन्यथा संगीत के क्षेत्र में ग्वालियर की प्रसिद्धि मानसिंह तोमर, बैजू, बख्शू और तानसेन के कारण है, जिनकी परम्परा ग्वालियर में शतियों पूर्व लुप्त हो गयी।

घसीट खाँ हुरियारे

घसीट खाँ का जन्म आगरे जिले के फ़तहपुर सीकरी नामक स्थान में १८८० ई० में हुआ। इनके वंश में ध्रुवपद और होरी का गान होता था। अपने वंश की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् ये लखनऊ पहुँचकर हैदरी खाँ नामक ध्रुवपद-गायक के शिष्य हो गये। इन्होंने डटकर परिश्रम किया, होरी गाने में इनकी अखिल भारतीय प्रसिद्धि हुई और ये 'हुरियारे' कहलाये।

ये जब ग्वालियर पहुँचे, तब वहाँ के लिए ये नये थे। इनके साथ इनके दो शिष्य थे। ये लोग सराय में ठहरे। वहाँ कुछ और गायक भी ठहरे हुए थे। उनसे घसीट खाँ को ज्ञात हुआ कि दो दिन के बाद ही चन्द्रभागाबाई के घर जल्सा होनेवाला है, जो ग्वालियर-नरेश की परम अनुग्रहभाजन थीं। उन लोगों ने चन्द्रभागाबाई के समक्ष भी यह चर्चा कर दी कि गाने-बजाने के रसिक कोई फ़क़ीर आये हैं, अतः जल्से में जाने का निमन्त्रण घसीट खाँ को भी मिल गया। वहाँ पहुँचकर ये लोग चुपचाप कोने में बैठ गये। इनके शिष्य भी इनके निकट बैठ गये, जिनके पास तम्बूरों की एक छोटी-सी जोड़ी थी। इनकी ओर किसी का ध्यान न गया।

क्रमशः कई कलाकारों का गाना-बजाना हुआ। अन्त में हद्दू खाँ, हस्सू खाँ और नत्थे खाँ जमकर गाये-बजाये। उनका गाना समाप्त होते ही किसी ने घोषणा कर दी कि जलसा समाप्त हो गया, साज़ उठाने चाहिए। यह सुनकर घसीट खाँ के एक शिष्य ने खड़े होकर कहा कि सब सज्जन बैठे रहें, गाना अभी होगा। यह सुनते ही हद्दू खाँ और उनके शिष्य बिगड़ें कि अब कौन गा सकता है, परन्तु चन्द्रभागाबाई ने घसीट खाँ से गाने के लिए कहा। इन्होंने तम्बूरे की जोड़ी मिलायी और परज में होरी आरम्भ की और इस दर्द-भरे ढंग से स्थायी अन्तरा कहा कि लोग रोने और सिर धुनने लगे। चारों ओर प्रशंसा होने लगी।[1] घसीट

---

१. संगीतज्ञों के संस्मरण, पृ० १४०-१४२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

खाँ अपने युग के सिद्ध गायकों में प्रमुख थे।

घसीट खाँ दीर्घजीवी हुए और इनका स्वर्गवास प्रायः १८८० ई० में हुआ।[1]

इनायत हुसेन खाँ सहसवानवाले

कलावन्तों (ध्रुवपद-गायकों) और क़व्वालबच्चों की प्रतिस्पर्द्धा की परम्परा की बात उत्तर भारतीय संगीत के इतिहास में शताब्दियों पुरानी है। मुहम्मदशाह रंगीले के युग में 'सदारंग' और ग़ुलाम रसूल की प्रतिस्पर्धा रही।[2] कलावन्तों को अकबर के युग से सूफ़ियों की प्रशंसा में भी ध्रुवपद कहने पड़े, उनमें से अनेक मुसलमान भी हुए, तथापि उनका काम 'हिन्दुआना' कहलाया और ख़याल एवं क़व्वाली को इस्लामी तरीक़ा कहा गया।[3]

यद्यपि 'सदारंग' ने असंख्य ख़यालों की रचना की, इनकी प्रसिद्धि यहाँ तक हुई कि भ्रमपूर्वक इन्हें ही ख़यालों का आविष्कारक तक माना जाने लगा, तथापि क़व्वाल बच्चों ने 'सदारंग' की परम्परा को हृदय से मान्यता न दी। इस प्रतियोगिता ने अनेक रागों के दो-दो रूप 'कलावन्ती' और 'क़व्वाली' कर दिये। 'कलावन्ती जयजयवन्ती' और 'क़व्वाली जयजयवन्ती' जैसे प्रकार प्रचलित हो गये। रागरूपों में 'तू-तू मैं-मैं' होने लगी।

रामपुर-दरबार में बहादुर हुसेन खाँ, 'सदारंग' के वंशज, और बाक़र अली खाँ जैसे क़व्वालबच्चे भी थे। दरबार में सदारंग-परम्परा की मान्यता थी, अतः क़व्वालबच्चों का स्वर वहाँ धीमा पड़ गया। वे बहादुर हुसेन खाँ का अधिकार राग और लय पर तो मानते थे, परन्तु उन्हें उस्ताद मानने के लिए तैयार न थे। परिणामतः कुछ ऐसे कलाकार भी उत्पन्न हो चुके थे, जो कलावन्तों के शिष्य भी हुए और क़व्वालबच्चों के भी। घग्घे खुदाबख्श और अल्लादिया खाँ का नाम ऐसे कलाकारों में लिया जा सकता है।

इनायत हुसेन खाँ अगली पीढ़ी के ऐसे ही कलाकारों में थे। वे बहादुर हुसेन खाँ के भी शिष्य हुए और हद्दू खाँ के भी। ये लोग राग-ज्ञान के लिए कलावन्तों की सेवा में जाते थे और तान, पल्टे, फिरत और जमजमे की शिक्षा के लिए क़व्वालों का मुँह जोहते थे।

इस युग में तीन प्रकार की शिक्षा होने लगी थी, सन्तानों के लिए, दामादों के लिए और शिष्यों के लिए। सन्तानों को परम्परा के 'रहस्य' बताये जाते थे, दामादों को इतना बताया जाता था कि वे पेट भर सकें और शागिर्दों को काम-

---

१. संगीतज्ञों के संस्मरण, पृ० १४३

२. मअदन्-उल्-मूसिक़ी, पृ० २४०

३. वही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चलाऊ माल देकर चलता कर दिया जाता था।

इनायत हुसेन खाँ बहादुर हुसेन खाँ के शिष्य थे और हद्दू खाँ के दामाद। इनायत हुसेन खाँ के भाई अली हुसेन खाँ और मुहम्मद हुसेन खाँ बीनकार थे और बहादुर हुसेन खाँ के शिष्य थे। स्व० भातखण्डे ने पन्द्रह वर्ष की आयु में ही मुहम्मद हुसेन खाँ से बीन सीखना आरम्भ कर दिया था।[1]

बहादुर हुसेन खाँ ने इनायत हुसेन खाँ को अपने बनाये सैकड़ों तरानों और सरगमों की शिक्षा दी। कई वर्ष तक तो केवल गौड़सारंग सिखाया था। बहादुर हुसेन खाँ साहब के तरानों और सरगमों का देशव्यापी प्रचार इनायत हुसेन खाँ और उनकी परम्परा के द्वारा ही हुआ।

संगीतजीवी लोग अपनी पुत्रियों के लिए प्रतिभाशाली वर चाहते थे, जो सम्मान प्राप्त करके अपनी पत्नी और सन्तानों को सुखी रख सकें। इसलिए प्रतिभाशाली लड़कों को बचपन से रखकर वे अपनी पुत्रियों का विवाह उनसे कर देते थे और दामाद को संगीत की शिक्षा भी देते थे। कभी-कभी अच्छे गुणियों को अपने खान्दान से बाहर भी अच्छे लड़के दिखलायी दे जाते, तो वे उन्हें भी योग्य बनाकर अपनी कन्या का विवाह उनसे कर देते थे। इसी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप हद्दू खाँ ने इनायत हुसेन खाँ को खयाल की शिक्षा भी दी और उन्हें अपना दामाद भी बनाया।

इनायत हुसेन खाँ अपने युग के यशस्वी गायक हुए और इन्होंने अनेक बन्दिशें भी कीं। ग्वालियर, हैदराबाद और रामपुर इत्यादि रियासतों में इनका सम्मान भी हुआ।

रामकृष्णवझे बुवा, छज्जू खाँ, नज़ीर खाँ, ख़ादिम हुसेन खाँ और मुश्ताक़ हुसेन खाँ जैसे शिष्य इनायत हुसेन खाँ ने उत्पन्न किये। हफ़ीज खाँ और उनके भाई बशीर खाँ गुड़यानीवाले भी इनायत हुसेन खाँ के शिष्य थे।

इनायत हुसेन खाँ की एक लड़की मुश्ताक़ हुसेन खाँ को, दूसरी बड़ौदेवाले निसार हुसेन खाँ को और तीसरी नवयुवक गायक ग़ुलाम मुस्तफ़ा के पिता को ब्याही।

अल्लादिया खाँ

अल्लादियाँ खाँ के पूर्वपुरुषों का स्थान उत्तरप्रदेश के ज़िला अलीगढ़ में अतरौली नामक स्थान है, परन्तु उनके कुछ पूर्वजों ने जोधपुर-दरबार का आश्रय लिया था। अल्लादिया खाँ का जन्म सन् १८६४ ई० में हुआ।[2] स्वर्गवास (१९४६ ई०)

---

१. भातखण्डे-संगीतशास्त्र, भाग-४, पृ० २२४

२. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त १९५६ ई०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के समय वे बम्बई में थे ।[1]

अल्लादिया खाँ को उर्दू और फ़ारसी की शिक्षा दी गयी । बचपन में ही इन्हें अपने पिता ख्वाजा अहमद खाँ से संगीत की शिक्षा मिली । जब इनके पिता इन्हें दस वर्ष का छोड़कर मर गये, तब ये अपने चचा चम्मन खाँ और जहाँगीर खाँ से संगीत की शिक्षा लेने लगे । बाईस वर्ष की आयु तक ये शिक्षा लेते रहे, इनके भाई हैदर खाँ की शिक्षा भी साथ-ही-साथ चल रही थी ।

तत्पश्चात् अल्लादिया खाँ और हैदर खाँ अपने चचाओं के आदेश से यात्रा के लिए निकले । दूसरों को सुनना और सुनाना एवं अनुभव प्राप्त करना इनका लक्ष्य था । सबसे पहले ये जयपुर पहुँचे, जहाँ महाराजा मानसिंह शासन कर रहे थे । जयपुर में ये नवाब कल्लन खाँ के आश्रित हो गये, जो टोंक के नवाब के भाई थे । उनके आश्रय में पाँच वर्ष तक रहकर इन दोनों भाइयों ने अपने अभ्यास को और परिपक्व किया । जयपुर-नरेश तक इनकी पहुँच हो गयी । आगरेवाले उस्ताद नत्थन खाँ और बड़े मुहम्मद खाँ के पुत्र उस्ताद मुबारक अली खाँ भी नवाब कल्लन खाँ के पास आते रहते थे, अतः अल्लादिया खाँ और हैदर खाँ को पूर्वोक्त दोनों उस्तादों का भी सम्पर्क प्राप्त हुआ ।

पाँच साल जयपुर में रहने के पश्चात् ये दोनों भाई अपने चचेरे भाई दौलत खाँ के साथ अतरौली आये, जहाँ इनके फुफेरे भाई खैरात अली खाँ रहते थे । एक वर्ष पश्चात् ये फिर बाहर निकले । क्रमशः लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस, पटना और कलकत्ता में थोड़े-थोड़े दिनों रहे और अन्ततोगत्वा जोधपुर लौटकर विवाह किया । इनकी ससुराल के लोग जयपुर के पास उनियारा में रहते थे, अल्लादिया खाँ वहीं चले गये । थोड़े दिनों बाद वे बड़ौदा गये, परन्तु वहाँ केवल छः महीने रह सके । १९०४ ई० में ये बम्बई पहुँचे, इस समय इनकी आयु चालीस वर्ष थी । कुछ दिनों के पश्चात् इन्हें कोल्हापुर-नरेश छत्रपति महाराज का आश्रय प्राप्त हुआ ।

कुछ लोगों का विचार है कि जिन दरबारों में उस युग के मूर्धन्य कलाकार, तानरस खाँ, मुबारक अली खाँ, हद्दू खाँ, नत्थन खाँ और अगली पीढ़ी के रहमत खाँ, नजीर खाँ जोधपुरवाले, फ़तह अली खाँ, अलीबख्श खाँ जैसे लोग जमे हुए थे, वहाँ अल्लादिया खाँ को मूर्धन्य स्थान मिलना सम्भव नहीं था, अतः उन्होंने दूरवर्ती प्रदेश कोल्हापुर को अपना स्थायी निवास-स्थान चुना । कहा जाता है कि खाँ साहब अल्लादिया खाँ को ढाई हजार से अधिक बन्दिशें याद थीं, जिनमें ध्रुवपद, धमार, स्थायी, खयाल, तराने, टप्पे और सरगमें शामिल हैं । ध्रुवपद और धमार वे बहुत सुन्दर गाते थे । उनका आनुवंशिक कार्य ध्रुवपद

१. संगीतज्ञों के संस्मरण, पृ० १७८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और धमार गाना ही था।[1]

उस युग में ध्रुवपद-गायक ख़याल गाना अपने लिए वर्जित समझते थे, क्योंकि उनकी दृष्टि में 'तानें' राग का सत्यानाश कर देती थीं और क़व्वालबच्चे तथा अन्य ख़याल-गायक कहते थे कि जिनका गला 'ठस' हो अर्थात चलता न हो, उनका काम ध्रुवपद गाना है। अतः यह सर्वथा सम्भव है कि उस युग के ध्रुवपद-गायक तो अल्लादिया खाँ को ध्रुवपदिया न मानते हों, क्योंकि वे ख़याल और तराना भी गाते थे और ख़याल-गायक उन्हें ख़यालिया न समझते हों, क्योंकि उनके पूर्वज ध्रुवपद और धमार गाते थे। कोल्हापुर में उन्हें आश्रय मिलने का यही कारण था कि वहाँ 'ध्रुवपद और ख़याल' की पुरानी परम्पराएँ न थीं और अल्लादिया खाँ के लिए वहाँ यह अवसर था कि वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी शैली को पल्लवित एवं पुष्पित कर सकें और उसके अनुसार शिष्य तैयार कर सकें।

अल्लादिया खाँ के मँझले पुत्र शम्सुद्दीन खाँ (भूर्जी खाँ) कला में उनकी प्रतिमूर्ति थे, परन्तु वे पैंतालिस वर्ष की आयु में ही चल बसे। अल्लादिया खाँ के ज्येष्ठ पुत्र नसीरुद्दीन खाँ उनियारे में फ़ॉरेस्ट-ऑफ़िसर थे और छोटे पुत्र बदरुद्दीन खाँ कोल्हापुर के दरबारी गायक थे, १९४९ ई० में उनका भी देहान्त हो गया।

बम्बई के कॉन्वोकेशन-हॉल में खाँ साहब के जीवन का अन्तिम गाना हुआ, उस समय उनकी आयु इक्यासी वर्ष थी। उस समय न तो उनकी तान कहीं से बेसुरी थी और न गाने में कोई कमज़ोरी थी।

महाराष्ट्र में खाँ साहब ने अनेक शिष्य तैयार किये, परन्तु सम्पन्न होने के कारण अथवा किसी अन्य कारण से उन्होंने स्वयं को उत्तर भारत के उन दरबारों से दूर रखा जहाँ वे स्थिर न हो पाये थे। खाँ साहब के शिष्यों में ऐसे कलाकार खोज का विषय हैं, जिन्होंने भारतवर्ष-भर में गा-बजाकर प्रसिद्धि अर्जित की हो।

बम्बई की केसरबाई केरकर और मोघूबाई कुर्डीकर, शालिग्राम बुआ, निवृत्ति बुआ सरनायक, बम्बई के प्रसिद्ध करोड़पति गिल्लू भाई जसदानवाला, लीलावती शेरगावँकर, गोविन्दराव टेम्बे इत्यादि की गणना अल्लादिया खाँ के शिष्यों में है। कहा जाता है कि प्रसिद्ध गायक भास्करराव बखले भी अल्लादिया खाँ से लाभान्वित हुए थे। अल्लादिया खाँ साहब अपनी गायकी के प्रवर्तक स्वयं थे।

डॉ० एम० आर० जयकर ने बम्बई के एक जलसे में अल्लादिया खाँ को 'संगीत-सम्राट्' उपाधि दी थी।

अल्लादिया खाँ (अल्लाहदिया खाँ) साहब ने बन्दिशें भी की हैं, जिनमें उनका

---

१. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त १९५६ ई०, पृ० १२४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उपनाम 'अहमद' है।

भैया गनपतराव

ये ग्वालियर के राजकुमार थे, प्रसिद्ध कलासाधिका चन्द्रभागा के गर्भ से इनका जन्म हुआ था और ये रामपुर के प्रसिद्ध साहबज़ादा सआदत अली ख़ाँ (छम्मन साहब) के मौसेरे भाई थे। चन्द्रभागा के रूप और गुण की प्रशंसा मुहम्मद करम इमाम ने भली-भाँति की है।[1]

भैया गनपतराव सादिक़ अली ख़ाँ के शिष्य थे।[2] पारिवारिक कारणों से इन्होंने सदा के लिए ग्वालियर छोड़ दिया।

श्री दिलीपचन्द्र वेदी के शब्दों में "भैया गनपतराव ने ठुमरी गाने में ऐसी तराश पैदा की कि समस्त गायक उनका अनुकरण करने लगे। भैया गनपतराव को ध्रुवपद, ख़याल, टप्पा इत्यादि की शिक्षा थी। ये अत्यन्त रसिक और रंगीन प्रकृति के थे। इनके हारमोनियम-वादन पर बीनकार, सितार-वादक और सारंगी-वादक भी चकित हो जाते थे। इन्होंने भावों की अभिव्यक्ति की ओर गायकों का ध्यान पुनः आकृष्ट किया। जिस प्रकार 'सदारंग' की प्रतिभा ने ख़याल-गान को प्रभावित किया, उसी प्रकार भैया साहब के चिन्तन ने ठुमरी को लोकप्रिय किया।"[3]

भैया साहब हारमोनियम में ठुमरी, दादरा बजाते थे। उनके हारमोनियम में लय का रखाव विलक्षण था, मुरकियाँ और हरकतें विचित्र थीं। बढ़त के लिए वे विचित्र स्थान ढूँढ़ लेते थे, क्योंकि वे षड्ज-चालन के सम्राट थे और द्रुत लय में षड्ज-चालन हारमोनियम में ही सम्भव है। इस दृष्टि से जब कोई नया रास्ता भैया साहब निकालकर गाते, तब सभी मुँह ताकते रह जाते थे। इस कार्य के लिए दृष्टि चाहिए।

काफ़ी के ऋषभ, विलावल के गान्धार, आसावरी के पंचम, खमाज के धैवत, कल्याण के निषाद इत्यादि को भैरवी का षड्ज मानकर जब वे बढ़त करते, तब लोग मन्त्र-मुग्ध हो जाते थे। इसी तरह से वे अपने तिलंग, खमाज और पीलू को भी रंगीन बनाते थे। ये सबकुछ षड्ज-चालन का चमत्कार है, जो वही कर सकता है, जिसे अनेक पर्दों से हारमोनियम बजाने पर अधिकार हो।

इनके शिष्यों में गयावाले गफ़ूर ख़ाँ, जोधपुरवाले बशीर ख़ाँ, ग्वालियर-वाले जंगी, लखनऊवाले सज्जाद हुसेन, मीर इरशाद अली, गौहर जान, आगरे-

---

१. मअदनुल्-उल्-मूसिक़ी, पृ० ५१
२. 'आजकल' (उर्दू), पृ० ७१; संगीतज्ञों के संस्मरण, पृ० ७१
३. वही, पृ० ३८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वाली मलका जान और कलकत्तेवाली जद्दनबाई प्रसिद्ध हैं। कलकत्ते के बाबू श्यामलाल भी इनके शिष्य थे।[1]

प्रसिद्ध ठुमरी-गायक मौजुद्दीन खाँ इनके गुरुबन्धु[2] और शिष्य[3] थे।

बनारस की बड़ी मोतीबाई इन्हीं मौजुद्दीन खाँ की प्रसिद्ध शिष्या हैं। मोती बाई के कारण ही बनारस में बोल-बनाव की ठुमरी का नया युग आया। बनारस में ठुमरी पहले भी थी, परन्तु भैया गनपतराव की शैली ने मोतीबाई तथा अन्य गायिकाओं को नयी दिशा दी।

भैया गनपतराव अत्यन्त सुन्दर गाते थे। भैया साहब और उनके शिष्य मौजुद्दीन खाँ ने अमृतसर के रसिक श्रोताओं को रस-मग्न कर दिया था।[4]

भैया गनपतराव वर्षों रामपुर रहे। नवाब हामिद अली खाँ उनका अत्यन्त आदर करते और उन्हें भाई जैसा समझते थे। छप्पन साहब की पत्नी अख़्तर जान भी भैया साहब की शिष्या थीं और उन जैसा ही हारमोनियम बजाती थीं।

१९१५ ई० में जब भैया गनपतराव का स्वर्गवास हुआ, तब ये जोधपुर में थे।[5]

ज़ाकिरुद्दीन खाँ और अल्लाहबन्दे खाँ

ये दोनों परस्पर सहोदर थे। इनके पिता मुहम्मद जान खाँ प्रसिद्ध बैराम खाँ के भतीजे और हैदर खाँ के पुत्र थे। इन दोनों ने होरी और ध्रुवपद की शिक्षा बैराम खाँ तथा अन्य पूर्वजों से ली। तत्पश्चात् आलाप की विशिष्ट शिक्षा लेने के लिए बैराम खाँ ने इन्हें तानसेन-परम्परा के गुणी आलमसेन का शिष्य करा दिया।[6]

जवान होने पर इन दोनों भाइयों की ख्याति समस्त भारत में हुई। ये लोग आलाप के सम्राट् कहलाते थे। इन लोगों का ध्यान कण्ठ के माधुर्य, राग के सौष्ठव और उसके प्रभाव की ओर था। पखावजियों के साथ भिड़न्त इन्हें पसन्द न थी, ये लोग रस में डूबे हुए थे।

इन दोनों भाइयों का सम्मान भारत की अनेक रियासतों में हुआ, परन्तु उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह के स्नेह ने इनको उदयपुर-दरबार में रहने

---

१. संगीतज्ञों के संस्मरण, पृ० ७२
२. वही
३. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त १९५६, पृ० ३८
४. वही, पृ० ३६
५. संगीतज्ञों के संस्मरण, पृ० १५८
६. वही, पृ० १६३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के लिए विवश कर दिया।

सन् १९१५ ई० में बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड़ ने इन लोगों को बड़ौदा बुलाया था। पण्डित देवल और मिस्टर क्लेमेण्ट उस कॉन्फ्रेन्स में एक हारमोनियम तैयार करके लाये थे, जिसमें प्रत्येक 'स्थान' (मन्द्र, मध्य और तार) में चौबीस-चौबीस ध्वनियाँ निकल सकती थीं, परन्तु अल्लाहबन्दे खाँ और ज़ाकिरुद्दीन खाँ ने उस हारमोनियम को अनुपयोगी सिद्ध कर दिया।

भातखण्डेजी द्वारा आयोजित लखनऊ के अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन (१९२५ ई०) में ये दोनों भी बुलाये गये। इन्हें उत्तर प्रदेश के तत्कालीन गवर्नर मिस्टर मैरिस[1] ने स्वर्ण-पदक देकर सम्मानित किया।

यद्यपि भातखण्डेजी ने अपने द्वारा संयोजित प्रत्येक अखिल भारतीय संगीत-सम्मेलन में इन दोनों भाइयों को निमन्त्रित किया और ये लोग उनमें सम्मिलित और सम्मानित भी हुए, तथापि भातखण्डेजी ने श्री रातमजनकर को फ़ैयाज़ खाँ का शिष्य कराया, क्योंकि भातखण्डेजी की अपनी रुचि खयाल की ओर अधिक थी। भातखण्डेजी की जन्म-भूमि महाराष्ट्र थी। रागों के शुद्ध रूप की प्राप्ति के लिए उन्होंने रामपुर-दरबार की शिष्यता अंगीकृत की और ख़याल-गायकी के रहस्यों को प्राप्त करने के लिए वे स्वयं तो आगरा-घराने के शिष्य न हुए, उन्होंने इस कार्य के लिए अपने पट्टशिष्य रातनजनकरजी को चुना। भातखण्डेजी के सामीप्य में यदि ज़ाकिरुद्दीन खाँ और अल्लाहबन्दे खाँ होते, तो इतिहास कुछ और होता।

इनायत खाँ (ध्रुवपद-गायक)

ये बैराम खाँ के पौत्र और सआदत अली खाँ (सद्दू खाँ) के पुत्र थे। अनेक दृष्टियों से बैराम खाँ का उत्तराधिकारी इनायत खाँ को ही कहा जा सकता है। ये अत्यन्त विद्वान्, ध्रुवपद-रचयिता और गायक थे। इनकी अनेक रचनाएँ स्व० नसीरुद्दीन खाँ और उनके अन्य भाइयों को याद थीं।

उन्नीसवीं शती ई० के अन्त और बीसवीं शती ई० के आरम्भ में ये रामपुर-नरेश नवाब हामिद अली खाँ के दरबार में थे और उनके 'गुरु' थे। वहाँ इनका अत्यधिक सम्मान था। जब हामिद अली खाँ के चचा हैदर अली खाँ ने हामिद अली खाँ को वज़ीर खाँ का शिष्य करा दिया, तब इनायत खाँ ने इस

---

१. लखनऊ में जब राय राजेश्वरबली के प्रयत्नों से संगीत-विद्यालय की स्थापना हुई, तब इन्हीं 'मैरिस' के नाम पर कॉलेज का नाम 'मैरिस-कॉलेज' रखा गया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बात को अपनी विद्या का अपमान समझकर रामपुर छोड़ दिया[1] और ये जयपुर लौट आये। जयपुर-दरबार में इन्हें इनका आनुवंशिक स्थान पुनः प्राप्त हो गया।

इनके सुपुत्र रियाजुद्दीन खाँ हुए, जिन्हें आनुवंशिक शिक्षा मिली तो, परन्तु हारमोनियम पर भी ये हाथ डालने लगे, जो उस समय भारतवर्ष में नया-नया आया था।[2] स्पष्ट है कि इनके इस खेल से इनके अन्य कुटुम्बियों को कैसा लगा होगा। अस्तु, इन्हीं रियाजुद्दीन खाँ ने अपने भानजे नसीर अमीनुद्दीन और नसीर मुईनुद्दीन को तैयार किया, जिन्होंने अखिल भारतीय प्रसिद्धि प्राप्त की।

रियाजुद्दीन खाँ का हारमोनियम-प्रेम उनकी बाल-सुलभ उत्सुकता का परिणाम मात्र था। न तो वे हारमोनियम को पूर्ण वाद्य समझते थे और न उसके साथ गाते थे।

फ़ैयाज़ खाँ

आगरा-घराने के गायक स्वयं को हाजी सुजान खाँ का वंशज कहते हैं। ये सुजान खाँ, 'सरसरंग' के पितामह और 'श्यामरंग' के पिता थे। घग्घे खुदा-बख्श 'सरसरंग' के पुत्र थे। आगरा-घराने में खयाल-गायकी घग्घे खुदाबख्श के युग से ही आरम्भ हुई। खुदाबख्श आगरे से बाहर जाकर नत्थन पीरबख्श के शिष्य हो गये। ये खुदाबख्श जयपुर-दरबार में महाराज रामसिंह के मुलाज़िम थे। रामपुर के नवाब कल्बे अली खाँ को इन्होंने अपने गाने से सन्तुष्ट किया, उस समय इनके पुत्र ग़ुलाम अब्बास खाँ भी इनके साथ रामपुर गये थे। खुदाबख्श का देहान्त १८५०-६० ई० के मध्य में हुआ।[3]

खुदाबख्श के तीन पुत्र शेर खाँ, ग़ुलाम अब्बास खाँ और कल्लन खाँ हुए।

शेर खाँ मैसूर में नौकर हुए। इन्हीं के कारण कर्नाटक और महाराष्ट्र आगरे की गायकी से परिचित हुए। इनके पुत्र नत्थन खाँ थे, जिन्होंने आगरे की गायकी में 'बोल-तान' को सम्मिलित किया।[4] नत्थन खाँ को बड़े मुहम्मद खाँ क़व्वालबच्चे और उनके पुत्र मुबारक अली खाँ के सम्पर्क का सौभाग्य भी भलीभाँति जयपुर में मिला। इन्होंने मैसूर-दरबार में आश्रय लिया और ये १९०१ ई० स्वर्गवासी हुए। नत्थन खाँ के बड़े पुत्र मुहम्मद खाँ अलम और छोटे पुत्र अब्दुल्ला खाँ हुए। अब्दुल्ला खाँ १९२० ई० में आगरा में ही स्वर्ग-

---

१. रामपुर-दरबार में 'गुनीजनखाने' के अफसर सैयद इब्ने अली (इब्बन मियाँ) से यह तथ्य लेखक को ज्ञात हुआ।
२. इस जानकारी का आधार श्री रहीमुद्दीन खाँ तथा सैयद इब्ने अली हैं।
३. संगीतज्ञों के संस्मरण, पृ० १०३
४. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त १९५६, पृ० ६०-६१

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वासी हुए।[1]

खुदाबख्श के दूसरे पुत्र ग़ुलाम अब्बास खाँ थे। कोई पुत्र न होने के कारण इन्होंने अपनी बड़ी लड़की के अनाथ पुत्र को गोद ले लिया और संगीत की शिक्षा दी। यह बालक सिकन्दराबाद के मुहम्मद अली खाँ का पौत्र और सफ़दर हुसेन खाँ का पुत्र था। ये लोग रमज़ान खाँ रंगीले की परम्परा के थे।

रंगीले-घराने में उत्पन्न और आगरा-घराने के ग़ुलाम अब्बास खाँ द्वारा पोषित और प्रशिक्षित यह पुत्र ही भविष्य में उस्ताद फ़ैयाज़ खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

फ़ैयाज़ खाँ को आलाप, ध्रुवपद, धमार, स्थायी और खयाल इत्यादि की शिक्षा मिली। ये ठुमरी, दादरा, भजन और ग़ज़ल भी अधिकारपूर्वक गाते थे। सोज़ख्वानी पर भी इन्हें अच्छा अधिकार था।

फ़ैयाज़ खाँ एक सुदर्शन व्यक्ति थे और इनका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। इन्हें प्रकृति ने घन, मन्द्र और गम्भीर कण्ठ दिया था। इनके कण्ठ की ध्वनि शहद की धार की भाँति, प्रगाढ़, स्निग्ध और मधुर थी। इन्हें यह ध्वनि प्रकृति की ओर से मिली थी, जिसकी नक़ल करने के प्रयत्न में अनेक व्यक्तियों ने अपने प्रकृतिदत्त कण्ठ को विकृत कर लिया।

फ़ैयाज़ खाँ भाषा, अर्थ, भाव, स्वर, लय सभी का आनन्द लेकर गाते थे, इसीलिए इनके गाने पर सभी रीझते थे। गाते समय ये स्वयं मूर्त भाव बन जाते थे। ये स्वरों से क्रीड़ा करते थे, लय के झूले में स्वयं झूलते और श्रोताओं को झुलाते थे।

फ़ैयाज़ मंच पर आते ही श्रोताओं को आकृष्ट कर लेते थे। रंगीले-घराने में उत्पन्न और आगरा-घराने में प्रशिक्षित होते हुए भी फ़ैयाज़ खाँ का व्यक्तित्व स्वतन्त्र था। वे श्रोताओं के लिए गाते थे, उन पर अपनी उस्तादी लादने की चेष्टा नहीं करते थे। संगीत से सर्वथा अपरिचित विद्यार्थी भी उनके भक्त थे। फ़ैयाज़ खाँ स्वयं एक 'घराना' थे। ईश्वर की ओर से आये थे, उसी की ओर चले गये। उनका ढंग उनके लिए ही था, उन्हीं के साथ ही गया।

ब्रजभाषा आगरा और अतरौली के गायकों की मातृभाषा है। इसीलिए इस ओर के गायकों का उच्चारण शुद्ध रहता है और ये लोग प्रायः अर्थ समझकर गाते हैं। इन लोगों की बन्दिशें भी भाषा की दृष्टि से शुद्ध होती हैं, परन्तु विभिन्न प्रदेशों में फैले हुए इस घराने के विभिन्न शिष्य भाषा, अर्थ और उच्चारण की ओर कितना ध्यान रखते हैं, यह और बात है।

मैसूर राज्य में इन्हें दशहरे के उत्सव पर बुलाया गया। इनका गाना

---

१. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त १९५६, पृ० ६१

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पसन्द किया गया। इन्हें पदक और वस्त्र मिले। उसी समय ये हैदराबाद गये, इन्होंने निज़ाम को प्रसन्न किया और हीरे की अँगूठी पुरस्कार में प्राप्त की। १९१५ ई० में इन्होंने बड़ौदा-दरवार का आश्रय लिया। दो-चार वर्ष बाद ही वहाँ इनका वेतन साढ़े तीन सौ रुपये मासिक हो गया।[1]

१९२० ई० में इन्दौर के महाराज तुकोजीराव होलकर ने इन्हें होली के अवसर पर सुना। उस समय इन्हें महाराज ने दस हज़ार रुपये, हीरे का एक कण्ठा और एक अँगूठी दी।[2]

१९२५ ई० में यह पुनः मैसूर-दरबार में बुलाये गये। उस समय इन्हें 'आफ़ताबे मूसिक़ी' उपाधि मिली और मैसूर रियासत का राजचिह्न हीरे-जवाहरात से जड़ा हुआ कंगन पहनाया गया। दशहरे और वर्षगाँठ के अवसर पर ये सदैव मैसूर जाते रहे।[3]

इसी वर्ष ये बड़ौदा-दरवार के प्रतिनिधि गायक के रूप में लखनऊ में आयोजित 'ऑल इण्डिया म्युजिक कॉन्फ्रेंस' में सम्मिलित हुए। इन्हें वहाँ 'संगीत-चूड़ामणि' उपाधि और स्वर्णपदक दिये गये। जोधपुर, जयपुर, पालनपुर, ईडर, चम्पानगर, बनैली, महिषादल इत्यादि रियासतों में भी ये अत्यन्त सम्मानित हुए।[4]

स्व० पं० भातखण्डे द्वारा आयोजित पाँचों संगीत-सम्मेलनों में ये निमन्त्रित किये गये। प्रयाग की एक कॉन्फ्रेंस में इन्हें 'संगीतभास्कर' और 'संगीतसरोज' उपाधियों से सम्मानित किया गया।[5]

फ़ैयाज़ खाँ साहब के शिष्यों में पं० रातनजनकर, दिलीपचन्द्र वेदी, अताहुसेन खाँ, वन्दे अली खाँ, जयपुरवाले गुलाम क़ादिर तथा लताफ़त खाँ हैं। स्व० विलायत हुसेन खाँ ने भी फ़ैयाज़ खाँ से बहुत-कुछ सीखा।

फ़ैयाज़ खाँ एक युगपुरुष थे। उनकी 'जयजयवन्ती' पर अनेक गुणियों को आपत्ति थी, परन्तु जनता की दृष्टि में 'मोरे मन्दिर अबलौं नहिं आये' ही जयजयवन्ती थी।

स्व० फिल्मी गायक के० एल० सहगल फ़ैयाज खाँ की कण्ठध्वनि पर मुग्ध थे और स्वयं को फ़ैयाज़ खाँ का शिष्य कहते थे।

---

१. संगीतज्ञों के संस्मरण, पृ० ११५
२. वही, पृ० ११६
३. वही
४. वही, पृ० ११७
५. वही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भास्करराव बखले

बीसवी शती ईसवी के पूर्वार्द्ध में जो कुछ गिने-चुने ख्याल-गायक भारतवर्ष ने उत्पन्न किये, उनमें स्व० भास्कररावजी भी एक यशस्वी गायक हैं। महाराष्ट्र के गायकों में केवल यही एक ऐसे गायक हुए हैं, जिन्होंने अपने युग के सभी प्रमुख गायकों से प्रशंसा प्राप्त की।

भास्कररावजी का जन्म १८६७ ई० में हुआ और स्वर्गवास १९२२ ई० में।

वड़ौदा राज्य के कठूर नामक ग्राम में भास्कररावजी का जन्म हुआ।

विलम्बित गायकी के लिए प्रसिद्ध बड़ौदा के फ़ैज मुहम्मद खाँ, फिरत और बोलतान के लिए प्रसिद्ध आगरा के नत्थन खाँ, आलाप और तराने के लिए विख्यात बन्दे अली खाँ बीनकार, कठिन रागों में भी फिरत के लिए प्रसिद्ध अल्ला दिया खाँ, और हद्दू खाँ के सुपुत्र मधुर गायक रहमत खाँ ऐसे गुणी थे, जिनसे भास्कररावजी ने शिक्षा ली।[1] इसके परिणामस्वरूप ऐसे भास्करराव का निर्माण हुआ, जिनकी कला में राग की शुद्धता, उपयुक्त विलम्बित विस्तार, लय के झूले, कण्ठ की मधुरता, बोलतानें और फिरत सभी कुछ थे।

यदि भास्कररावजी किसी संगीतजीवी परिवार में उत्पन्न हुए होते, तो उनकी कला में इतनी विविधता, मधुरता और सुन्दरता न होती, क्योंकि खान्दानी कलाकार दूसरे घरानों के गुणियों से सीखना पुण्य-कार्य नहीं समझते, दूसरे घरानों की गायकी चुराने या उड़ाने का प्रयत्न भले ही करें।

स्व० अल्लाहबन्दे खाँ जैसे आलाप-सम्राट्, रहमत खाँ जैसे मधुर खयालिये, तलवण्डीवाले मौलाबख्श, भाई मोती और उनके उस्ताद मियाँ मेहरबान, मोती रबाबी और प्यारे खाँ जैसे लोग भास्कररावजी को आँखों पर बिठाते थे।

आजकल गवैया और उस्ताद बनना अत्यन्त सरल है। बन्दिश अधूरी, अन्तरा गायब, लय के स्थान पर प्रलय, साहित्य का लोप, गुरु का अभाव, ये सब बातें होने पर भी केवल स्वच्छन्द तानें मारनेवाले लोग भी आज बड़े उस्ताद बन जाते हैं, परन्तु भास्करराव बखले के युग में समझा जाता था कि 'स्थायी' किसी बन्दिश की आधारशिला है, उसका सौन्दर्य गाने में स्पष्टतया दृष्टिगोचर होना चाहिए। उस युग में यह देखा जाता था कि 'स्थायी' की सीमा से आगे अन्तरे की सीमा में गायक ने प्रवेश कैसे किया है। 'स्थायी' का अपना एक कलात्मक व्यक्तित्व होता है और उसके खण्ड परस्पर एक विशिष्ट ढंग से सम्बद्ध या गुँथे होते हैं,[2] उनके निर्वाह की ओर उस युग में ध्यान दिया जाता था।

भास्कररावजी सदैव यह ध्यान रखते थे कि विलम्बित स्थायी के शान्तिमय

---

१. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त १९५६ ई०, पृ० ११३

२. वही, ले० एस० के० सक्सेना, पृ० ११४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वातावरण में तानों की भरमार से उत्पात न हो जाये, तानों का सम्बन्ध उस स्वर के साथ रखते थे, जिसका उस स्थायी में विशेष महत्त्व होता था।

आगरे के स्व० विलायत हुसेन खाँ ने भास्कररावजी से मालकोस, अडाना, पूर्वी, काफी और एक कर्नाटक राग सीखे थे।[1]

भास्कररावजी ने ही महाराष्ट्र में ख़याल की प्रामाणिक गायकी का प्रचार किया। उनके शिष्यों में स्व० ताराबाई शिरोडकर, पूना के मास्टर कृष्णराव, श्री दिलीपचन्द्र वेदी, गोविन्दराव टेम्बे, दत्तू बुआ गलकूटकर, बापूराव केतकर, बालगन्धर्व, गनपत बुआ पुरोहित और बी० आर० काले ने प्रसिद्धि प्राप्त की। इनमें श्री दिलीपचन्द्र ने भारतवर्ष-भर में गाकर गुणियों को सन्तुष्ट किया।

१९१५ ई० से १९२१ ई० तक जालन्धर और अमृतसर में भास्करराव प्रतिवर्ष बुलाये जाते थे।

पंजाब के प्रसिद्ध गायक मियाँ अलीबख्श ने कहा था कि भारतवर्ष-भर में केवल भास्करराव बखले ही ऐसे गायक हैं जिनमें ख़याल गायकी के चारों अंग हैं, आजकल कोई ख़ान्दानी गवैया भी इन जैसा नहीं।[2]

श्री दिलीपचन्द्र वेदी १९१९ ई० में भास्कररावजी के शिष्य हुए, उस समय जालन्धर में पाँच हज़ार व्यक्ति विद्यमान थे।

भास्कररावजी के कोई सन्तान न थी, पूना में इन्होंने एक विद्यालय 'भारत-गायन-समाज' की स्थापना की। ये अत्यन्त विनम्र और सरल थे।

मांस-भक्षण से ही यदि 'गायक' बनते होते, तो प्रत्येक क़साई गायक हो जाता, यदि संगीतजीवी जाति में उत्पन्न होने से ही कलाकार बनना सम्भव होता, तो संगीतजीवी जाति का प्रत्येक व्यक्ति 'तानसेन' होता।

भास्करराव बखले के चरित्र से उन सबको शिक्षा लेनी चाहिए, जो अच्छे कलाकार बनकर यश अर्जित करना चाहते हैं। भास्कररावजी को जहाँ जो विशेषता दिखायी दी वहाँ से उन्होंने निस्संकोच ली, साधना की और यश अर्जित किया।

पंजाब के कई ख़ान्दानी गायकों ने अपने होनहार बच्चों को पण्डित भास्कर-रावजी की सेवा में भेजना चाहा, परन्तु श्री दिलीपचन्द्र वेदी के अनुसार कुछ कारण ऐसे थे, जिनसे इन लोगों को सफलता न मिली।[3]

---

१. संगीतज्ञों के संस्मरण, पृ० १३३
२. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त १९५६ ई०, पृ० ३६-३७
३. वही, पृ० ३७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुश्ताक़ हुसेन खाँ

मुश्ताक़ हुसेन खाँ का जन्म जिला बदायूँ (उत्तर प्रदेश) के सहसवान नामक स्थान में १८७८ ई० में हुआ[1] और १३ अगस्त, १९६४ ई० को वे दिल्ली में स्वर्गवासी हुए।

लेखकद्वय के साथ इनका घनिष्ठ परिचय था। मुश्ताक़ हुसेन खाँ के अनुसार उनके ग्यारह गुरु थे। उन्होंने अपने सगे पिता आशिक़ हुसेन खाँ, सौतेले पिता और चचा कल्लन खाँ, अपने मामा महबूब खाँ 'दरस', पुत्तन खाँ, हद्दू खाँ के शिष्य और अपने फुफेरे भाई सहसवान-निवासी इमदाद हुसेन खाँ, सहसवानवाले अपने ससुर इनायत हुसेन खाँ, हैदर खाँ, मुहम्मद खाँ, उस्ताद वज़ीर खाँ, तानरस खाँ के वंशज और अपने नाना ग़फ़ूर खाँ तथा ग्वालियर के भैया गनपतराव से शिक्षा प्राप्त की।

फ़ैयाज खाँ महबूब खाँ 'दरस' के दामाद थे और मुश्ताक़ हुसेन खाँ भानजे।

मुश्ताक़ हुसेन खाँ की आरम्भिक शिक्षा अपने घर हुई। चौदह वर्ष की आयु तक ये महबूब खाँ और पुत्तन खाँ से सीखते रहे। इनायत हुसेन खाँ साहब से इन्होंने सत्रह वर्ष सीखा। १९०९ ई० में ये रामपुर आये और वज़ीर खाँ के शिष्य हुए। भैया गनपतराव का सत्संग इन्हें रामपुर में प्राप्त हुआ। समय-समय पर ये अपने अन्य गुरुओं से शिक्षा प्राप्त करते रहते थे।

मुश्ताक़ हुसेन खाँ को रामपुर-नरेश नवाब रज़ा अली खाँ (राज्यारोहण-वर्ष १९३० ई०) के दरबार में विशिष्ट सम्मान प्राप्त हुआ। १९५६ ई० में वे रामपुर-दरबार से भारतीय कला-केन्द्र दिल्ली में चले आये। १९५१ ई० में उन्हें राष्ट्रपति-पुरस्कार मिला और १९५८ ई० में वे 'पद्मभूषण' उपाधि से सम्मानित किये गये।

यद्यपि मुश्ताक़ हुसेन खाँ ने चार विवाह किये, तथापि आहार-विहार में वे अत्यन्त संयमी थे। कोई भी व्यसन उनमें न था, वे नमाज़ी मुसलमान थे। वे अत्यन्त अल्प आहार करते और सदा ऐसा जल पीते जो न तो ठण्डा होता और न गर्म। कभी किसी ने उनका गला ख़राब होते हुए न देखा।

मुश्ताक़ हुसेन खाँ ने लम्बी साँस का अभ्यास बहुत किया था और उन्हें इस विषय में अनुपम अधिकार था। उनकी आवाज़ बड़ी लम्बी और लोचदार थी। वे सपाट तानों के बादशाह थे। उनके पास बन्दिशों का अनुपम भण्डार था। वे कहीं से भी गुण लेने के पक्ष में थे और हमेशा खोज में रहते थे। शराबियों से वे दूर रहते थे और बरेली के अज़ीज़ मियाँ उनके 'पीर' थे, जिनमें

---

१. होमेज टू मुश्ताक़ हुसेन खाँ, १९६७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उन्हें बड़ी श्रद्धा थी।

मुश्ताक़ हुसेन खाँ ने अन्य बन्दिशों के अतिरिक्त कई 'रागसागर' बनाये।

मुश्ताक़ हुसेन खाँ गाने में प्रभाव के भक्त थे। ख़याल, ठुमरी, दादरा, टप्पा, भजन, ग़ज़ल सभी कुछ वे गाते थे, क़व्वाली करने में भी उन्हें कोई आपत्ति न थी। वे कहते थे कि सौ उस्तादों का शिष्य बनने पर एक 'उस्ताद' बनता है। उनकी दृष्टि में ध्रुवपद, ख़याल, ठुमरी, दादरा, ग़ज़ल, भजन चाहे कुछ भी गाया जाये, वह श्रोताओं के रंजन के लिए होना चाहिए।

मुश्ताक़ हुसेन खाँ की सन्तति-परम्परा विस्तृत है, उनके ज्येष्ठ पुत्र इश्तियाक़ हुसेन खाँ ही उनके उत्तराधिकारी पुत्र हैं।

मुश्ताक़ हुसेन खाँ स्वरों के लगाव से श्रोताओं को रोमांचित कर देते थे। उन्हें स्वरों से बड़ा प्यार था। अपने पूर्वजों की याद करके प्रायः रोने लगते थे, अत्यन्त सहृदय व्यक्ति थे।

जब मुश्ताक़ हुसेन खाँ की कला का मध्याह्न-काल था, तब नवाब रज़ा अली खाँ ने इस आशंका से मुश्ताक़ हुसेन खाँ को रामपुर से निकलने न दिया कि उनका प्यारा गवैया कहीं छिन न जाये। जब उन्होंने रामपुर छोड़ा, तब उनकी आयु अड़सठ वर्ष थी।

भारतीय कला-केन्द्र में वे आठ वर्ष रहे। यहाँ उन्होंने अनेक विद्यार्थियों को संगीत की शिक्षा दी। उनकी शिष्याओं में श्रीमती सुलोचना यजुर्वेदी (पूर्वाश्रयीय कालेकर) ने गायिका के रूप में अखिल भारतीय ख्याति अर्जित की है, नेपाल के स्वर्गीय सम्राट् और भूतपूर्व राजमहिषी भी जिनके गान से अत्यन्त प्रभावित हुईं।

अलाउद्दीन खाँ

अलाउद्दीन खाँ का जन्म त्रिपुरा के मुलुक नामक ग्राम में १८८१ ई० में हुआ।[1] वे एक किसान-वंश की विभूति थे। १८९१ ई० में वे नूली गोपाल के पास रहकर सीखते रहे। इनके पास कुछ दिनों सीखने के पश्चात् ये कलकत्ता के हाबू दत्त के पास पहुँचे और उनके पास १९११ ई० तक रहे।[2] हाबू दत्त वज़ीर खाँ के शिष्य थे। १९११ ई० में ही अलाउद्दीन खाँ मुक्तागाछा गये और उन्होंने वहाँ के जमींदार जगतकिशोर आचार्य के दरबार में रामपुरवासी अहमद अली खाँ का सरोद सुना। अलाउद्दीन ने विधिवत् शिष्य होकर अहमद

---

१. दि म्युज़ीशियन्स ऑफ़ इण्डिया, ले० हरेन्द्रकिशोर राय चौधरी, १९२९, 'संगीत', दिसम्बर १९७२, पृ० ७-८

२. 'संगीत', दिसम्बर १९७२, पृ० ९, ले० जोतिन भट्टाचार्य

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अली खाँ से मुक्तागाछा में ही सरोद सीखना आरम्भ कर दिया।[1] १९१५ ई० में ये अहमद अली खाँ के साथ रामपुर आये।[2] अहमद अली खाँ ने अलाउद्दीन खाँ को अपने पिता आविद अली खाँ को सौंप दिया और वे स्वयं मुक्तागाछा लौट आये। अलाउद्दीन खाँ को रामपुर बैण्ड में नौकरी मिल गयी और वे सादेकारों की मस्जिद के पास राजद्वारा मुहल्ला में एक मकान लेकर रहने लगे। रामपुर के सूत्रों के अनुसार उस समय उन्हें मुक्तागाछा दरबार से पच्चीस रुपये मासिक वृत्ति मिलती थी।[3] अलाउद्दीन खाँ को रामपुर के सभी गुणियों ने प्रेमपूर्वक शिक्षा दी, क्योंकि वे कुशाग्रमति, विनीत और सेवावृत्ति-प्रधान स्वभाव के थे। उस समय लखनऊ-निवासी दूल्हें खाँ और रज़ा हुसेन खाँ रामपुर-बैण्ड में थे।

१९१९ ई० में अलाउद्दीन खाँ मैहर चले गये।[4] वहाँ उन्होंने मैहर बैण्ड की स्थापना की। स्व० भातखण्डे द्वारा लखनऊ में आयोजित संगीत-सम्मेलन (१९२४ ई०) में इस बैंड की प्रशंसा हुई।[5] १९३५ ई० में अलाउद्दीन खाँ उदयशंकर के दल के साथ विदेश-यात्रा पर गये।[6] एक वर्ष के पश्चात् स्वदेश लौट आये।[7]

जुलाई, १८३८ ई० में अपने भाई उदयशंकर के साथ रविशंकर मैहर आये और अलाउद्दीन खाँ से शिक्षा लेने लगे। उदयशंकर की प्रार्थना से रविशंकरजी को गुरु-पुत्री अन्नपूर्णा की भी प्राप्ति हुई[8] और विद्या भी मिली।

सन् १९५२ ई० में अलाउद्दीन खाँ को एकेडमी अवार्ड मिला, सन् १९५४ ई० में वे 'फ़ैलो' हुए, १९५८ ई० में उन्हें 'पद्मभूषण' और सन् १९०१ ई० में 'पद्मविभूषण' उपाधि से सम्मानित किया गया।

६ सितम्बर, १९७२ ई० को मैहर में अलाउद्दीन खाँ का स्वर्गवास हो

---

१. 'संगीत', दिसम्बर १९७२ ई०, पृ० ४०
२. वही, पृ० ७
३. मुक्तागाछा के जमींदार की प्रेरणा से ही अलाउद्दीन रामपुर आये थे, स्व० पं० भोलानाथ भट्ट और स्व० मुश्ताक़ हुसेन खाँ का कथन था कि मुक्तागाछा के महाराज पच्चीस रुपये मासिक छात्रवृत्ति अलाउद्दीन खाँ को देते थे।
४. 'संगीत', दिसम्बर १९७२, पृ० ७
५. वही, पृ० ५४
६. वही
७. वही, पृ० ५७
८. वही, पृ० ९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गया।

अलाउद्दीन खाँ को विश्वव्यापी प्रसिद्धि पं० रविशंकर जैसे कुशल, नीतिज्ञ, व्यवहारपटु और मधुरभाषी प्रतापी शिष्य के द्वारा मिली।

स्व० प्रो० डी० पी० मुकर्जी के अनुसार स्व० अलाउद्दीन खाँ की दृष्टि में उनकी पुत्री सौ० अन्नपूर्णा कला की दृष्टि से उनकी सर्वश्रेष्ठ उत्तराधिकारिणी हैं।[1] 'संगीत' के सम्पादक की दृष्टि में भी आज सम्पूर्ण जगत् में अन्नपूर्णा जैसा दूसरा कलाकार नहीं।[2] वे प्रचार और प्रसार से सर्वथा दूर रहती हैं। कला की दृष्टि से अलाउद्दीन खाँ के दूसरे उत्तराधिकारी अली अकबर खाँ हैं।

अपनी आयु के अन्तिम वर्षों में अलाउद्दीन खाँ स्मृति-भ्रम से ग्रस्त हो गये थे। इण्टरव्यू लेनेवाले विभिन्न सज्जनों को अपनी विभिन्न जन्म-तिथियाँ बताया करते थे।[3] मृत्यु से लगभग तीन वर्ष पूर्व उन्होंने प्रायः एक दर्जन संवाददाताओं को अपनी आयु पाँच सौ वर्ष बतायी।[4]

प्रसिद्ध बंगाली विद्वान् श्री विमलकान्त रायचौधरी ने विस्तृत गवेषणा के पश्चात् यह प्रमाणित कर दिया है कि अलाउद्दीन खाँ का जन्म-वर्ष १८८१ ई० है, परन्तु अलाउद्दीन खाँ के कुछ उत्साही भक्तों ने, किसी पूर्व घोषणा के बिना ही, केवल तीन दिन में अलाउद्दीन खाँ की जन्म-शताब्दी (१९६२ ई० में) मना डाली, जबकि उनकी आयु केवल इक्यासी वर्ष थी।[5]

बंगाली सज्जन अपनी श्रद्धा के लिए प्रसिद्ध हैं, उनकी दृष्टि में 'गुरु' का सम्मान सर्वाधिक होता है। श्रद्धा के अतिरेक में कुछ कल्पित और मनोरंजक आख्यानों की सृष्टि हो जाती है, जिनका तात्पर्य केवल गुरु के माहात्म्य का वर्णन होता है। शिष्यों में गुरु-भक्ति की भावना को दृढ़ करने, तथा तपस्या, त्याग, कष्टसहन इत्यादि की भावना को पल्लवित करने के लिए कुछ गुरु लोग भी अपने छात्र-जीवन के कल्पित, अर्द्ध-कल्पित अथवा अतिरंजित तथ्य सुना दिया करते हैं, फलतः माहात्म्यवर्द्धक उपाख्यान जन्म लेते हैं।

अस्तु, १९६२ ई० में मनायी गयी तथाकथित जन्म-शताब्दी की प्रतिकूल प्रक्रिया भी 'सुरच्छन्दा' (संगीत-विषयक बंगाली पत्रिका, अक्तूबर १९६२, सम्पादकीय) में हुई।[6]

---

१. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त १९५६, पृ० १३१
२. संगीत, दिसम्बर १९७२, सम्पादकीय, पृ० ४
३. वही, पृ० ५-६
४. वही, पृ० ८-९
५. वही, पृ० ८
६. वही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अलाउद्दीन खाँ के रामपुर-प्रवास के समय की अवधि केवल चार वर्ष है, क्योंकि अलाउद्दीन खाँ के प्राइवेट सेक्रेटरी श्री जोतिन भट्टाचार्य के अनुसार अलाउद्दीन खाँ १९१५ ई० में रामपुर पहुँचे और १९१९ ई० में मैहर पहुँच गये।[1] वहाँ वे विभिन्न गुणियों से लाभ उठाते रहे और बैण्ड में नौकरी भी करते रहे। आबिद अली खाँ ने उनका परिचय वज़ीर खाँ से भी करा दिया था। रामपुर का प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि रामपुर-बैण्ड में वज़ीर खाँ की स्वीकृति के बिना कोई नौकर नहीं हो सकता था, नवाब हामिद अली खाँ इस बैण्ड में स्वयं रुचि लेते थे।

यह सत्य है कि आबिद अली खाँ ने वज़ीर खाँ के साथ अलाउद्दीन खाँ का परिचय भी करा दिया था, अलाउद्दीन खाँ वज़ीर खाँ के द्वार पर खड़े भी रहते थे, परन्तु वज़ीर खाँ को इतना अवकाश न था कि वे किसी को शिक्षा देते। हाँ, रामपुर के साहबज़ादा सआदत अली खाँ (छम्मन साहब) से अलाउद्दीन खाँ को बहुत लाभ हुआ।

रामपुर-निवासियों की दृष्टि में अलाउद्दीन खाँ की शिक्षा का प्रमुख श्रेय अहमद अली खाँ, आबिद अली खाँ, छम्मन साहब तथा रामपुर के अन्य अनेक गुणियों को है। यह सत्य है कि अलाउद्दीन खाँ विधिवत् वज़ीर खाँ के शिष्य हुए थे, परन्तु सीखने का अवसर उन्हें अन्य गुणियों से ही मिला। वज़ीर खाँ की ओर से समुचित प्रोत्साहन मिला होता, तो अलाउद्दीन खाँ केवल चार वर्ष में ही रामपुर न छोड़ देते।

इस बहुप्रचारित कथा में कोई तथ्य नहीं है कि अलाउद्दीन खाँ ने रामपुर-नवाब का मोटर रोक लिया था। हामिद अली खाँ के प्रचण्ड और उग्र स्वभाव से अपरिचित व्यक्ति ही इस पर विश्वास कर सकते हैं।

तथ्य केवल इतना है कि आबिद अली खाँ ने अलाउद्दीन खाँ की सिफ़ारिश वज़ीर खाँ से की, वज़ीर खाँ ने अलाउद्दीन खाँ के गण्डा बाँधा और बैण्ड में नौकरी दे दी। इस तथ्य से अलाउद्दीन खाँ के महान् व्यक्तित्व में कोई कमी नहीं आती।

नवाब रज़ा अली खाँ (राज्यारोहण १९३० ई०) के युग में फ़ैयाज़ खाँ, बुन्दू खाँ, हाफ़िज़ अली खाँ और अलाउद्दीन खाँ रामपुर आये थे। इन पंक्तियों के लेखक को रामपुर के प्रसिद्ध पखावजी श्री अयोध्याप्रसादजी के साथ एकान्त में अलाउद्दीन खाँ से दिव्य अलैया-बिलावल सुनने का अवसर मिला था, जिसकी प्रशंसा के लिए लेखक के पास शब्द नहीं हैं।

---

१. 'संगीत', दिसम्बर १९७२ ई०, सम्पादकीय, पृ० ७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हाफ़िज़ अली खाँ

हाफ़िज़ अली खाँ के प्रपितामह गुलाम बन्दगी खाँ घोड़ों का व्यापार करते हुए भारत आये। रीवाँ-नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह ने गुलाम बन्दगी खाँ को प्रोत्साहन दिया। काबुली 'रबाब' को वर्तमान 'सरोद' का रूप देना इन गुलाम बन्दगी खाँ का ही कार्य है।[१]

गुलाम बन्दगी खाँ के पुत्र गुलाम अली खाँ को रीवाँ-नरेश विश्वनाथ सिंह ने स्वयं होरी, ध्रुवपद और बीन की शिक्षा दी, फलतः 'सरोद' का परिचय हिन्दुस्तानी संगीत की उदात्त परम्परा से हुआ। तत्पश्चात् रीवाँ-नरेश के प्रोत्साहन से गुलाम अली खाँ ने भारतवर्ष-भर में घूम-घूमकर यश अर्जित किया। अन्त में ये ग्वालियर-दरबार के आश्रय में रहे।[२]

गुलाम अली खाँ के चार पुत्र जुम्मा खाँ, हुसेन खाँ, मुराद अली खाँ और नन्हे खाँ हुए।

जुम्मा खाँ मक्का गये और फिर न लौटे।

हुसेन खाँ ग्वालियर-नरेश जीवाजीराव सिन्धिया के आश्रय में रहे। ये अच्छे सितारवादक थे।

मुराद खाँ अच्छे सरोदवादक थे। इन्होंने ही सरोद पर फौलाद की तबली चढ़ायी और फौलाद के ही तार चढ़ाये। बंगाल और बिहार में सरोद के प्रचार का श्रेय इन्हें ही है।

नन्हे खाँ ग्वालियर-नरेश महाराज माधवराव सिन्धिया के दरबार में रहे। हाफ़िज़ अली खाँ इन नन्हे खाँ के ही सुपुत्र थे।[३]

हाफ़िज़ अली खाँ की आरम्भिक शिक्षा पिता के ही श्रीचरणों में हुई। तत्पश्चात् ये होरी और ध्रुवपद की शिक्षा लेने के लिए मथुरा के गणेशीलाल चौबे की सेवा में उपस्थित हुए। पर्याप्त समय तक उनसे शिक्षा लेने के पश्चात् वे रामपुर पहुंचे।[४]

हाफ़िज़ अली खाँ एक गुणग्राही व्यक्ति थे, अतः उन्होंने रामपुर के एक मर्मज्ञ सारंगीवादक मुन्नन खाँ से भी पर्याप्त रूप में लाभ उठाया।[५] मुन्नन खाँ के सहयोग से ही उस्ताद वज़ीर खाँ के साथ इनका परिचय हुआ। साहबज़ादा सआदत अली खाँ (छम्मन साहब) और वज़ीर खाँ के सम्पर्क से इनकी दृष्टि में

---

१. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त १९५६, पृ० १२०
२. वही, पृ० १२०
३. वही
४. वही, पृ० १२१
५. संगीत-चिन्तामणि ई०, पृ० ५१८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निखार आया और इन्हें रागों के मर्म का ज्ञान हुआ। ये विधिवत् वज़ीर खाँ के शिष्य हो गये।[1] इन्हें सफल वादक बनाकर यश देने का श्रेय रामपुर-दरबार को ही है।

हाफ़िज़ अली खाँ का कण्ठ अत्यन्त मधुर था। ये राग का इत्र बजाते थे। ये अपने युग के सर्वश्रेष्ठ सरोदवादक थे।

हाफ़िज़ अली खाँ वर्षों तक भारतीय कला-केन्द्र में अध्यापक रहे, परन्तु कोई भी विद्यार्थी इनसे सीखने में सफलता प्राप्त न कर सका।

अमजद अली खाँ इनके पुत्रों में यशस्वी और प्रतिभाशाली हैं। हाफ़िज़ अली खाँ अपने जीवन के आठ-दस वर्षों तक पर्याप्त रूप में अस्वस्थ एवं शिथिलेन्द्रिय रहे। पिछले वर्ष ही इनका स्वर्गवास हो गया।[2]

भोलानाथ भट्ट

भट्ट जाति ने पद्माकर और ग्वाल जैसे कवि जहाँ उत्पन्न किये हैं, वहाँ अच्छे संगीतज्ञ और कलाकारों ने भी इस जाति में जन्म लिया है। भट्ट चुन्नीलाल अठारहवीं शती के अन्त और उन्नीसवीं शती के आरम्भ के उन प्रमुख गुणियों में थे, जिनकी सहायता लेकर जयपुर-नरेश सवाई प्रतापसिंह (राज्य-काल १७७९-१८०४) ने अपने महान् ग्रन्थ 'राधागोविन्द संगीतसार' की रचना की।[3] चुन्नीलाल भट्ट दक्षिण के सन्त गायक त्यागराज के समवर्ती थे और उस समय मुग़ल सम्राट् शाह आलम (राज्य-काल १७५९-१८०६ ई०) का युग था।

चुन्नीलाल भट्ट के कुछ वंशज आजीविका के लिए अनेक स्थानों पर चले गये, जिनमें भोलानाथ भट्ट के पिता मोतीलालजी भट्ट दरभंगा जाकर बसे। भोलानाथ भट्ट का जन्म जनवरी १८८४ ई० में हुआ।[4] वे १६ मई, १९७० ई० को स्वर्गवासी हुए।

१. 'आजकल' (उर्दू), अगस्त १९५६, ई० पृ० १२१
२. भारत में सरोद वाद्य के इतिहास के लिए देखिए, परिशिष्ट 'अ' में 'सरोदवादक'
३. राधागोविन्द संगीतसार, प्रथम भाग, पृ० १०
४. हू इज़ हू, पृ० ९, श्रीरामसंगीतावली (भोलानाथजी की अपनी रचना, १९३४ ई०) में 'हमारे संगीत-रत्न', पृ० २९३ पर भोलानाथजी का जन्म-वर्ष १८९१ ई० तथा पिता का नाम जगदीश भट्ट लिखा है, जो अप्रामाणिक है। भोलानाथजी के पूर्वजों का स्थान मारवाड़ में फ़तहपुर सीकरी बताया है, जबकि फ़तहपुर सीक़री तो आगरा के पास उत्तर प्रदेश में है और भट्ट लोगों का जन्म-स्थान नहीं है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भोलानाथजी ने आनुवंशिक संगीत-शिक्षा तो प्राप्त की ही, अनेक स्थानों पर घूम-घूमकर अनेक दुर्लभ बन्दिशों का संग्रह किया और कई घरानों की विशेषता को हृदयंगम किया। वे वज़ीर खाँ के सम्पर्क में भी भलीभाँति रहे और भैया गनपतराव का दुर्लभ सत्संग भी उन्हें प्राप्त हुआ। इस युग में भैया गनपतराव की शैली के मर्मज्ञ वही थे।

भट्टजी कहते थे कि कण्ठ-साधना करनेवाले विद्यार्थी को अपनी कण्ठ-ध्वनि की अन्तिम पराकाष्ठा से दो-तीन स्वर नीचे तक रहकर ही अभ्यास करना चाहिए, चीखने-चिल्लाने से आवाज़ खराब होती है।[1]

भोलानाथजी ने अनेक बन्दिशों की रचना की है, जिनका भाषा-पक्ष भी सुन्दर है। वे छन्द भी भलीभाँति समझते थे।[2] शुद्ध उच्चारण और अर्थबोध पर वे बड़ा बल देते थे।

संग्रहणी रोग से ग्रस्त होने पर भोलानाथ भट्ट प्रयाग आये और उन्होंने स्वामी विहारीदासजी से रामभक्ति-दीक्षा ले ली। गुरुकृपा से ये स्वस्थ हो गये और प्रयाग में ही बसकर अपने दीक्षा-गुरु के उत्तराधिकारी हुए। प्रति-दिन गंगा-स्नान और 'रामचरित मानस' का पाठ भोलानाथजी नित्य नियमपूर्वक करते थे। हनुमान्‌जी के ये अनन्य भक्त थे।

खयाल, ठुमरी, दादरा और टप्पे की गायकी का मर्म वे भलीभाँति समझते थे, अपने युग के उन गिने-चुने गुणियों में भोलानाथ प्रमुख थे, जो रूढ़िवादी न होकर विचार को प्रधानता देते थे।

प्रयाग में जो भी संगीतज्ञ आता, वह प्रयागराज की जीवित विभूति भोला-नाथ भट्ट के दर्शन अवश्य करता और प्रसाद-रूप में उनसे कुछ बन्दिशें प्राप्त करता। प्रख्यात व्यक्तियों में ऐसे व्यक्ति प्रो० देवधर हैं।

इस युग के उन शोधकर्ताओं से भोलानाथजी प्रसन्न नहीं थे, जिन्होंने बन्दिशों के भाषा-पक्ष और छन्द-पक्ष पर ध्यान नहीं दिया और जो केवल अक्षर-शत्रु लोगों की सेवा में पड़े रहे। भोलानाथजी अपनी वंश-परम्परा का सम्बन्ध प्रसिद्ध भावभट्ट से बताते थे।

भोलानाथजी बहुत घूमे-फिरे व्यक्ति थे, उनका दृष्टिकोण उदार था। अनेक गुणियों की भाँति वे संकीर्ण नहीं थे। उन्होंने बन्दिशों के स्वर-लिपि-करण का विरोध कदापि नहीं किया, अपितु स्वयं अपनी बन्दिशों का एक संग्रह १९३४ ई० में प्रकाशित किया जिसका नाम 'श्रीरामसंगीतावली' है। हाँ, वे इतना अवश्य कहते थे कि स्वरलिपि सीखकर ही कोई गायक नहीं बन सकता।

---

१. श्रीरामसंगीतावली, प्रथम भाग, पृ० ४

२. वही, पृ० ३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

यों तो भोलानाथजी से असंख्य व्यक्तियों ने लाभ उठाया, उनके अनेक शिष्य उच्चकोटि के अध्यापक हैं, परन्तु उनके जिन शिष्यों ने गा-बजाकर ख्याति अर्जित की, उनमें श्रीमती मानिक वर्मा और श्रीमती सुलोचना यजुर्वेदी प्रमुख हैं। श्रीमती मालती पाण्डे को भी भोलानाथजी से कुछ दिनों शिक्षा लेने का अवसर मिला है। श्रीमती सुलोचना यजुर्वेदी और उनकी बहन कुमारी सरयू कालेकर को पं० भोलानाथजी से साथ-साथ शिक्षा लेने का अवसर मिला है और ये दोनों विभिन्न संगीत-सम्मेलनों में एकसाथ बैठकर भी गाती हैं।

पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

पं० विष्णु दिगम्बर का जन्म-स्थान होने का गौरव महाराष्ट्र में कोल्हापुर ज़िले के ग्राम कुरन्दवाड़ी को प्राप्त है। उनका जन्म २० अगस्त, १८७२ ई० को हुआ। अल्प आयु में ही दीवाली पर पटाखे छोड़ते समय उनकी आँखें झुलस गयीं और उनके नेत्रों की ज्योति अत्यन्त क्षीण हो गयी। फलतः पठन-पाठन छूट गया और वे मिरज-दरबार के राजगायक पं० बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर से संगीत-शिक्षा लेने लगे।[1]

अपने गुरु से आज्ञा लेकर १८९५ ई० में विष्णु दिगम्बरजी ने भारत-प्रवास आरम्भ किया। १९०१ ई० में उन्होंने लाहौर में गान्धर्व महाविद्यालय की स्थापना की। १९०८ ई० में उन्होंने बम्बई में एक अन्य संगीत महाविद्यालय की स्थापना की और उसके लिए एक भवन बनवाया। इस विद्यालय का वार्षिक व्यय साठ सहस्र रुपये था। विष्णु दिगम्बरजी रुग्ण हुए। विद्यालय की आर्थिक स्थिति डावाँडोल हुई और विद्यालय का भवन नीलाम हो गया।[2]

विष्णु दिगम्बरजी ने एक स्वर-लिपि-पद्धति का भी निर्माण किया, टिकट लगाकर संगीत-सम्मेलन किये, पचास से अधिक संगीत-ग्रन्थों का प्रकाशन किया और संगीत-सम्बन्धी मासिक पत्र भी प्रकाशित किया। ये सब कार्य उन्होंने अपने पौरुष के बल पर किये।[3] अपनी आयु के अन्तिम भाग में वे भक्त गायक रह गये थे।

पं० विष्णु दिगम्बर का कण्ठस्वर अत्यन्त सुन्दर था और वे भावमय होकर गाते थे।

उनको ग्वालियर की उस परम्परा का गायक कहा जाता है, जो बड़े मुहम्मद खाँ के अनुकरण से हस्सू खाँ और हद्दू खाँ ने विकसित की। यह परम्परा

---

१. वाग्गेयकार पं० ओंकारनाथ ठाकुर, पृ० ५९
२. वही, पृ० ६०
३. वही, पृ० ६२-६३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ऐसे रागों को उपेक्षा करती रही, जो तान लेने की दृष्टि से असुविधाजनक थे। इस परम्परा के महाराष्ट्रीय गायकों की कला पर प्रादेशिक प्रभाव भी है।

आज नीतिज्ञ लोग 'विष्णुद्वय' (पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर और पं० विष्णु नारायण भातखण्डे) की चर्चा साथ-साथ करने लगे हैं, परन्तु अपने जीवन-काल में ये दोनों सज्जन परस्पर प्रमुख आलोचक थे। इन दोनों ही सज्जनों का दृष्टिकोण संगीत के सम्बन्ध में अलग-अलग था।[1]

यह विचित्र बात है कि इन दोनों को प्रमुख समर्थन महाराष्ट्र से बाहर मिला। पं० विष्णु दिगम्बरजी के द्वारा गान्धर्व-महाविद्यालय की स्थापना १९०१ ई० में लाहौर में हुई और भातखण्डे-पद्धति के प्रमुख-प्रचार-केन्द्र मैरिस कालेज की स्थापना १९३० ई० में लखनऊ में हुई।

पं० विष्णु दिगम्बर को लाहौर के प्रसिद्ध सनातनधर्मी धनी लाला रामशरण-दास, प्रसिद्ध सनातनधर्मी विद्वान् वाणीभूषण पं० दीनदयालुजी, आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वानों और कांग्रेस के देशभक्त कार्यकर्ताओं का सहयोग मिला,[2] तो भातखण्डेजी के प्रमुख सहायक रामपुर-नवाब हामिद अली तथा अन्य नरेश, ठाकुर नवाब अली खाँ, तथा साहबजादा सआदत अली खाँ (छम्मन साहब) रहे।

पं० विष्णु दिगम्बर संगीत में सात्विकता प्रतिष्ठित करने की ओर दत्तचित्त थे तो पं० भातखण्डेजी पुरानी दरबारी बन्दिशों के संग्रह में लगे थे।

पं० विष्णु दिगम्बर बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर के शिष्य थे, तो भात-खण्डेजी की भक्ति जयपुर के मुहम्मद अली खाँ कोठीवाल, रामपुर के नवाब हामिद अली खाँ, उस्ताद वज़ीद खाँ, और छम्मन साहब के प्रति थी।

पं० विष्णु दिगम्बर 'रामचरित मानस' की चौपाइयों को नवीन रूप दे रहे थे, तो भातखण्डेजी राग-रूपों की शुद्धि और अप्रसिद्ध रागों की प्राप्ति के लिए बद्धपरिकर थे।

'गान्धर्व महाविद्यालय' का नामकरणं वाणीभूषण पं० दीनदयालु ने किया था, तो मैरिस कालेज का नामकरण ब्रिटिश शासन के भक्तों ने किया था।

पं० विष्णु दिगम्बरजी कांग्रेस-आन्दोलन के साथ जुड़े थे और पं० भात-खण्डेजी ब्रिटिश शासन के आधार-स्तम्भों का सहारा लिये हुए थे।

पं० विष्णु दिगम्बरजी के भक्तों में उस साहित्य की शुद्धि आवश्यक थी, संगीत के जिस गेय साहित्य का संग्रह भातखण्डेजी कर रहे थे, तो भातखण्डेजी के कुछ भक्त विष्णु दिगम्बरजी को 'भजनीक' कहकर उनका उपहास कर

---

१. वाग्गेयकार पं० ओंकारनाथ ठाकुर, पृ० ३७-४६; प्रो० जी० एच्० रानडे, 'संगीत', अगस्त १९६० ई०, पृ० २८

२. पलुस्कर जन्म-शताब्दी स्मरणिका, १९७२ ई०, में श्री विनायकराव पटवर्द्धन का लेख

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रहे थे। उन्हें विष्णु-दिगम्बर-परम्परा में प्रयुक्त राग-रूपों पर आपत्ति थी।

विष्णु दिगम्बरजी के भक्तों की दृष्टि में भातखण्डे-स्वरलिपि अपूर्ण थी, तो भातखण्डेवादियों की दृष्टि में विष्णु-दिगम्बर-पद्धति जटिल।

हाँ, इन दोनों की ही मातृभाषा मराठी थी, अतः दरबारी गेय साहित्य की भाषा के शुद्ध रूप की ओर इन दोनों की ही परम्परा का ध्यान न था।

दरबारी की प्रसिद्ध बन्दिश 'हज़रत तुरकमान' में प्रसिद्ध सूफ़ी सन्त 'तुर्कमान' की स्तुति की गयी है, दोनों ही परम्पराओं के सज्जन 'हजरत तुर्कमान जू के बलि बलि जैयें' के स्थान पर 'हजरत तोरे कमान जू' कहते हैं। इस दृष्टि से इन दोनों महापुरुषों के भक्तों और अनुयायियों को पुरानी बन्दिशों के साहित्य-पक्ष की शुद्धि पर भी ध्यान देना चाहिए।

भातखण्डेजी बी० ए०, एल्० एल्० बी० थे, वे अन्वेषक और तार्किक थे। विष्णु दिगम्बरजी गायक, भक्त और प्रचारक थे।

२१ अगस्त, १९३१ ई० को विष्णु दिगम्बरजी स्वर्गवासी हुए।

पं० ओंकारनाथ ठाकुर

पं० ओंकारनाथजी का जन्म २४ जून, १८९७ ई० को खम्भात जिले के 'जहाज' ग्राम में हुआ। उनके पिताजी का नाम पं० गौरीशंकर और जननी का नाम झवैर बा था।[१] ओंकारनाथजी का बाल्य-काल आर्थिक संकटों में बीता। दस वर्ष की आयु में उन्हें आठ रुपये मासिक पर चार महीने रामलीला पार्टी में काम करना पड़ा।[२] १९१० ई० में गौरीशंकरजी का स्वर्गवास हो गया।[३]

१९१० ई० में ओंकारनाथजी पं० विष्णु दिगम्बरजी की सेवा में उपस्थित हुए।[४] १९१२ ई० में उन्होंने पहली बार मंच पर गाया।[५] १९१६ ई० में उनकी नियुक्ति विष्णु दिगम्बरजी ने लाहौर के गान्धर्व-विद्यालय में कर दी।[६] तीन वर्ष पश्चात् वे वापस बुला लिये गये।

विष्णु दिगम्बरजी से शिक्षा लेने का अवसर ओंकारनाथजी को केवल छः वर्ष मिला था, परन्तु ओंकारनाथजी के श्रद्धालु शिष्यों के अनुसार जालन्धर के हरवल्लभ-संगीत-सम्मेलन में ओंकारनाथजी ने पं० भास्करराव बखले पर

---

१. वाग्गेयकार पं० ओंकारनाथ ठाकुर, पृ० १०
२. वही, पृ० १६
३. वही, पृ० १९
४. वही, पृ० २१
५. वही, पृ० २७
६. वही, पृ० २८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विजय प्राप्ति की।[1] इन्हीं शिष्यों के अनुसार एक बार पं० विष्णु दिगम्बरजी ने ओंकारनाथजी के गाने के बाद नहीं गाया और कहा कि गुरु की इच्छा यह होनी चाहिए कि वह शिष्य से हार जाये।[2] पं० ओंकारनाथजी के हाथों भास्करराव जैसे चौमुखे गायक और विष्णु दिगम्बर जैसे युगपुरुष की पराजय का उल्लेख केवल ओंकारनाथजी के श्रद्धालु शिष्यों ने किया है। जब तक इन तथाकथित तथ्यों के समर्थक अन्य साक्ष्य न मिल जायें तब तक ऐसी बातों पर अधिक ध्यान देना अनावश्यक है।

१९३३ ई० के आरम्भ में पं० ओंकारनाथ इटली गये। जर्मनी, हालैण्ड, बेल्जियम, लन्दन इत्यादि की यात्राएँ उन्होंने कीं और नवम्बर १९२३ ई० में वे भारत लौट आये।[3]

१९३४ ई० में ओंकारनाथजी ने बम्बई में 'संगीत-निकेतन' की स्थापना की। १९३८ ई० में 'संगीतांजलि' प्रथम भाग का प्रकाशन हुआ।[4]

१९५० ई० में पं० ओंकारनाथजी हिन्दू-विश्वविद्यालय, वाराणसी में आये और १९५७ तक वहाँ रहे।

पं० ओंकारनाथजी को किसी पाठशाला में पढ़ने का अवसर कदापि नहीं मिला था। उन्हें बनारस आने पर ही विद्याप्रधान वातावरण मिला और साथ-ही-साथ डा० प्रेमलता शर्मा साहित्याचार्या की विद्वता, तपस्या और भक्ति का अमूल्य सहयोग भी। इसीलिए १९५४ ई० में प्रकाशित 'संगीतांजलि' द्वितीय भाग की भाषा एवं विवेचन-शैली 'संगीतांजलि' प्रथम भाग की अपेक्षा सर्वथा परिवर्तित हो गयी।

१९५४ ई० में पण्डितजी पुनः विदेश गये। चेकोस्लोवाकिया, नार्वे, हालैण्ड और रूस की यात्रा उन्होंने की।

१९६३ ई० में हिन्दू-विश्वविद्यालय ने पं० ओंकारनाथजी को मानद उपाधि डी० लिट्० दी, इस कार्य की पुनरावृत्ति रवीन्द्रभारती विश्वविद्यालय ने १९६४ ई० में की।

१९६५ ई० में पं० ओंकारनाथ पक्षाघात से ग्रस्त हुए। २९-१२-६७ को पं० ओंकारनाथ का स्वर्गवास हो गया।

पं० ओंकारनाथ सुकण्ठ गायक, ओजस्वी वक्ता, भव्यमूर्ति, व्यवहारकुशल, व्यापारनिपुण और मेधावी व्यक्ति थे।

---

१. वाग्गेयकार पं० ओंकारनाथ ठाकुर, पृ० ३०
२. वही, पृ० ३९
३. वही, पृ० ४२-४३
४. वही, पृ० ४९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संगीतशास्त्री के रूप में पं० ओंकारनाथजी की ख्याति का श्रेय उनकी प्रसिद्धि-पराङ्मुख शिष्या डा० प्रेमलता शर्मा जैसी विदुषी महिला को है। बनारस-निवास के समय पण्डितजी के जिन ग्रन्थों की रचना हुई, वे डा० प्रेमलता शर्मा की गुरु-भक्ति का प्रसादमात्र हैं।

पं० ओंकारनाथजी कुशल अभिनेता थे, वे भावुकता का अभिनय भी भलीभाँति कर लेते थे। यदि पं० ओंकारनाथजी में अपने गुरुदेव पं० विष्णु दिगम्बर जैसा औदार्य्य भी होता, तो लोग देवता की भाँति उनकी पूजा करते।

पं० ओंकारनाथजी को केवल छः वर्ष पं० विष्णु दिगम्बरजी से शिक्षा मिली थी। उनका गान उनकी अपनी चिन्तन-शक्ति का परिणाम मात्र था। उनकी 'दरबारी' उनकी 'अपनी दरबारी' थी। पं० ओंकारनाथजी के राग-प्रयोग को परम्परा की कसौटी पर कसा जाना ठीक नहीं। उनकी गायकी केवल उनके लिए थी, उन्हीं के साथ गयीं।

यह एक कटु तथ्य है कि ओंकारनाथजी ने अपना कोई ऐसा गायक शिष्य न छोड़ा, जो उनकी अपनी निजी गान-परम्परा को चला सके।

डा० प्रेमलता शर्मा ने १९७१ ई में ओंकारनाथजी के विषय में कहा है कि ओंकारनाथजी के प्रयत्नों का मूल्यांकन केवल आपके विषय-प्रतिपादन की यथार्थता की कसौटी पर नहीं होना चाहिए, अधिक महत्त्व इस बात का है कि प्राचीन ग्रन्थों के प्रति अनास्था के युग में ओंकारनाथजी ने प्राचीन ग्रन्थों में प्रतिपादित सिद्धान्तों की ओर ध्यान दिलाया।...सत्य का उद्घाटन ज्यों-ज्यों होगा, त्यों-त्यों पण्डितजी का योगदान प्रकट होगा।[1]

डा० प्रेमलता स्व० ओंकारनाथजी के द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को न तो शब्दशः यथार्थ मानती हैं और न यह कहती हैं कि सत्य का उद्घाटित होना अवशिष्ट नहीं है। 'भरत' की स्थापनाओं के सम्बन्ध में उनके अपने अलग विचार हैं।

श्रीकृष्ण नारायण रातनजनकर

श्रीकृष्ण नारायण रातनजनकरजी का जन्म ३१ दिसम्बर (१९०० ई०) को बम्बई में हुआ। उनकी जननी का नाम लक्ष्मीबाई और पिता का नाम नारायण गोविन्द रातनजनकर था। रातनजनकरजी के प्रारम्भिक संगीतगुरु होनावर कृष्णभट्ट थे। अनन्त मनोहर जोशी और फ़ैयाज़ खाँ से भी रातन-जनकरजी ने सीखा।

---

१. वाग्गेयकार पं० ओंकारनाथ ठाकुर, पृ० २५४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रातनजनकरजी स्वयं भातखण्डेजी के पट्टशिष्य थे। इसीलिए वे मैरिस कॉलेज, लखनऊ के प्रिंसिपल दीर्घकाल (१६२८ ई० से १६५७ ई० और १६६७ से १६७० ई०) तक रहे।

रातनजनकरजी स्वयं भातखण्डेजी के विचारों के प्रचारक थे, उनकी ही शैली से शिष्य तैयार करना चाहते थे। यदि संक्षेप में कहा जाये, तो उनके जीवन का अधिकांश भाग भातखण्डेजी के स्वप्नों को साकार करने की चेष्टा में बीता, अधिकांश समय शिष्य-निर्माण-सम्बन्धी प्रयोगों में गया, जिससे उनके अपने गायक-पक्ष को पर्याप्त हानि पहुँची। रागों के प्रकारों का विवेचन उनका प्रधान कार्य रह गया। सफल गायक अपने लिए कुछ गिने-चुने राग पसन्द करते हैं, उन पर डटकर अभ्यास करते हैं और श्रोताओं को रिझाते हैं। इसके विपरीत पं० रातनजनकरजी को 'क्रमिक-पुस्तक-मालिका' में संगृहीत सभी बन्दिशों और रागों पर ध्यान देना पड़ा, फलत: वे बन्दिशों के अच्छे कोष तो हो गये, गायकोचित अभ्यास की ओर उनका ध्यान गायकों के समान न जा सका।

भातखण्डेजी द्वारा प्रकट किये गये विचारों पर स्वतन्त्र रूप से चिन्तन के लिए और भातखण्डेजी द्वारा किये चिन्तन-सम्बन्धी कार्य को आगे बढ़ाने के लिए रातनजनकरजी समय न निकाल सके, क्योंकि उनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य भातखण्डे-पद्धति के अनुसार अधिक-से-अधिक विद्यार्थियों का निर्माणमात्र रह गया था।

स्वयं रातनजनकरजी की बड़ी इच्छा थी कि 'क्रमिक-पुस्तक-मालिका' में संगृहीत बन्दिशों के साहित्य-पक्ष को भाषा की दृष्टि से शुद्ध किया जाये, जो अनेक स्थानों पर चिन्तनीय रूप में भ्रष्ट है, परन्तु इस कार्य के लिए भी वे समय न निकाल सके।

रातनजनकरजी बम्बई-विश्वविद्यालय के स्नातक थे। भातखण्डे संगीत विद्यापीठ, लखनऊ तथा इन्दिरा कलासंगीत-विश्वविद्यालय ने उन्हें मानद 'डॉक्टरेट' दी। इन्दिरा कलासंगीत-विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी वे रहे।

डॉ० बी० वी० केसकर के सूचना और प्रसारण मन्त्री होने पर दीर्घकाल तक पं० रातनजनकरजी रेडियो के म्युज़िक ऑडिशन बोर्ड के वाइस चेयरमैन रहे और समस्त भारत के कलाकारों के भाग्य का निर्णय करने की शक्ति उनके हाथ में आ गयी। इस स्थिति के व्यापक परिणाम हुए।

रातनजनकरजी वल्लभ-संगीत-विद्यालय, बम्बई के अवैतनिक डायरेक्टर भी रहे।

रातनजनकरजी की एक रचना 'अभिनव गीत-मंजरी' तीन भागों में तथा एक अन्य रचना 'तान-संग्रह' भी तीन भागों में प्रकाशित हुई हैं, भातखण्डे-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पद्धति के विद्यार्थियों के लिए ये पुस्तकें लाभदायक हैं।

रातनजनकरजी ने अनेक निवन्ध लिखे, भाषण दिये और कुछ संगीत-रूपकों की रचना भी की। सीलोन-रेडियो ने भी उन्हें निमन्त्रित किया था।

१४ फरवरी, १९७४ ई० को श्रीकृष्ण नारायण रातनजनकर का स्वर्गवास हुआ।

स्वयं भातखण्डेजी का जीवन राग-रूपों के समझने, उनकी बन्दिशों को एकत्र करने और उनके वर्गीकरण में बीता। पं० रातनजनकरजी ने अपना जीवन 'क्रमिक-पुस्तक-मालिका' के छः भागों में संगृहीत बन्दिशों को शिष्यों के मानस और कण्ठ में उतारने में लगाया।

भरत, मतङ्ग, शार्ङ्गदेव और कुम्भ जैसे विचारकों के ग्रन्थों पर गम्भीर विचार की आवश्यकता न तो स्वयं भातखण्डेजी ने अपने यौवन-काल में समझी और न स्वयं रातनजनकरजी ने। हाँ, अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में दोनों ही सज्जनों ने इस कार्य का महत्त्व समझा था।

जिस कार्य के लिए अनेक व्यक्तियों की 'टीम' आवश्यक है, उसे एक व्यक्ति इच्छा रहने पर भी पूर्ण नहीं कर सकता।

कुछ दाक्षिणात्य विभूतियाँ

पुरन्दरदास

'कर्नाटक संगीत' शब्द का जन्म अंग्रेजों की भेद-नीति का परिणाम है। दक्षिण के किसी भी संस्कृत ग्रन्थ में 'कर्नाटक संगीत' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता।

सन्त पुरन्दरदास को आजकल कर्नाटक संगीत का आदिगुरु और पितामह कहा जाता है, परन्तु पुरन्दरदास स्वयं 'कर्नाटक संगीत' शब्द से अपरिचित थे।

पुरन्दरदास का जन्म १४८४ ई० में हुआ और वे २ जनवरी, १५६४ ई० को स्वर्गवासी हुए।

मानसिंह तोमर का राज्यारोहण और स्वर्गवास, बैजू और बख्शू के माध्यम से व्रजभाषा-ध्रुवपद का जन्म, प्रसार और प्रचार, सूरदास एवं उनके साथ अन्य अष्ट सखाओं द्वारा कृष्णभक्ति-सम्बन्धी गेय पदों की रचना, गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव इत्यादि घटनाएँ पुरन्दरदास के जीवनकाल में ही घटित हुईं।

बाबर का आक्रमण और स्वर्गवास, हुमायूँ, शेरशाह और बहादुरशाह गुजराती का पारस्परिक संघर्ष, दक्षिण के वहमनी साम्राज्य का अन्त और उसका पाँच मुस्लिम राज्यों में बिखर जाना, विजयनगर के प्रतापी नरेश कृष्णदेव

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राय का उदय और अस्त तथा अकबर का राज्यारोहण जैसी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ भी पुरन्दरदास के जीवन-काल में ही घटित हुई हैं।

शाह कमालुद्दीन बियाबानी और शाह मीरानजी जैसे संगीतानुरागी चिश्ती सन्त भी पुरन्दरदास के जीवन-काल में ही दक्षिण में क़व्वालियाँ सुन रहे थे।

पुरन्दरदास ने समस्त भारत के तीर्थों की यात्रा अपने जीवन में तीन बार की।[1] वे कृष्णभक्त थे, अतः मथुरा और वृन्दावन में उनके द्वारा भलीभाँति रमा जाना स्वाभाविक है, जहाँ दाक्षिणात्य आचार्य भक्ति के सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे थे और अष्टछाप के अष्टसखाओं को कृष्णलीला और कृष्णभक्ति से सम्बद्ध 'पदों' के प्रणयन, गान और प्रचार के लिए प्रेरित कर रहे थे।

इस युग से कहीं पूर्व मुस्लिम वाद्य 'रबाब' का प्रवेश व्रज के मन्दिरों में हो चुका था।

इन सभी परिस्थितियों से पुरन्दरदास का प्रभावित होना स्वाभाविक था।

इस युग से शताब्दियों पूर्व 'मालव' (मालव) और 'गौड' प्रदेशों पर मुसलमान शासकों और सूफ़ियों का प्रभाव हो चुका था, जिनकी साधना में प्रथम राग 'भैरव' (ईरानी चारगाह) था। 'मालव' और 'गौड' में प्रचलित होने के कारण इस राग को 'मालव गौड' कहा गया। पुरन्दरदास ने उत्तरभारतीय खुसरो-पद्धति के प्रथम राग भैरव (मालव गौड) को दाक्षिणात्यों की स्वर साधना का मूल आधार बनाया, फलतः आज भी दक्षिण के संगीत-विद्यार्थी मालव गौड से ही अपनी स्वर-साधना आरम्भ करते हैं।[2]

दक्षिण और उत्तर भारत के हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थ, अवतार, दर्शन, साहित्य और तीर्थ पृथक्-पृथक् नहीं है, केवल भाषा-भेद से संगीत दो हो जायें, यह बेतुकी बात है।

पुरन्दरदास का जन्म एक माध्वदेशस्थ ब्राह्मणों के एक धनाढ्य परिवार में हुआ। ये लोग अत्यन्त धनी होने के कारण 'नायक' कहलाते थे। पुरन्दरदास का जन्म बेलारी जिले के एक गाँव पुरन्दरगढ़ में हुआ जो हम्पी के निकट है। इनके पिता वरदप्पा नायक और माता कमलाम्बा थीं। पुरन्दरदास का नाम श्रीनिवास रखा गया और प्यार में इन्हें सिनप्पा कहा जाता था।

पुरन्दरदास शीघ्र ही संस्कृत, कन्नड और संगीत में निपुण हो गये और सोलह वर्ष की आयु में इन्होंने सरस्वतीबाई का पाणिग्रहण किया। इनके

---

१. ग्रेट कम्पोजर्स, खण्ड-१, पृ० ३२
२. दक्षिण के संगीत पर मुस्लिम प्रभाव के लिए देखिए, 'मुसलमान और भारतीय संगीत', पृ० ३३-३८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पिता इन्हें बीस वर्ष का छोड़कर स्वर्गवासी हुए। इन्होंने अपने पिता का व्यापार सँभाला और अपनी कुशलता और निपुणता से इन्होंने प्रभूत धन अर्जित किया, अन्य व्यापारी इन्हें 'नवकोटिनारायण' कहने लगे।

चालीस वर्ष की आयु से पूर्व ही इन्हें संसार से विरक्ति हो गयी और ये भगवद्भजन में प्रवृत्त हो गये। १५२५ ई० में इन्होंने व्यासराय से दीक्षा ली। संगीत-रचयिता और भक्त के रूप में इनकी प्रसिद्धि इसी समय से हुई।

कुछ लोगों के अनुसार पुरन्दरदास की रचनाओं की संख्या चार लाख पचहत्तर हज़ार है। त्यागराज ने अपने 'प्रह्लादभक्ति-विजयम्' में पुरन्दरदास को भी आदरपूर्वक प्रणाम किया है। पुरन्दरदास की रचनाओं का विषय उपनिषदों और पुराणों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त या तथ्य हैं।

पुरन्दरदास की रचनाओं में द्विजावन्ती (जयजयवन्ती ?) और श्यामकल्याणी[1] (श्यामकल्याण) जैसे रागों का प्रयोग भी पाया जाता है।

पुरन्दरदास ने संगीत-शिक्षा को क्रमबद्ध करने के लिए स्वरावलियों, अलंकारों, पिल्लारि गीतों, घनराग गीतों और प्रबन्धों का प्रणयन किया। 'कृति' नामक रचना का बीजारोपण भी पुरन्दरदास कर चुके थे। शूलादि सप्ततालों का महत्त्व भी इन्हीं के युग से बढ़ा।

पुरन्दरदास के युग से सैकड़ों वर्ष पूर्व दक्षिण भारत मूर्च्छना-पद्धति को भूल चुका था। पुरन्दरदास के युग में दक्षिण भारत पर कई शताब्दियों का मुस्लिम प्रभाव था। पुरन्दरदास के अन्तिम समय में मुसलमानों से भलीभाँति प्रभावित रामामात्य अपने ग्रन्थ 'स्वरमेलकलानिधि' की रचना कर रहे थे।[2]

पुरन्दरदास संकीर्ण मनोवृत्ति के न थे, उन्होंने समस्त भारत की यात्रा तीन बार की थी, उनमें संकुचित मनोवृत्ति की गन्ध तक न थी। दक्षिण भारत के संगीत को पुनः व्यवस्थित करने के लिए उन्होंने उत्तर भारत में भलीभाँति प्रचलित राग भैरव के 'ठाठ' को आधार बनाया। इसी भैरव के मध्यम को चढ़ा देने (तीव्र कर देने) से पूर्वी ठाठ (कामवर्द्धनी) का जन्म होता है और पूर्वी ठाठ के मन्द्र निषाद को 'स्वर' मानने से दक्षिणात्यों के मुखारी ठाठ की उत्पत्ति होती है।

वेदाश्रित ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति में दो स्वरों का पारस्परिक अन्तराल अधिक से अधिक चार श्रुतियों का हो सकता है। मालव गौड के ऋषभ-गान्धार का अन्तराल पाँच श्रुतियों का है, यही स्थिति इस मेल के धैवत और निषाद की है, अतः यह मेल सुन्दर होने पर भी ग्राम-मूर्च्छना-सम्प्रदाय के अन्तर्गत नहीं

१. श्यामकल्याण जौनपुर के हुसेन शाह शर्क़ी के द्वारा आविष्कृत राग है।
२. विस्तृत विवरण के लिए देखिए : मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ४१-४५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आता। यह सबकुछ होते हुए भी पुरन्दरदास के द्वारा इस मेल को स्वर-शिक्षा का आधार बनाया जाना उनके उदार और व्यावहारिक दृष्टिकोण का परिचायक है।

पुरन्दरदास की रचनाओं का विषय कृष्णभक्ति है। पुरन्दरदास के यौवन-काल में विजयनगर-साम्राज्य का प्रताप उन्नति के शिखर पर था और उनकी अन्तिम आयु में विजयनगर का शासन-सूत्र महाप्रतापी रामामात्य के हाथों में था, अतः पुरन्दरदास की रचनाएँ जनता और शासन दोनों की दृष्टि में समान रूप से प्रिय हुईं।

विजयनगर-साम्राज्य के पतन के पश्चात् तंजोर, मदुरा, मैसूर, जिंजी और पेनुकोण्डा के रूप में पाँच स्वतन्त्र हिन्दू राज्य बने। इनमें तंजोर सर्वाधिक सम्पन्न था। विजयनगर के हिन्दू कलाकारों को तंजोर में आश्रय मिला। अतः गायकों की भक्ति को राज्य का आश्रय मिला। यही कारण है कि दक्षिण के भक्त गायकों की रचना को राज्य की ओर से विरोध का सामना करना न पड़ा।

पुरन्दरदास के सम-सामयिक सूरदास और तुलसीदास की भक्तिमय रचनाएँ केवल हिन्दू जनता में लोकप्रिय हुईं। मथुरा और वृन्दावन के निकट कोई भी प्रतापी हिन्दू शासन न था। एक मानसिंह तोमर हुआ, उससे जो कुछ हो सका, उसने किया।

मुस्लिम दरबारों में सूफ़ी सन्तों का आदर था। अकबरी दरबार के इतिहासकारों ने स्वामी हरिदासजी जैसे व्यक्ति की चर्चा तक नहीं की है, अतः भक्ति-साहित्य उत्तर भारत में दरबारों तक न पहुँच सका। उन दरबारों में ऐसे कलाकारों का प्रभाव था, जो सूफ़ियों के भक्त हों और बादशाहों की स्तुति कर सकते हों।

संगीत के इतिहास से वास्तविक रूप में परिचय प्राप्त करने के इच्छुक सज्जनों को यह तथ्य जान लेना चाहिए कि यदि सूरदास और हरिदास के युग में आगरा पर कृष्णदेव राय जैसे किसी प्रतापी हिन्दू सम्राट का शासन होता, तो सूरदास जैसे व्यक्तियों की कला दरबार में भी सम्मानित होती। राजनीतिक परिस्थितियों के अन्तर ने तो आज 'सूर' और 'तुलसी' के 'पदों' को 'लाइट म्युजिक' का विषय बना दिया और पुरन्दरदास के 'पद' दक्षिण में शास्त्रीय संगीत कहलाये।

पुरन्दरदास जैसे महापुरुषों की रचनाओं का विषय 'भक्ति' है और वे लोकैषण, वित्तैषण इत्यादि की ओर से तटस्थ हैं, परन्तु उनके द्वारा प्रयुक्त राग, ताल और गानशैली मध्ययुग की हैं,. प्राचीनता के साथ इन वस्तुओं का कोई सम्बन्ध नहीं है।

मध्ययुग के इतिहास और प्रवृत्तियों से अपरिचित सज्जन यह सोचकर भले

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ही प्रसन्न हो लें कि तथाकथित कर्नाटक संगीत प्राचीन है, परन्तु वास्तविकता से परिचित आधुनिक दाक्षिणात्य विद्वान् भी इस तथ्य को समझने और मानने लगे हैं कि रामामात्य और वेंकटमखी के द्वारा शुद्ध माने जानेवाले स्वरों का कोई भी सम्बन्ध भरत और शार्ङ्गदेव के शुद्ध स्वरों से नहीं होता।[1]

त्यागराज

प्रसिद्ध दाक्षिणात्य संगीतज्ञ सन्त त्यागराज का जन्म १७६७ ई० में हुआ।[2] यह नाममात्र के मुग़ल सम्राट् शाहआलम (राज्य-काल १७५९-१८०६ ई०) का शासन-काल था और त्यागराज का स्वर्गवास ६ जनवरी, १८४७ ई० को हुआ।[3] यह अन्तिम मुग़ल सम्राट् बहादुरशाह ज़फ़र का राज्य-काल था।

त्यागराज की मृत्यु से प्रायः सौ वर्ष पूर्व सदारंग की मृत्यु हो चुकी थी। अर्थात् त्यागराज का स्वर्गवास केवल एक सौ सत्ताईस वर्ष पूर्व हुआ है, ऐसी दशा में यदि त्यागराज की परम्परा दक्षिण में जीवित है, तो आश्चर्य की बात नहीं।

ब्रजभूमि के सन्त गायकों की छाती पर विधर्मी मुग़ल-साम्राज्य खड़ा था, जिसके दरबार में वैष्णव भक्ति के लिए कोई स्थान था। ब्रज के भक्तों के संगीत को दरबार के द्वारा शास्त्रीयता का प्रमाणपत्र दिया जाना सम्भव ही न था, परन्तु त्यागराज के धर्म और विश्वास का कोई विरोध अपने समय के राज्य के साथ न था। राज्य और संगीतज्ञों के धर्म की समानता ने कर्नाटक संगीत को भक्तिप्रधान रखा है, क्योंकि वहाँ के दरबार और मन्दिर परस्पर-विरोधी न थे, परन्तु इस अनुकूल परिस्थिति के अभाव में ब्रजवासी सन्तों के गेय पदों की परम्परा सर्वथा उच्छिन्न हो गयी है और वे 'पद' लाइट म्युजिक के लिए उपयुक्त समझे जाने लगे।

त्यागराज के सम्बन्ध में विचार करते समय इन परिस्थितियों पर ध्यान रखना आवश्यक है।

श्री त्यागराज का जन्म तंजौर जिले के तिरुवारूर स्थान में हुआ था। उनके पिता का नाम रामब्रह्म था। त्यागराज ने तंजौर से सात मील दूर तिरुवैयारु नामक तीर्थस्थान को अपना निवास-स्थान बनाया। वहाँ उस समय मराठा वंश का शासन था और शरभोजी महाराज वहाँ राज्य कर रहे थे।[4]

---

१. संग्रह-चूड़ामणि, भूमिका, पृ० १२
२. त्यागराज-कृति-संग्रह, भूमिका, पृ० ७
३. वही, पृ० १०
४. संगीत-शास्त्र, ले० वासुदेव शास्त्री, पृ० २८९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

त्यागराज के नाना श्री गिरिराज कवि संगीत-रचनाकार थे। त्यागराज के गुरु सोण्ठी वेंकट रमणैया अपने समय के महान् पण्डितों में थे। रामकृष्णानन्दजी त्यागराज के आध्यात्मिक गुरु थे। त्यागराज भक्तिभावनाहीन संगीत के विरोधी थे। वे भक्तिमार्ग के अनुयायी थे और उनके दृष्टिकोण के अनुसार नाम-जप ईश्वर-साक्षात्कार में कारण था। त्यागराज का विचार था कि प्रभु के नाम के महत्त्व को भलीभाँति ध्यान में रखकर उसका स्मरण और जप करना चाहिए। यद्यपि त्यागराज के आराध्यदेव राम थे, परन्तु स्मार्त परिवार में जन्म लेने के कारण उन्होंने अन्य देवताओं की भी स्तुति की है।

त्यागराज की कला महाराष्ट्र के संगीतज्ञों से भी प्रभावित थी, क्योंकि शिवाजी के उत्तराधिकारियों ने उस प्रदेश पर त्यागराज के जन्म से पर्याप्त समय पूर्व अधिकार कर लिया था। तुलजा महाराज ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'संगीतसारामृत' की रचना त्यागराज के जन्म से ही कहीं पूर्व कर ली थी।

वेंकटमखी के ग्रन्थ 'चतुर्दण्डी प्रकाशिका' के रचना-काल के प्रायः सौ वर्ष पश्चात् त्यागराज का जन्म हुआ था, अतः उन्होंने अनेक मुस्लिम रागों का भी प्रयोग खुलकर किया है।

त्यागराज श्रुतियों की संख्या चौबीस मानते थे, अतः भरत और शार्ङ्गदेव की स्वरशास्त्र-परम्परा से उनका कोई सम्बन्ध नहीं।

वेंकटमखी ने अपने परमगुरु तानप्पा द्वारा प्रस्थापित नवीन सम्प्रदाय का अनुगमन किया था। त्यागराज का सम्प्रदाय अलग ही था।

वेंकटमखी ने कल्याणी और पन्तुवराली रागों को गीत और प्रबन्ध के लिए अयोग्य बनाकर उन्हें 'तुरुष्कप्रिय' कहा है, परन्तु त्यागराज ने इन रागों का प्रयोग खुलकर किया है।

कापि (काफ़ी), जिंग्ल (जंगूला), हुसेनी, दरबार जैसे रागों में त्यागराज ने अपनी कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। जनक-जन्य रागों के विषय में उनका अपना स्वतन्त्र मत है, जो वेंकटमखी और मुत्तुस्वामी दीक्षित की रचनाओं के सिद्धान्त से सर्वथा भिन्न है। इनकी स्वर-संज्ञाएँ अकलंक से प्रभावित हैं।[1]

त्यागराज के निन्दकों और विरोधियों की भी कमी न थी। उनके कुटुम्बी ही उनके जीवन-दर्शन से सहमत नहीं थे। कहा जाता है कि त्यागराज के भाई जप्येशजी चाहते थे कि त्यागराज संगीत को आजीविका का माध्यम बनायें और राज्याश्रय लें। त्यागराज के असहमत होने पर जप्येशजी ने उन्हें अनेक कष्ट दिये। त्यागराज ने अपनी कई रचनाओं में इस स्थिति पर दुःख प्रकट किया है।

---

१. संग्रह चूड़ामणि, भूमिका, पृ० १४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

त्यागराज की रचनाएँ उनके जीवन-काल में ही अत्यन्त प्रसिद्ध हो गयी थीं। उन्होंने तमिलनाडु की उत्तरी सीमा पर स्थित तिरुपति शैल से लेकर दक्षिण में तिरुच्चि के निकट लालगुडी तक की यात्राएँ कीं।

त्यागराज ने कई सहस्र कृतियों की रचना की थी, जिनमें प्राय: एक सहस्र उपलब्ध हैं।

त्यागराज की पाँच दीर्घ कृतियाँ 'पंचरत्नम्' के नाम से प्रसिद्ध हैं। नार, गौल, आरभी, श्री और वरालि राग में ये रचनाएँ निबद्ध हैं।

त्यागराज की रचनाओं के दो विशिष्ट वर्ग 'दिव्यनाम-कीर्तन' और 'उत्सव सम्प्रदाय-कीर्तन' हैं। 'नौका-चरित्र' और 'प्रह्लाद-भक्ति-विजय' नामक दो भक्तिपूर्ण गीति-नाट्यों की रचना भी उन्होंने की है।

त्यागराज अन्तिम समय में कुल-परम्परा के अनुसार संन्यासी हो गये थे।

त्यागराज के तीन शिष्यों ने उनकी कृतियों के गान की तीन परम्पराएँ प्रतिष्ठित की हैं, ये हैं, उभयालपुरम् शैली, तिल्लैस्थानम् शैली और वालजापेट शैली। इन तीनों में उभयालपुरम् शैली की मान्यता सर्वाधिक है।

तिरुवैयारु में त्यागराज की समाधि पर उनके भक्तों ने जो मन्दिर स्थापित किया था, प्रतिवर्ष उस मन्दिर में त्यागराज की जन्म-तिथि पर संगीत-समारोह होता है और दूर-दूर से गायक लोग वहाँ आते और त्यागराज की कृतियों का गान करके उनके प्रति श्रद्धांजलि प्रकट करते हैं।

त्यागराज के संगीत और भक्तिभावना दोनों पर उत्तर भारतीय प्रभाव था। अपने 'प्रह्लाद-भक्ति-विजय' में इन्होंने गोस्वामी तुलसीदासजी को भी प्रणाम किया है। तुलसी-साहित्य से इनका घनिष्ठ परिचय था।[1]

त्यागराज की रचनाओं में शैली की विविधता है और उनमें लय-सम्बधी वैचित्र्य पर यूरोपियन बैण्ड की धुनों का प्रभाव है, जो उनके युग में तंजौर में भलीभाँति प्रचलित थीं।[2]

त्यागराज के अपने शब्दों में कृति का विषय उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित सत्य होना चाहिए।[3] उसका अलंकरण मृदंग के द्वारा विभिन्न लयों से होना उचित है।[4]

त्यागराज के शब्दों में गायक को परिमित मात्रा में ही सोना चाहिए। सूर्योदय से पूर्व ही उठकर स्वर-साधना करना उचित है। एक अच्छा तानपूरा

---

१. स्प्रिच्युअल हैरिटेज, भूमिका, पृ० ६, ४०

२. वही, पृ० ३६

३. वही, पृ० ४३

४. वही, पृ० ४४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वर-साधना का आधार होना चाहिए। मस्तिष्क और मन को स्वच्छ रखते हुए सम्प्रदाय के अनुसार अभ्यास वांछनीय है।[1]

त्यागराज के अनुसार भक्तिहीन व्यक्तियों का संगीत-ज्ञान व्यर्थ है, अनुराग के बिना राग की सिद्धि नहीं होती।[2] जो संगीत-साधक संगीत के दिव्य महत्त्व और मूल्य को नहीं जानते, वे त्यागराज की दृष्टि में कुछ भी नहीं हैं।[3]

त्यागराज के स्वर्गवास के समय रामपुर-दरबार के उस्ताद बहादुर हुसेन खाँ लखनऊ में थे और प्रौढ़ हो चुके थे। बहादुर हुसेन खाँ का स्वर्गवास त्यागराज़ के स्वर्गवास के बत्तीस वर्ष पश्चात् रामपुर में हुआ था।[4]

क्षेत्रज्ञ

ये वेंकटमखी के आश्रयदाता तंजौर-नरेश विजयराघव राव के द्वारा अत्यन्त सम्मानित हुए थे। उस समय रामामात्य की ओर दाक्षिणात्यों की श्रद्धा घट रही थी और अपने परमगुरु तानप्पा के द्वारा प्रवर्तित नवीन सम्प्रदाय के अनुसार ग्रथित आलापों, लयों, गीतों और प्रबन्धों के आधार पर वेंकटमखी दक्षिण के संगीत को पुनः व्यवस्थित करने की दिशा में दत्तचित थे।[5]

क्षेत्रज्ञ तेलुगु ब्राह्मण थे और इनका जन्म कृष्णा जिले में घण्टशाल के समीप बसे हुए एक गाँव मुव्वापुरी में हुआ था। इन्होंने अल्प आयु में ही संगीत और साहित्य में दक्षता प्राप्त कर ली।

ये ऐसे शृंगारपूर्ण 'पदों' की रचना के लिए प्रसिद्ध हैं, जिनका अर्थ लौकिक शृंगारपरक भी हो सकता है और ईश्वरीय प्रेमपरक भी। इस दृष्टि से इनके पदों की तुलना उन ग़ज़लों से की जा सकती है, जिन्हें सुनकर सूफ़ी लोग ईश्वर-प्रेम में सिर धुनते थे और विलासी लोग अपने लौकिक प्रेमपात्र के ध्यान में मग्न हो जाते थे। यही कारण है कि इनके पद रसिकों के प्रत्येक वर्ग में अत्यन्त प्रिय हुए।

इनकी भाषा सरल, ललित और सुन्दर है, इनका साहित्य सहृदयों को रसास्वाद कराने में पूर्णतया समर्थ है। अर्थ और भाव के अनुसार इन्होंने अपने 'पदों' में रागों और तालों की योजना की है। यद्यपि ये पद नृत्य और अभिनय के लिए उपयोगी हैं, तथापि इन पदों के बिना कोई गानगोष्ठी परिपूर्ण नहीं

---

१. स्प्रिच्युअल हैरिटेज, भूमिका, पृ० ४५
२. वही, पृ० ५१
३. वही
४. देखिए : बहादुर हुसेन खाँ की जीवनी
५. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ५०-५२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मानी जाती।

अपनी रचनाओं को प्रस्तुत करने के लिए ये विभिन्न राजदरबारों में गये, सर्वत्र इन्हें सम्मान और प्रशंसा की उपलब्धि हुई।

तंजौर-नरेश विजयराघव राव के अनुरोध पर इन्होंने पाँच 'राजांकित' पदों की रचना पाँच रागों में की। ये पाँच पद 'विजयराघव पंचरत्नम्' कहलाते हैं और इन्हीं पदों को 'क्षेत्रिय पंचरत्न' भी कहा जाता है। विजयराघव राव की प्रशंसा में क्षेत्रज्ञ ने कुछ और पदों की रचना भी की है। इस दृष्टि से क्षेत्रज्ञ की गणना दरबारी गायकों में की जानी चाहिए।

उस समय औरंगज़ेब के शासन-काल का आरम्भ था। गोलकुण्डा पर अब्दुल्लाह क़ुतुबशाह, बीजापुर पर अली आदिलशाह द्वितीय और अहमदनगर पर हुसेन निज़ामशाह शासन कर रहे थे। तंजौर के बगल में ही पुलीकट और सद्रास में डच, मद्रास में अंग्रेज और पाण्डिचेरी में फ्रांसीसी डटे हुए थे।[1] क्षेत्रज्ञ सम्भवतः हिन्दू राजाओं के दरबारों में ही गये, परन्तु अपने युग की प्रवृत्तियों से उनका प्रभावित होना स्वाभाविक था।

क्षेत्रज्ञ 'गोपाल' के भक्त थे और उन्हें किसी योगी से उपदेश लेने का अवसर भी मिला था। इनके पद 'मुव्वगोपाल' मुद्रा से अंकित रहते हैं।

क्षेत्रज्ञ-रचित पदों के हस्तलिखित संग्रहों में प्रत्येक 'पद' से पूर्व उसकी रचना की पृष्ठभूमि, गायक का नाम, गान-शैली इत्यादि वस्तुएँ लिखी मिलती हैं।

शृंगारप्रधान रचनाओं के प्रणयन के कारण कुछ लोग क्षेत्रज्ञ को गीत-गोविन्दकार जयदेव का अवतार कहते हैं।

जिस युग में औरंगज़ेब मुग़ल-दरबार से संगीत का बहिष्कार कर रहा था, उस युग में क्षेत्रज्ञ जैसे लोग उत्तर भारतीय मुस्लिम दरबारों में कैसे आते? उनके युग से प्रायः सौ वर्ष पूर्व पुण्डरीक बिट्ठल जैसे दाक्षिणात्य आचार्य अकबर और उनके आश्रित मानसिंह की प्रशंसा कर ही चुके थे।

क्षेत्रज्ञ एक दृष्टि से दक्षिण भारत के अमीर ख़ुसरो कहे जा सकते हैं। ख़ुसरो ने जिस प्रकार अपनी रचनाओं से बादशाहों को भी प्रसन्न रखा और सूफ़ी सन्तों को भी रिझाया, उसी प्रकार क्षेत्रज्ञ ने राजाओं को भी रिझाया, उनकी प्रशस्ति की और अपने इष्टदेव 'गोपाल' की लीलाओं का शृंगारमय वर्णन करने के कारण वे भक्त रसिकों के भी लाड़ले बने।

क्षेत्रज्ञ निस्सन्देह व्यवहारकुशल और अलौकिक पुरुष थे।

---

१. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ५०.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुहम्मदशाह रंगीले के पश्चात्

१७३१ ई० में नादिरशाह के आक्रमण के पश्चात् मुहम्मदशाह रंगीले का मन मलीन हो गया। उसे संगीत से घृणा हो गयी। इसी मनोदशा में उसने सभी कलाकारों को दरबार से निकाल दिया। विवश होकर कलाकार दिल्ली छोड़कर जाने के लिए विवश हुए और कमालबाई जैसी सम्राट् की मुँहलगी गायिकाएँ सबके लिए सुलभ हो गयीं।[1]

मुहम्मदशाह रंगीले की मृत्यु १७४८ ई० में हो गयी। 'सदारंग' इससे पूर्व ही स्वर्गवासी हो चुके थे।[2]

दरबार में ईरानी दल के नेता सफ़दरजंग ने अवध में स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। केन्द्रीय शासन की दुर्बलता ने अनेक स्वतन्त्र राज्यों को जन्म दिया।

मुग़ल-दरबार के कुछ कलाकार रुहेला शाहज़ादा नवाब सादुल्लाह खाँ की सेवा में पहुंचे, इनमें फ़ीरोज़ खाँ 'अदारंग' और शिष्य करीमसेन और मेंहदीसेन प्रमुख थे।[3]

कालान्तर में करीमसेन हैदर अली के पास कर्नाटक चले गये और कुछ ही दिनों के पश्चात् हैदराबाद में बस गये। इनके पुत्र खुशहाल खाँ द्वितीय ने हैदराबाद में अत्यन्त सम्मान अर्जित किया और ये वहीं स्वर्गवासी हुए।[4]

कुछ कलाकार अवध पहुंचे, इनमें सैयद मीर अली जैसे प्रतिष्ठित संगीत-मर्मज्ञ व्यक्ति थे, जिन्होंने सोज़ख्वानी को एक उत्कृष्ट कला बना दिया। सेनिये कहलानेवाले कलावन्त, बीनकार और रबाबिये भी इसी युग में अवध पहुंचे। फलतः क्रमशः फ़ैजाबाद और लखनऊ संगीत के केन्द्र हो गये।[5]

उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में रीवाँ-नरेश विश्वनाथ सिंह, काशी-नरेश महाराज उदितनारायण, चरखारी-नरेश राजा रतनसिंह, रामपुर-नरेश नवाब अहमद अली खाँ, और वाजिद अली शाह गुणी एवं गुण-ग्राहक थे।[6]

हैदराबाद के निज़ामवंश ने भी संगीतज्ञों को आश्रय दिया। अवध के नवाब और हैदराबाद के निज़ाम शिया थे, अतः ध्रुवपद, खयाल, टप्पा, ग़ज़ल इत्यादि गानेवाले कलाकारों ने भी सोज़ख्वानी की ओर ध्यान दिया, क्योंकि धार्मिक कारणों से सोज़ख्वानी की माँग इन दरबारों में अधिक थी।

---

१. पुरानी दिल्ली के हालात, पृ० ६०
२. मिराति-आफ़ताबनुमा, ३६२ 'अ'
३. इन्तखाबे यादगार, पृ० १६
४. तज़किरः जाकिरीन, पृ० ४१-४२
५. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० १५-८३
६. वही, पृ० ८२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जब तक आगरा मुग़ल-साम्राज्य का केन्द्र रहा। मुग़ल-दरबार में ब्रजभाषा के कवियों और ब्रजभाषा में ध्रुवपद गानेवाले कलावन्तों का बोल-बाला रहा। केन्द्रीय शासन जब दिल्ली में आया, तब ग़ज़ल और क़व्वाली की प्रतिष्ठा पुनः बढ़ी, खयाल फला-फूला, क्योंकि दिल्ली नगरी सूफ़ी विचारधारा का प्राचीन केन्द्र रही थी। जब अवध का दरबार शक्तिशाली हुआ, तब सोज़, मर्सिये, ठुमरी और दादरे की बन आयी, हैदराबाद में सोज़ख़्वानी का रंग खूब जमा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दरबार पर जिस विचारधारा का धार्मिक या भौगोलिक प्रभाव रहा, संगीत उसी रंग में रँग गया। जिस अवध से कैक़ुबाद तक के दरबार में गायक पहुँचते और सम्मानित होते थे, उस अवध के संगीत में स्त्रैणता आ गयी। ठुमरी और दादरे में शृंगार था और सोज़ एवं मर्सिये में करुणा। पौरुष के लिए कहीं अवकाश न रहा।

अस्तु, उन्नीसवीं शती ई० के पूर्वार्द्ध से सम्बद्ध कुछ गुणियों की चर्चा मुहम्मद करम इमाम ने की है, उन्हें यदि निवासस्थानों के अनुसार वर्गीकृत कृत किया जाये, तो स्थिति इस प्रकार है—

दिल्ली :

तानरस खाँ खयाल-गायक, मौज खाँ कलावन्त, नासिर अहमद साहब बीनकार, सितारवादक नवाब गुलाम हुसेन खाँ, अलीबख्श सारंगीवादक।

मेरठ :

शादी खाँ खयाल-गायक, मुराद खाँ खयाल-गायक

बनारस :

बक़ा खयाल-गायक, मदारी खयाल-गायक, परशद्दू कथक और गायक, वाजपेयी सितारवादक, सुजान खाँ नक्कारावादक, अहमद अली शहनावादक, कल्लू ढारी सारंगीवादक, धन्नू ढारी सारंगीवादक, जतन कथक सारंगीवादक, वेनी प्रसाद कथक, चित्राबाई, इमामबाँदी, सुखबदन नर्तकी, गुलबदन नर्तकी।

चरखारी :

रामानुज वैरागी, नारायणदास वैरागी खयाल-गायक, रहीमनबाई, सुन्दरबाई, लतीफ़न नर्तकी।

कालपी :

नूर खाँ, मुगल खाँ ध्रुपवाद-गायक।

आगरा :

खुरशीदबाई, चन्दाबाई

शाहजहानाबाद :

इमामबख्श संगीत-मर्मज्ञ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दक्षिण :

नूरखाँ चौगोशिया, कमलाबाई, हीराबाई ।

अजीमाबाद :

अमीर अहमद साहब टप्पा-गायक ।

पेशावर :

सेढ़ूबाई गायिका ।

लाहौर :

बल्लो ।

फ़ैज़ाबाद :

गुलाम रज़ा सितारवादक ।

बाँदा :

गुलाम मुहम्मद सितारवादक, इब्राहीम खाँ सारंगीवादक, मुहम्मद अली सारंगीवादक, जहूर खाँ सारंगीवादक, घसीट खाँ नक़्क़ारची, कुदऊ सिंह पखावजी ।

इलाहाबाद :

बाबू रामसहाय, बाबू ईश्वरीप्रसाद, रामसहाय कथक ।

ओनाम :

बन्दीजान, मीर रोशन अली, हुसेनीबाई (बन्दी की बस) घूरन ख़ाँ नक़्क़ारची, झब्बू नक़्क़ारची, अघावन नक़्क़ारची ।

फर्रुख़ाबाद :

लज्ज़तबख़्श, नवाब हकूमत जंग, बरकत अली सँवलिया ।

बरेली :

क़ुतुब अली 'कुतुबुद्दौला' ।

झाँसी :

राजा रघुनाथसिंह नक़्क़ारा ।

ग्वालियर :

चन्द्रभागा ख़याल-गायिका ।

मुहम्मद करम इमाम ने अवशिष्ट कलाकारों को प्रायः लखनऊ-निवासी कहा है, क्योंकि वे कई पीढ़ी से वहाँ बस गये थे ।

रामपुर-दरबार में आश्रित उन्नीसवीं शती के कुछ प्रमुख कलाकार

रामपुर-नवाब अहमद अली खाँ (राज्य-काल १८२२-४० ई०) के युग में, शाह फ़ख़रुद्दीन (मृत्यु १७७७ ई०) के ख़लीफ़ा मौलाना जमालुद्दीन चिश्ती रामपुर पहुँच चुके थे । नवाब साहब को इन पर अत्यन्त श्रद्धा थी । अतः

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

क़व्वाली तो रामपुर में पहुँची ही।[1] फ़ीरोज़ खाँ 'अदारंग', मेंहदीसेन और करीम सेन पहले ही नवाव अहमद अली खाँ के पूर्वजों का आश्रय ले चुके थे। १८५७ ई० में वाजिद अली शाह के पतन के पश्चात् रामपुर के नवाबों की गुणग्राहकता के कारण अनेक गुणियों ने रामपुर-दरबार का आश्रय लिया। उनमें से कुछ की चर्चा यहाँ की जा रही है।

बहादुर हुसेन खाँ

ये प्यार खाँ के भांजे और दत्तक पुत्र, छज्जू खाँ के पोते मियाँ मनरंग के परपोते और नेमत खाँ सदारंग के सरपोते थे। इनके मामा और धर्मपिता प्यार खाँ ने इन्हें पाला-पोसा और 'सुरसिंगार' की शिक्षा दी। ये वाजिद अली शाह के लाड़ले थे और इनकी उपाधि 'ज़ियाउद्दौलः' थी।

रामपुर के गुणग्राही नवाब यूसुफ़ अली खाँ के राज्य-काल (१८५५-६४ ई०) में इन्होंने रामपुर-दरबार का आश्रय लिया और २६ अप्रैल, १८५७ ई० को इनकी नियुक्ति मुसाहब के रूप में हुई। जनवरी १८७१ ई० में इनका स्वर्गवास हुआ। रामपुर के उत्तर की ओर डूंगरपुर दरवाजे से आधा मील दूर एक बाग़ में बहादुर हुसेन खाँ की समाधि है। यह बाग़ नवाब यूसुफ़ अली खाँ ने बहादुर हुसेन खाँ को इनाम में दिया था।

बहादुर हुसेन खाँ ने सैकड़ों तरानों और सरगमों की रचना की। प्रसिद्ध 'सनद पिया' (बरेली-निवासी तवक़्कुल हुसेन खाँ) ने बहादुर हुसेन खाँ की अनुमति से अनेक तरानों में बोल रख दिये, इसीलिए 'सनद' की अनेक ठुमरियों में लय-वैचित्र्य के साथ राग का टकसालीपन भी है।

नवाब यूसुफ़ खाँ के सौतेले भाई नवाब हैदर अली खाँ, बहादुर हुसेन खाँ साहब के शिष्यों में प्रमुखतम थे। वे महान् विचारक, आख्यायिका-लेखक, शाइर, गायक और सुरसिंगारवादक थे। हैदर अली खाँ की शिक्षा पूर्ण हो जाने के पश्चात् बहादुर हुसेन खाँ ने स्वयं बजाना छोड़ दिया था और कहते थे कि जिसे मेरी जवानी का सुरसिंगार सुनना है, वह हैदर को सुन ले।

इस पुस्तक के लेखक के प्रपितामह महापण्डित दत्तराम बहादुर हुसेन खाँ के रामपुर पहुँचने से कहीं पूर्व यूसुफ़ अली खाँ के दरबार के राजपण्डित थे, ये प्रसिद्ध तान्त्रिक, कवि, ज्योतिर्विद् और महान् वैणिक थे। दत्तरामजी बहादुर हुसेन खाँ के पूज्य, घनिष्ठ और अभिन्न सखा थे। 'दाग़' और 'अमीर' जैसे शाइर इस युग में रामपुर-दरबार की शोभा बढ़ा रहे थे और दत्तरामजी के

---

१. इस्लाम की ज़िन्दा तहरीक चिश्तियत, पृ० २०२, ले० अब्दुल ग़फ़ूर ग़ोरी
२. मुसद्दस बेनज़ीर, पृ० ८०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गुरुबन्धु महाकवि 'ग्वाल' भी रामपुर में थे।

अमीर ख़ाँ बीनकार और ध्रुवपद-गायक

ये उमराव ख़ाँ बीनकार के बेटे थे, इन्हें बहादुर हुसेन ख़ाँ की भांजी ब्याही थी।

अमीर ख़ाँ का जन्म ज़िला बाँदा में हुआ और १८५७ ई० के पश्चात् ये रामपुर-दरबार के आश्रित हुए। १८७२ ई० में ये नबाव कल्बे अली ख़ाँ के साथ हज करने गये। इनका मकान रामपुर के एक मुहल्ले कड़ा जलालुद्दीन ख़ाँ में था, जो अब केवल एक टीला रह गया है।[1]

१३ अगस्त, १८८० ई० को इनका स्वर्गवास हैजे से हुआ। शाह रफ़ीक़ के तकिये के क़ब्रिस्तान में ये दफ़न हुए।[2]

'मअदन्-उल्-मूसिक़ी' का लेखक मुहम्मद करम इमाम अमीर ख़ाँ का शिष्य था। रामपुर-दरबार के प्रसिद्ध उस्ताद वज़ीर ख़ाँ इन्हीं अमीर ख़ाँ के एकमात्र पुत्र थे, जो बचपन में ही अनाथ हो गये। नवाब हैदर अली ख़ाँ ने वज़ीर ख़ाँ को संगीत की शिक्षा दी।

बाक़र अली ख़ाँ क़व्वालबच्चे

ये दिल्ली के निवासी थे। ख़याल अच्छा गाते थे। १६ सितम्बर, १८६८ ई० को रामपुर के नवाब कल्बे अली ख़ाँ के दरबार में नियुक्ति हुई। इनका वेतन एक सौ रुपये मासिक था। १८७५ ई० में इनका जब देहान्त हुआ, तब ये सत्तर वर्ष के थे। शाह रफ़ीक़ के तकिये के क़ब्रिस्तान में दफ़न हुए।[3]

हैदरबख़्श सारंगीवादक

ये पंजाब-निवासी और सारंगीवादन में कुशल थे। यूसुफ़ अली ख़ाँ के राज्य-काल में इन्होंने रामपुर-दरबार का आँश्रय लिया। इनका देहान्त १८७५ ई० में हुआ। अस्सी वर्ष की आयु हुई। शाह रफ़ीक़ के तकिये के क़ब्रिस्तान में दफ़न हुए।[4]

मीर बुनियाद हुसेन जैसे गुणी सारंगीवादक का निर्माण हैदरबख़्श के शिक्षण-प्रशिक्षण के द्वारा ही हुआ। मीर बुनियाद हुसेन का स्वर्गवास १९२६ ई०

---

१. मुसद्दस बेनज़ीर, पृ० ७९
२. वही
३. वही, पृ० ८०
४. वही, पृ० ८१

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में हुआ।[1] स्व० भातखण्डे ने मीर बुनियाद हुसेन की अत्यन्त प्रशंसा की है।

मौघू खाँ तबलावादक

ये फ़र्रुखाबाद के रहनेवाले और कुशल तबलावादक थे। नवाब कल्बे अली खाँ के राज्य-काल (१८६४-८७ ई०) में इन्होंने रामपुर-दरबार का आश्रय लिया। इन्हीं के राज्य-काल में मौघू खाँ पचहत्तर वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हुए। क़ब्र पूर्वोक्त क़ब्रिस्तान में है।[2]

अमानी जान गायिका

ये कानपुर की निवासिनी थीं। नवाब के साथ ये भी हज्ज करने गयी थीं। इनका स्वर्गवास १८९३ ई० में अलीगढ़ में हुआ। वहीं इन्हें दफ़न किया गया। ये खयाल और ठुमरी सुन्दर ढंग से गाती थीं।

इनका रंग काला था। एक बार नवाब ने इनसे पूछा : 'जब अल्लाह मियाँ रूप बाँट रहे थे, तब तुम कहाँ थीं?' उत्तर मिला : 'क़िस्मत के बाज़ार में।' नवाब इस हाज़िरजवाबी से बहुत खुश हुए।[3]

जादी गायिका

इन्होंने नवाब यूसुफ़ अली खाँ के राज्य-काल में दरबार का आश्रय लिया। इनका कण्ठ अत्यन्त मधुर और गानशैली उत्कृष्ट थी। १८८३ ई० इनका देहान्त हुआ और ये रामपुर में ही दफ़न हुईं।[4]

झूमन गायिका

ये पटना से आयी थीं। मुल्ला ज़रीफ़ की बज़रिया में रहती थीं। साठ वर्ष की आयु में मरीं।[5]

मम्मी गायिका

ये टप्पा गाने में कुशल थीं। इनका जन्म रामपुर में ही हुआ। ये हशमत जान की छोटी भावज थीं। दिल्ली में इनका देहान्त हुआ।[6]

नवाब हैदर अली खाँ

ये नवाब यूसुफ़ अली खाँ के पुत्र थे और 'तूती' नामक गायिका के गर्भ से

---

१. मुसद्दस, पृ० ८१
२. वही
३. वही, पृ० ७७-७८
४. वही, पृ० ८१
५. वही
६. वही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इनका जन्म १८४६ ई० में हुआ था।

हैदर अली खाँ कई भाषाओं में निष्णात, आख्यायिका-लेखक, शाइर और संगीतमर्मज्ञ होने के साथ-ही-साथ कुशल सुरसिंगारवादक थे।

१८६९ ई० में जब ड्यूक ऑव् एडिनबरा भारत आये, तब हैदर अली खाँ भी अपने पिता के साथ उनसे मिलने गये थे।[1] १८७३ ई० में इनके द्वारा लिखित एक आख्यायिका-ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका था।[2]

बासत खाँ और उनके भतीजे सादिक़ अली खाँ और पूर्वचर्चित बहादुर-हुसेन खाँ हैदर अली खाँ के संगीत-गुरु थे।[3]

हैदर अली खाँ के दरबार में बाक़र अली खाँ, क़ाज़म अली खाँ खयालिये, शोरी के शिष्य मियाँ सुलेमान, क़ुतुबुद्दौला, रौशन खाँ डागर, वली मुहम्मद खाँ, बड़े मुहम्मद खाँ, क़ुतुब अली खाँ, और रजब अली खाँ जैसे गुणी भी उपस्थित रहते थे।[4]

हैदर अली खाँ ने यह विचार किया कि संगीत-विद्या पर ऐसा ग्रन्थ लिखा जाये, जो विस्तृत और प्रामाणिक हो, जिसमें संगीत की समस्त जटिल समस्याओं का समाधान हो, पूर्ववर्त्ती विचारकों द्वारा गुप्त रखे हुए रहस्यों का उद्‌घाटन भी जिस ग्रन्थ में हो और जिसमें शताब्दियों से चले आ रहे मतभेदों का निराकरण भी हो। हैदर अली खाँ ने इस ग्रन्थ का लेखन आरम्भ किया, परन्तु उसे अपूर्ण छोड़कर ही वे १९०२ ई० में स्वर्गवासी हो गये।[5]

भातखण्डेजी के संगीत-गुरु वज़ीर खाँ को वीणावादन की सम्पूर्ण शिक्षा नवाब हैदर अली खाँ ने ही दी थी। वज़ीर खाँ अपने पिता अमीर खाँ की मृत्यु (१८८० ई०) के समय सात-आठ वर्ष के थे। बहादुर हुसेन खाँ की मृत्यु से एक वर्ष पूर्व (जनवरी १८७९ ई०) में ही हो चुकी थी। नवाब हैदर अली खाँ (जन्म-काल १८४६ ई०) इस समय चौंतीस वर्ष के थे, अतः उन्होंने ही वज़ीर खाँ (मृत्यु-काल १९२६ ई०) को प्रशिक्षित किया।

नवाब हैदर अली खाँ के दूसरे प्रसिद्ध शिष्य उनके अपने ही पुत्र साहबज़ादा सआदत अली खाँ 'छम्मन साहब' थे, जिन्होंने भातखण्डेजी को रामपुर-परम्परा के रहस्य समझाये।

संगीत की शिक्षा लेने में हैदर अली खाँ को अत्यन्त कष्ट सहना पड़ा था।

---

१. इन्तख़ावे यादगार, पृ० ९४
२. वही, पृ० १२०
३. नग़मातुल्-हिन्द, पृ० ३
४. वही, पृ० ३-४
५. वही, पृ० ५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उनकी प्रबल इच्छा थी कि भावी पीढ़ियों के लिए संगीत-शिक्षण का मार्ग प्रशस्त हो जाये। वे प्रत्येक अधिकारी व्यक्ति को संगीत की शिक्षा देना चाहते थे, क्योंकि उन्हें संगीतजीवियों का विद्यागोपन अच्छा न लगता था। उनकी इसी प्रवृत्ति का परिणाम था कि स्व० भातखण्डे और स्वर्गीय अलाउद्दीन खाँ जैसे परदेसी व्यक्तियों को रामपुर-दरबार से भरपूर ज्ञान मिला।

साहबजादा सम्रादत अली खाँ 'छम्मन साहब'

इनका जन्म १८७८ ई० में 'लाली' नामक गायिका के गर्भ से हुआ, जो भैया गनपतराव की माँ चन्द्रभागा की बहन थीं। इन्हें कई भाषाओं का ज्ञान था और अंग्रेजी भाषा पर भी इनका अच्छा अधिकार था।

हैदर अली खाँ साहब ने इन्हें सुरसिंगारवादन की शिक्षा दी थी।[1] इन्हें सत्रह सौ होरियाँ और ध्रुवपद याद थे।[2] सुरसिंगार वाद्य इनके साथ ही संसार से उठ गया।[3] हैदर अली खाँ की मृत्यु के पश्चात् ये बासत खाँ साहब के पुत्र मुहम्मद अली खाँ साहब से भी सीखते रहे।

भातखण्डेजी छम्मन साहब को अपना गुरु मानते थे। छम्मन साहब के कारण ही भातखण्डेजी बहुधा रामपुर जाते थे। उत्तर भारत के रागों के रहस्य का ज्ञान भातखण्डेजी को छम्मन साहब के अनुग्रह से ही हुआ। छम्मन साहब अनेक वाद्य बजाते थे।

१९१८ ई० में जब दिल्ली में अखिल भारतीय संगीत-परिषद् का आयोजन हुआ तब छम्मन साहब ने मलार के प्रकारों पर एक निबन्ध पढ़ा था।

छम्मन साहब एक कुशल रचनाकार थे। 'नगमात्-उल्-हिन्द' में उनके द्वारा रचित कुछ सरगमें हैं और 'क्रमिक-पुस्तक-मालिका' में 'सादत' नाम से अंकित रचनाएँ भी छम्मन साहब की ही हैं।

छम्मन साहब की एक पुस्तक 'रहनुमाए हारमोनियम' है, जिसमें हारमोनियम बजाने की विधि है और 'बन्दिश' की अनेक ठुमरियाँ स्वर-लिपि सहित संगृहीत हैं।

छम्मन साहब की दूसरी रचना 'फ़लसफ़ए मूसिक़ी' है, जिसका केवल स्वराध्याय रामपुर की रज़ा लायब्रेरी में है।

१९२२ ई० में छम्मन साहब का स्वर्गवास हुआ।

---

१. नग़मातुल्-हिन्द, पृ० ४
२. वही
३. वही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विष्णुनारायण भातखण्डे

स्व० पं० विष्णुनारायण भातखण्डे का जन्म १० अगस्त, १८६० ई० को हुआ और स्वर्गवास १९ सितम्बर, १९३६ ई० को। ये ग्रेजुएट थे और इन्होंने क़ानून की परीक्षा एल्० एल्० बी० भी उत्तीर्ण की।

भातखण्डेजी के जन्म से ढाई-तीन वर्ष पूर्व दिल्ली के सादिक़ अली खाँ 'सरमाय : इशरत' नामक उर्दू-ग्रन्थ लिख चुके थे, जिसमें हिन्दुस्तानी रागों का वर्गीकरण दस ठाठों में किया गया था। भातखण्डेजी को यद्यपि उर्दू नहीं आती थी, तथापि उन्होंने अपने मुंशी से यह ग्रन्थ पढ़वाकर सुना था।[1]

प्रायः सन् १८७५ ई० में भातखण्डेजी ने प्रसिद्ध सितारवादक पन्नालाल जी के प्रशिष्य श्री बल्लभदास दामुल[2] तथा अली हुसेन खाँ बीनकार के भाई मुहम्मद हुसेन खाँ से कुछ वीणा-वादन की शिक्षा प्राप्त की। अली हुसेन खाँ और मुहम्मद अली खाँ दोनों ही बहादुर हुसेन खाँ के शिष्य थे।[3] इस प्रकार अपनी किशोरावस्था में भातखण्डेजी रामपुर-परम्परा के गुणियों के शिष्य हो चुके थे।

१८८४ ई० में भातखण्डेजी बम्बई की 'गायन उत्तेजक मण्डली' के सदस्य हो गये। १८९० ई० में उन्होंने संगीत-ग्रन्थों का अध्ययन आरम्भ किया।

सन् १९०४ ई० से भातखण्डेजी ने भ्रमण आरम्भ किया। वे मद्रास, तंजोर, मदुरा, रामनाडु, रामेश्वरम्, त्रिवेन्द्रम्, त्रिचनापल्ली, मैसूर, बंगलोर इत्यादि स्थानों में गये। १९०६ ई० में वे मनरंग घराने के प्रसिद्ध उस्ताद मुहम्मद अली खाँ से जयपुर में मिले। सूरत, भड़ोंच, बड़ौदा, नवसारी, अहमदाबाद, राजकोट, बीकानेर, जामनगर, जूनागढ़, भावनगर, शिकारपुर, लाहौर, सिन्ध और कच्छ में भी वे घूमे। १९०२ ई० में वे नागपुर, कलकत्ता, जगन्नाथ, विजयनगर, हैदराबाद इत्यादि स्थानों में गये।[4]

रामपुर के नवाब हामिद अली खाँ (राज्य-काल १८८९-१९३० ई०) प्रतिवर्ष बम्बई जाते थे; उनके साथ पण्डित, संगीतज्ञ और कवि सदा रहते थे। वज़ीर खाँ भी सदैव साथ जाया करते थे। इस प्रकार बीसवीं शती ई० के प्रथम दशक में भातखण्डेजी का सम्बन्ध रामपुर-दरबार से भलीभाँति हो गया।

---

१. भातखण्डे-संगीतशास्त्र, भाग-३, पृ० १३३

२. 'संगीत', अगस्त १९६० ई०, पृ० ९

३. भातखण्डे-संगीतशास्त्र, भाग-४, पृ० २२४

४. 'संगीत', अगस्त १९६० ई०, पृ० ६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मियाँ के सारंग की शिक्षा भातखण्डेजी को वज़ीर खाँ से मिली थी।[1] इसका लक्षण 'लक्ष्य-संगीत' (रचना-काल १६०६ ई०) में है। अतः यह सिद्ध है कि भातखण्डेजी १६०६ ई० से पूर्व वज़ीर खाँ के सम्पर्क में आ चुके थे।

यद्यपि भातखण्डेजी बिलावल ठाठ के स्वरों को शुद्ध मानते हैं, तथापि उन्होंने राग-वर्गीकरण में एमन को सर्वप्रथम रखकर 'कल्याण' को प्रथम ठाठ माना है।[2] यह विशुद्ध रामपुरीय प्रभाव है। छम्मन साहब भी कल्याण ठाठ को ही आदिम ठाठ मानते हैं।[3]

रामपुर के गुणी स्थूलरूप में रागों का वर्गीकरण दस ठाठों में पहले से करते आये हैं। भातखण्डेजी के एक मुस्लिम गुरु गले की तैयारी कराने के लिए शिष्य का गला पहले दस ठाठों में फिरवा दिया करते थे।[4]

सन् १६०८ ई० में काले नज़ीर खाँ बम्बई पहुँच चुके थे। ये ध्रुवपद, सादरा, ख़याल सभी कुछ अच्छा गाते थे। ये भातखण्डेजी के घनिष्ठ मित्र थे, 'लक्ष्य-संगीत' की रचना इस घनिष्ठता का ही परिणाम है।

१६१० ई० से ठाकुर नवाब अली खाँ के साथ भातखण्डेजी का पत्र-व्यवहार आरम्भ हुआ और १६१३ ई० में ठाकुर नवाब अली खाँ भातखण्डेजी से मिलने बम्बई गये और बालुकेश्वर में भातखण्डेजी के आवास पर उनसे मिले। इस मुलाक़ात के समय पं० श्रीकृष्ण नारायण रातनजनकर भी थे और उस समय उनकी आयु केवल चौदह वर्ष थी। भातखण्डेजी की सेवा में रातनजनकरजी १६११ ई० में पहुँचे थे।

सन् १६१० ई० से १६१४ ई० तक भातखण्डे-संगीत-पद्धति के तीन भाग प्रकाशित हुए। ठा० नवाब अली खाँ का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'मुआरिफ़ुन्नग़मात' १६१३ ई० में प्रकाशित हुआ।

हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति के तृतीय भाग में नग़माते आसफ़ी', 'तुहफ़तुल्हिन्द' और 'सरमायः इशरत' जैसे ग्रन्थों की सामग्री का उपयोग ठा० नवाब अली खाँ के साथ भातखण्डेजी की घनिष्ठ मैत्री का ही परिणाम है।

नवाब अली खाँ के प्रयत्न से भातखण्डेजी और छम्मन साहब में सम्पर्क स्थापित हुआ और शीघ्र ही घनिष्ठता में परिवर्तित हो गया। उत्तर भारत के रागों के रहस्यों का ज्ञान भातखण्डेजी को छम्मन साहब के अनुग्रह से ही हुआ। रामपुर-परम्परा के रहस्यों से अवगत होने के लिए ही भातखण्डेजी रामपुर-

---

१. भातखण्डे-संगीतशास्त्र, भाग-४, पृ० २६६
२. लक्ष्य-संगीत
३. नग़मातुल्-हिन्द, पृ० ४३
४. भातखण्डे-संगीतशास्त्र, भाग-२, पृ० ३४७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नरेश नवाब हामिद अली खाँ, खाँ साहब मुहम्मद अली खाँ और वज़ीर खाँ के शिष्य विधिवत् हुए। यह घटना १९१४ ई० की है। इस समय भातखण्डेजी की आयु पचपन वर्ष थी। वे अब तक भारतवर्ष-भर में घूम चुके थे, परन्तु रामपुर-परम्परा ने ही उनकी जिज्ञासा को तृप्त किया।

हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति के चतुर्थ भाग का प्रकाशन १९३६ ई० में हुआ, जिसमें भातखण्डेजी ने सैकड़ों स्थलों पर रामपुर-परम्परा का ऋण स्वीकृत किया है।[1]

छम्मन साहब की मृत्यु १९२२ ई० में हुई और 'क्रमिक-पुस्तक-मालिका' का प्रकाशन इस समय के पश्चात् हुआ। मालिका के सभी भागों में रामपुर की सामग्री का उपयोग खुलकर हुआ है। यह सबकुछ होने पर भी यह तथ्य लोगों को आश्चर्यचकित कर देता है कि भातखण्डेजी ने बन्दिशों के साथ-साथ उन गुणियों का नाम क्यों नहीं लिखा, जिनसे वे बन्दिशें प्राप्त हुई थीं।

भातखण्डेजी जब किसी गुणी से कोई बन्दिश सीखते, तो उसकी स्वर-लिपि लिखते। उस्ताद को सुनाते कोई भूल होती तो उसे ठीक करते और उस्ताद के सन्तुष्ट होने पर ही उस बन्दिश को संग्रह में स्थान देते थे।

भातखण्डेजी की ये फाइलें और डायरियाँ कहीं सुरक्षित हैं और इनका प्रकाशन न जाने क्यों नहीं होता। श्री जयदेवसिंह ने यह सामग्री देखी है और उन्हें इसके अप्रकाशित रहने पर खेद है। वास्तव में ये फाइलें और डायरियाँ वे दस्तावेज़ हैं, जो भातखण्डेजी पर विभिन्न गुणियों का ऋण सिद्ध करती है।[2]

दक्षिण में लक्षण-गीतों की प्राचीन-परम्परा थी। भातखण्डेजी ने पुरानी बन्दिशों की स्वर-लिपि पर बोल रखकर अपने लक्षण-गीतों की रचना की, जिससे कि उन लक्षण-गीतों के राग-पक्ष पर आक्षेप न किया जा सके। 'क्रमिक-पुस्तक-मालिका' में लक्षण-गीत भी हैं और उनकी आधारभूत बन्दिशें भी।

भातखण्डेजी एक कुशल, सुदर्शन, वाक्पटु एवं परिश्रमी व्यक्ति थे। बम्बई की एक अत्यन्त भद्र एवं साधन-सम्पन्न देवी का सर्वविध सहयोग उन्हें प्राप्त था। अनेक राजाओं और रईसों का सहयोग उन्हें अपनी व्यवहारकुशलता के कारण मिला। इनमें रामपुर-नरेश नवाब हामिद अली खाँ तथा उनके दरबार का सहयोग सर्वाधिक था। छम्मन साहब और ठाकुर नवाब अली खाँ के कारण अवध के ताल्लुकेदारों से भातखण्डेजी की घनिष्ठता हुई। फलतः उत्तर प्रदेश

---

१. देखिए : 'संगीत-चिन्तामणि' में संगृहीत लेख 'रामपुर-परम्परा और भातखण्डे'
२. 'संगीत', भातखण्डे-स्मृति अंक, पृ० १०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की राजधानी लखनऊ में 'मैरिस कालेज' की स्थापना हुई।

महाराष्ट्र में उत्पन्न भातखण्डेजी को उत्तर प्रदेश ने आदर, सम्मान, गुण, धन और मैरिस कॉलेज देकर उन्हें 'अवतार' बना दिया, परन्तु सम्भवतः समयाभाव से भातखण्डेजी को यह छोटी-सी बात लिखने का अवसर न मिला कि बहादुर हुसेन खाँ और वज़ीर खाँ की क़ब्रें कहाँ हैं? न उन्हें इस बात का ही ध्यान आया कि इन लोगों के समाधि-स्थल पर भी कोई उत्सव होना चाहिए या इन लोगों का भी कोई स्मृति-दिवस मनाया जाना चाहिए।

भातखण्डेजी के कार्यकाल में अनेक महाराष्ट्रीय लेखकों से उनकी टक्कर हुई। प्रत्येक पक्ष दृढ़तापूर्वक खण्डन-मण्डन में प्रवृत्त था। अपने पक्ष के समर्थन के लिए भातखण्डेजी ने 'लक्ष्य-संगीत' का आधार लिया और पर्याप्त समय तक 'लक्ष्य-संगीत' के लेखक का नाम गुप्त रखा। मि० क्लेमेण्ट्स और राव साहब देवल के श्रुति-स्वर-विवरण के सन्दर्भ में उन्होंने विष्णु दिगम्बरजी का भी उपहास किया।[1]

अस्तु, मैरिस कालेज और भातखण्डे-संगीत-विद्यापीठ श्री भातखण्डे के विचारों के प्रचार का केन्द्र बने। भातखण्डे-साहित्य का अधिकांश भाग मराठी भाषा में लिखा गया था, अतः उसकी प्रतिक्रिया महाराष्ट्र में हुई। उस साहित्य का हिन्दी अनुवाद जब हुआ, तब उस साहित्य की प्रतिक्रिया सार्वदेशिक रूप में हुई। बड़ी मनोरंजक बात यह है कि 'भातखण्डे-संगीत-विद्यापीठ' की परीक्षा के पाठ्य-क्रम में भातखण्डेजी का मराठी साहित्य था, जिससे मराठी न जानने-वाले विद्यार्थी संगीत-जगत् में पिछड़ गये।

भातखण्डेजी ने प्राचीन शास्त्रकारों को 'धूर्त' कहा है।[2] धूर्त शब्द का अर्थ 'मक्कार' या 'चालाक' होता है। मुनियों अथवा समर्थ आचार्यों को 'धूर्त' कहा जाना आस्तिक भारतीयों का शिष्टाचार नहीं है। भातखण्डेजी संगीत से अपरिचित 'शास्त्री' लोगों की सहायता से 'भरत' और 'मतंग' जैसे मुनियों और शार्ङ्गदेव जैसे आचार्यों की वाणी का रहस्य समझना चाहते थे,[3] जिनमें सफलता त्रिकाल में भी असम्भव थी। इस प्रयोजन में असफल होने पर भातखण्डेजी ने प्राचीन शास्त्रकारों को ही 'धूर्त' कह डाला।

वास्तव में मूर्च्छना-पद्धति के ग्रन्थों पर गम्भीर विचार करना न तो भातखण्डेजी का प्रयोजन था और न वे इसके अधिकारी थे। वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी जैसे पारिभाषिक शब्दों का वास्तविक तात्पर्य समझने के

---

१. प्रो० जी० एच० रानडे, 'संगीत', अगस्त १९६० ई०, पृ० २८
२. हिन्दुस्तानी संगीत-पद्धति, द्वितीय भाग, मराठी संस्करण, पृ० २
३. वही, तृतीय भाग, हिन्दी अनुवाद, पृ० ६२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लिए उनके पास अवकाश न था। नाट्यशास्त्र पर अभिनवगुप्त की टीका का संगीत-सम्बद्ध भाग और महाराणा कुम्भा का 'संगीतराज' जैसे ग्रन्थ भातखण्डे जी के जीवन-काल में प्रकाशित न हुए थे, अतः भातखण्डेजी ने भरत, मतंग, शार्ङ्गदेव, कल्लिनाथ इत्यादि के विषय में जो भ्रान्त विचार प्रस्तुत किये हैं, उनकी आज उपेक्षा की जानी चाहिए।

'क्रमिक-पुस्तक-मालिका' के विभिन्न भागों की प्रस्तावना के पश्चात् भात-खण्डेजी के हस्ताक्षर नहीं हैं। कुछ लोगों का कथन है कि ये प्रस्तावनाएँ भातखण्डेजी द्वारा लिखित न होकर उनके किसी शिष्य के द्वारा लिखी गयी हैं। इन प्रस्तावनाओं में 'भरत' के मत्थे कुछ श्लोकों को मढ़ दिया गया है, जो वेंकटमखी या शार्ङ्गदेव के हैं।

अनेक रागों का लक्षण करते समय भातखण्डेजी ने यह लिखा कि अमुक राग में ये-ये राग मिले हैं। कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे मिले हैं, इसका विवेचन नहीं किया। यदि किया होता, तो विद्यार्थियों में विचार करने की प्रवृत्ति जागती।

'क्रमिक-पुस्तक-मालिका' में प्रकाशित अनेक बन्दिशों का साहित्य खण्डित, भ्रष्ट अथवा असंगत है। इस साहित्य का परिशोधन करने की आवश्यकता है।

हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धति को भातखण्डेजी ने स्वयं 'हितोपदेश' जैसा कर डाला है। भातखण्डेजी के सहस्रशः उपासक इसका पारायण तक नहीं करते। प्रत्येक राग की दो-दो, तीन-तीन बन्दिशें याद करके अपने शिष्यों को वही बन्दिशें रटाते रहते हैं। यह भातखण्डेजी के साथ न्याय नहीं है।

अपने जीवन के अन्तिम काल में भातखण्डेजी की उग्रता कम हो गयी थी। प्राचीन आचार्यों के प्रति अपशब्दों के प्रयोग पर उन्हें खेद था और वे 'संगीत-रत्नाकर' को व्याख्या के योग्य मानने लगे थे।[1]

रामपुर-परम्परा दस ठाठों को राग-वर्गीकरण का आधार मानती थी, परन्तु यदि ठाठों की संख्या अधिक मानी जाये, तो उसे कोई आपत्ति नहीं थी, यही दृष्टिकोण भातखण्डेजी का है।

भातखण्डे-साहित्य के प्रकाशन से पूर्व रामपुर के गुणी रामपुर के बैण्ड के लिए स्वर-लिपि तैयार करते थे, यही स्वर-लिपि कुछ परिवर्तन के साथ भात-खण्डेजी ने प्रचलित की।

रागों के समय का चक्र भातखण्डेजी को किसी ग्रन्थ से नहीं, रामपुर-परम्परा से मिला था।

भातखण्डेजी ने अनेक स्थानों पर लिखा है कि गायकी सीखने के लिए किसी सद्गुरु की शरण लेनी चाहिए और प्रायोगिक शिक्षा गुरुमुख से ही प्राप्त

---

१. हिन्दुस्तानी-संगीत-पद्धति, उपसंहार भाग

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करनी चाहिए। उन्होंने कभी यह दावा नहीं किया कि संगीत के विद्यालय श्रेष्ठ कलाकार उत्पन्न कर सकेंगे।

जो भी हो, भातखण्डेजी पर रामपुर-परम्परा को गर्व है। वे श्रद्धेय और वन्द्य हैं।

(परिशिष्ट 'अ'—कलाकारों के वर्ग)

कलावन्त

अबुल् फ़ज़्ल के अनुसार उस वर्ग के कलाकार 'कलावन्त' कहलाते थे, जिनका कार्य प्रधानतया 'ध्रुवपद' गाना था।[1] मानसिंह तोमर ने ब्रजभाषा के माध्यम 'ध्रुवपद' को नवजीवन दिया,[2] अतः यह स्पष्ट है कि कलावन्तों की संख्या ग्वालियर में अधिक होती। अबुल् फ़ज़्ल के अनुसार मानसिंह तोमर ने ऐसी गेय वस्तुओं के संग्रह का निर्माण किया, जो जनता के प्रत्येक वर्ग को प्रिय थीं।[3]

अकबरी दरबार में ग्वालियर से आये हुए कलावन्त तानसेन, बाबा रामदास, सुबहान खाँ, सुरज्ञान खाँ, मियाँ चाँद, सुबहान खाँ के भाई विचित्र खाँ, मियाँ लाल, तानसेन के पुत्र तानतरंग खाँ, सरोद खाँ, नायक चरजू, सूरदास, चाँद खाँ जैसे कलाकार गायक थे, इन्हें कलावन्त कहा जा सकता है। ग्वालियर के वीर-मण्डल खाँ स्वरमण्डलवादक, शिहाब खाँ बीनवादक और परवीन खाँ भी बीन-वादक थे। इनकी गणना भी कलावन्तों में ही हो सकती है।

ध्रुवपद-गायक लाल खाँ, रंग खाँ, धर्म्मदास, तुलसीराम, बाज़ीद खाँ, खुश-हाल खाँ, वसन्ती, बख्त खाँ गुजराती की गणना कला की दृष्टि से कलावन्तों में ही होगी।

औरंगजेब के युग में हम सुखीसेन कलावन्त को रबाबवादक के रूप में पाते हैं। हो सकता है कि कण्ठ अच्छा न होने के कारण इन्होंने रबाब बजाना आरम्भ किया हो अथवा कोई और कारण हो।

मुहम्मदशाह रंगीले के युग में नेमत खाँ 'सदारंग', रहीमसेन तथा तानसेन (तृतीय) हमें ध्रुवपद-गायक के रूप में मिलते हैं। सदारग एवं उनके भतीजे और दामाद फ़ीरोज़ खाँ 'अदारंग' ध्रुवपद-गायक भी हैं एवं बीनकार भी।

उन्नीसवीं शती में छज्जू खाँ, उनके पुत्र प्यार खाँ, बासत खाँ और जाफ़र खाँ ध्रुवपद-गायक भी हैं और रबाबिये भी। उमराव खाँ, तथा उनके पुत्र अमीर खाँ और रहीम खाँ ध्रुवपद-गायक भी हैं और बीनकार भी। मौज खाँ

---

१. आ० अ०, ख०-२, पृ० ७३४
२. आ० अ०, ग्लैड०, पृ १३०
३. वही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भी इस युग में ध्रुवपद-गायक ही हैं।

यद्यपि तानसेन ध्रुवपद-गायक और शिहाब खाँ बीनकार दोनों ही अकबरी दरबार में ग्वालियरवासी कलाकार हैं, तथापि ये सजातीय नहीं प्रतीत होते थे। तानसेन ने अपने पुत्र बिलास खाँ की लड़की ग्वालियर के ही लाल खाँ को दी, जोकि गायक थे, बीनकार नहीं। लाल खाँ के पुत्र खुशहाल खाँ, बिसराम खाँ और रसबैन खाँ भी गायक हैं, वादक नहीं। बिसराम खाँ के पुत्र भूपत खाँ भी गायक ही हैं। मुहम्मदशाह रंगीले के युग में भी तानसेन के वंशज रहीमसेन और तानसेन तृतीय गायक ही है।

कलावन्त कहलानेवाले लोगों में शिहाब खाँ तथा परवीन खाँ (प्रवीन खाँ) बीनकार हैं, इनकी सन्तान के साथ तानसेन की सन्तान के विवाह-सम्बन्ध का कोई प्रमाण हमें नहीं मिलता। कलावन्तों में हमें सर्वप्रथम रबाबवादक सुखीसेन मिलते हैं।

सदारंग, अदारंग इत्यादि बीनकार भी हैं और ध्रुवपद-गायक भी, परन्तु दरगाहक़ुली खाँ इन्हें तानसेन का वंशज नहीं बताते, अपितु रहीमसेन और तानसेन तृतीय को बताते हैं।

प्यार खाँ के पूर्वज जब शुजाउद्दौला के युग में अवध गये, तब तानसेन के द्वारा इस्लाम अंगीकृत किये जाने और उनकी कल्पित पुत्री का विवाह किसी कल्पित मिसरीसिंह के साथ कराकर उनका नाम नबात खाँ रखे जाने की कहानी गढ़ी गयी, जिसका प्रचार 'मअदन्-उल्-मूसिक़ी' में किया गया। इस कहानी में कोई तथ्य नहीं। तानसेन की किसी पुत्री की चर्चा किसी समसामयिक इतिहासकार ने नहीं की है।

ध्रुवपद गानेवाले और साथ-साथ बीन या रबाब बजानेवाले कलाकारों ने स्वयं को तानसेन-परम्परा से सम्पृक्त करने के लिए इस कथा की सृष्टि की है।

ढारी

अबुल् फ़ज़्ल के अनुसार 'ढारी' लोग युद्धभूमि में सैनिकों को उत्तेजित करने के लिए विरुद-गान करते थे। ये लोग 'ढोल' के साथ पंजाबी गीत भी गाते थे, स्पष्ट है कि इनका मूल-स्थान पंजाब था।[१]

कालान्तर में 'ढारी' जाति के लोग विभिन्न शैलियों में गाने और विभिन्न वाद्य भी बजाने लगे।

अकबरी दरबार के प्रमुख गुणियों में सातवाँ स्थान ग्वालियर के मुहम्मद

१. आ० अ०, ग्लैड०, पृ० ७३४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

खाँ 'ढारी' का है, जो गायक हैं। इस सूची में दसवें गायक दाऊद भी ढारी हैं और पन्द्रहवें गायक मुल्ला इसहाक़ भी।[1] स्पष्ट है कि इन लोगों का मूल स्थान पंजाब था। फ़क़ीरुल्लाह ने अकबरी युग के एक अन्य गायक मदन खाँ ढारी की भी चर्चा की है। औरंगज़ेब के युग में 'मुलायम' नामक वाद्य के वादक स्वालेह रब्बानी भी ढारी हैं और सारंगीवादक अल्लाहदाद भी। इसी युग में फ़ीरोज़ खाँ ढारी का नाम पखावजवादक के रूप में है।[2] मुहम्मदशाह रंगीले के युग में सवाद खाँ और वोले खाँ नामक ढारी ख़याल-गायक दिखायी देते हैं।[3] वाजिद अली शाह के युग में मुराद अली खाँ ढारी ख़याल-गायक हैं, तो हसन खाँ ढारी वीनवादक। एक सारंगीवादक हसन खाँ ढारी भी इस युग में हैं। इसी युग में बख्शू मियाँ जैसे उस्ताद तबलावादक और दूसरे प्रसिद्ध तबला-वादक हाजी विलायत अली भी ढारी ही हैं। बनारस के कल्लू और धन्नू नामक दो ढारी हमें सारंगीवादक और ख़याल-गायक के रूप में इसी युग में दिखायी देते हैं।[4]

मुहम्मद करम इमाम ने ढारियों, तवायफ़ों और सफ़रदाइयों (संगति करनेवालों) को साथ-साथ गिनाया। मुहम्मद करम इमाम ने कहा है कि लखनऊ के ढारी बेहद ख़ब्ती और बेमगज़े थे और वेश्याओं के गुरु होने योग्य थे।[5]

अस्तु, पूर्वोक्त पंक्तियों से यह सिद्ध होता है कि 'ढारी' जाति के व्यक्तियों को गाने की कोई भी शैली अपनाने में आपत्ति न थी। ये बीन, पखावज, सारंगी, तबला कुछ भी बजाने के लिए उद्यत थे।

आज तो प्रत्येक मुसलमान संगीतजीवी को 'खाँ साहब' कह दिया जाता है, परन्तु कलावन्त लोग ढारियों की अपेक्षा स्वयं को कुछ उच्चकोटि का मानते थे। ढारियों की दृष्टि में 'डेरेदार' ढारियों से नीचे थे।

डेरेदार, वे लोग थे, जिनकी बहनें-बेटियाँ सर्वसाधारण रूप में गाती-बजाती हैं, पंजाब के नबीबख्श डेरेदार बीन और सितार बजाते थे। इनकी बहन अमीरजान रामपुर के नवाब कल्बे अली खाँ के दरबार में थीं, ये पंजाब के रहनेवाले थे।[6]

दफ़ज़न

'दफ़' का अर्थ 'ढप' और 'ज़न' का अर्थ नारी है। 'दफ़ज़न' वे नारियाँ

---

१. आ० अ०, खण्ड-२, पृ० ६८०
२. रागदर्पण, दसवाँ बाब
३. मु० भा० सं०, पृ० ७९
४. वही, पृ० ८८-८९
५. वही, पृ० ८२-८४
६. वही, पृ० ८८-९६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कहलाती थीं, जो 'दफ़' या 'ढोल' बजातीं और 'ध्रुवपद,' 'सोहेला', 'वर्षगाँठ के गीत' एवं 'विवाह-गीत' गाती थीं। किसी युग में ये केवल महिलाओं के सम्मुख आती थीं, परन्तु अकबर के युग में ये सर्वसाधारण के समक्ष अपनी कला का प्रदर्शन करने लगी थीं।[1] मुसलमान संगीतजीवियों में डेरेदार जाति इसी वर्ग के निकट आती है।

नटवा

पखावज, झाँझ और रबाब के साथ अच्छे ढंग से नाचने और गानेवाले 'नटवा' कहलाते थे।[2] शाह 'सदारंग' के गुरुओं में एक बंगाली नटवा भी था।[3]

कीर्तनिया

'कीर्तनिया' लोग ब्राह्मण थे। ये रबाब, पखावज एवं झाँझ के साथ भक्ति-सम्बन्धी पद गाते थे।[4] अबुल् फ़ज़्ल ने कलाकारों के केवल इस वर्ग को ब्राह्मण कहा है।

हुडकिया

इस वर्ग के पुरुष 'आवज' और नारियाँ झाँझ या मंजीरे के साथ गाती थीं। पहले ये लोग 'कड़खा' (युद्धगीत) गाते थे, परन्तु अकबरी युग में ये लोग 'ध्रुवपद' तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुएं गाने लगे थे।[5]

क़व्वाल और क़व्वालबच्चे

अबुल्फ़ज़्ल के अनुसार क़व्वाल भी ढारियों की ही कोटि में आते हैं, परन्तु अकबरी युग में इनका काम दिल्ली में प्रचलित धुनें गाना था, ये लोग फ़ारसी गीत भी दिल्ली की ही शैली में गाते थे।[6]

'क़ौल' (सूक्ति) गानेवाला वर्ग 'क़व्वाल' कहलाता था। इनका कार्य विभिन्न भाषाओं में ग़ज़ल गाना था। मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी की प्रेरणा से उनके क़व्वाल हिन्दी (भारतीय) भाषाओं के गीत भी गाते थे।

मुईनुद्दीन चिश्ती के मुरीद क़ाजी हमीदुद्दीन नागौरी का प्रसिद्ध क़व्वाल महमूद था।[7] खिलजी-युग के महमूद, मुहम्मद, ईसा खुदादी इत्यादि की गणना

---

१. आ० अ०, ग्लैड, पृ० ७३४
२. वही
३. मिराति-आफ़ताबनुमा, ३६२ 'अ'
४. आ० अ०, ग्लैड०, पृ० ७३४
५. वही
६. वही
७. मु० भा० सं०, पृ० ५७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भी क़व्वालों में ही की जानी चाहिए।[1]

अमीर खुसरो द्वारा पर्शियन और भारतीय शैली के मिश्रण से उत्पन्न 'क़ौल' एवं 'तराना' गानेवाले कलाकारों की सन्तानें कालान्तर में 'क़व्वाल-बच्चा' कहलायीं। पन्द्रहवी शती ई० में जौनपुर के हुसेनशाह शर्क़ी द्वारा प्रवर्तित 'खयाल' भी इस वर्ग के द्वारा गाये गये। तब से क़व्वालबच्चे सूफ़ियों की खानक़ाहों में 'क़व्वाली' गाने के साथ-ही-साथ खयाल भी गाने लगे।

बाबरी युग के शैख घूरन और उनके शिष्य जौनपुर-निवासी शैख अदहन शर्क़ी की शैली के प्रसिद्ध आचार्य हुए। शैख अदहन के शिष्य शैख बंझू ने १५७५ ई० में अकबरी दरबार के कलावन्तों को ललकारा और अकबर से पुरस्कार प्राप्त किया। मालवा के बाज़बहादुर भी इस शैली के प्रामाणिक आचार्य थे।

जहाँगीरी युग के शैख पीरमुहम्मद भी शर्क़ी की शैली को नवजीवन दे रहे थे।

शाहजहाँ एवं औरंगज़ेब के युग में हमें कबीर, रोरा और मीर खालिद देहलवी जैसे क़व्वाल मिलते हैं।

मुहम्मदशाह रंगीले के युग में हम ताज खाँ, ग़ुलाम रसूल, जानी, मुईनुद्दीन बुरहानी, जट्टा, अल्लाहबन्दे, सवाद खाँ ढारी, बोले खाँ ढारी, रहीम खाँ, ज्ञान खाँ, दौलत खाँ, हड्डू इत्यादि क़व्वालों को पाते हैं।

इसी युग में नेमत खाँ 'सदारंग' नवीन प्रकार के खयालों की रचना करते हैं, उस समय के प्रसिद्ध क़व्वालों को जवाब देने की प्रेरणा ही 'सदारंग' से यह कार्य कराती है[2], तथा सदारंग के शिष्य क़ासिम अली, पन्नाबाई और कमालबाई 'सदारंग' के खयालों की धूम मचा देती हैं।

यह सबकुछ हो चुकने पर भी कलावन्तों और क़व्वालबच्चों की पारस्परिक प्रतिस्पर्धा का अन्त नहीं होता। 'सदारंग' की सन्तानें सदारंग के खयाल याद करती हैं, दूसरों को सिखाती हैं, परन्तु स्वयं महफ़िल में नहीं गातीं।

अठारहवीं शती के उत्तरार्ध में जानी मियाँ, ग़ुलाम रसूल, शकर और मक्खन क़व्वाल, सोना क़व्वालबच्चे, गामू क़व्वाल और शोरी मियाँ के दर्शन हमें होते हैं। अगली पीढ़ी के गायकों में हमें बड़े मुहम्मद खाँ, अहमद खाँ इत्यादि दिखायी देते हैं, परन्तु सदारंग के वंशज प्यार खाँ तथा इनकी सन्तानों से इनकी बनती नहीं। अमीर खाँ बीनकार के शिष्य और 'मअदन् मूसिक़ी' के लेखक मुहम्मद करम इमाम ने मुहम्मद खाँ के राग की प्रशंसा नहीं की है।

---

१. मु० भा० सं०, पृ० ५६
२. म० अ० मु०, पृ० २३९-४०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इस युग में कत्थक और सारंगीवादक भी खयाल गाने लगे थे।

आज की खयाल-शैली में क़व्वालबच्चों और 'सदारंग' की सन्तानों की परम्परा बची भी है या नहीं, यह गम्भीरतापूर्वक विचारणीय है।

ठुमरी-गायक

चिश्तिया परम्परा के सूफ़ी क़व्वालों की दृष्टि में पूज्य थे। दिल्ली सूफ़ियों का केन्द्र थी। अवध के नवाब लोग शिया थे, सूफ़ियों की ओर इन नवाबों की विशिष्ट आस्था न थी। ये नवाब ईरानी शिया मुसलमानों के वंशधर थे, अतः शुजाउद्दौला, आसफ़ुद्दौला और वाजिद अली शाह का रुझान क़व्वाली की ओर न था। ये लोग अवध के लोकगीतों की ओर उन्मुख हुए और इन्होंने ठुमरी, चैती और कजरी को दरबार में प्रतिष्ठित किया।

मुहम्मद करम इमाम के अनुसार बादशाह नसीरुद्दीन हैदर के पोते वज़ीर मिर्ज़ा (कदरपिया) ठुमरी के प्रवर्तक हैं।[1] मुहम्मद करम इमाम ने 'क़दरपिया' की एक ठुमरी के बोल यों लिखे हैं :—

'सैयाँ करवटियाँ लेने दे, तरप तरप बीती रैन।
साँवरी सूरत मदभरी मूरत, रस टपकत वाकी छतियन,
अरे करवटियाँ लेने दे।'

इस ठुमरी की तकरार 'अरे लेने दे, भला लेने दे, सैयाँ लेने दे, बलमा लेने दे, गुइयाँ लेने दे, अच्छी लेने दे' को मुहम्मद करम इमाम ने बेहूदा कहा है।[2]

मुहम्मद करम इमाम के अनुसार ठुमरी के अंग पर ही आसफ़ुद्दौला (मृत्यु-काल १७९७ ई०) के आश्रित कलाकार और 'नग़माते आसफ़ी' के लेखक मुहम्मद रज़ा ने रज़ाखानी 'गतों' की रचना की। उस युग के उस्तादों की दृष्टि में इन गतों की रचना नवाबों और अमीरों के लिए की गयी थी और इनमें ठोक और झाले के लिए अवकाश न था।

अस्तु, 'कदरपिया' की कई ठुमरियाँ 'क्रमिक-पुस्तक-मालिका' के विभिन्न भागों में संगृहीत हैं और भ्रमवश 'छोटा खयाल' समझी जाती हैं।[3] अस्तु, लखनऊ की ठुमरियाँ बोलबाँट की ठुमरियाँ थीं, कथक लोग इन पर भाव बताते थे।

---

१. म अ० मू०, पृ० १६२-६३

२. वही

३. क्र० पु० मा०, भाग-२, पृ० १३५, १३७, १३८, १५६, १५७, ३२५, ३२८, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, भाग-३, पृ० ३०५, ३०७, ३११, ६२५, ६२६, ६३०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'सदारंग' की सन्तानों में प्यार खाँ के पौत्र एवं जाफ़र खाँ के पुत्र सादिक़ अली खाँ 'राहतुद्दौला' ने ठुमरी को 'षड्ज-चालन' के द्वारा एक उत्तम कला बना दिया। रामपुर के साबहज़ादा हैदर अली खाँ इनके भी शिष्य थे।[1] भैया गनपतराव ने भी ठुमरी की शिक्षा सादिक़ अली खाँ से ली थी। कहा जाता है कि मौजुद्दीन ने पहले कुछ दिनों इन सादिक़ अली खाँ से सीखा और फिर वे भैया गनपतराव के शिष्य हुए। ये सादिक़ अली खाँ बनारस में भी रहे थे।[2] सादिक़ अली खाँ अपनी परम्परा की रक्षा करते थे और वेश्याओं को शिक्षा देना ढारियों का काम समझते थे।

मुहम्मद करम इमाम ने ठुमरी और ग़ज़ल गाने में निपुण घूमनबाई और हुसेनीबाई की चर्चा की है, सम्भवतः ये लखनऊ की थीं।[3] फर्रुखाबाद की लज्जत बख़्श भी ठुमरी और ग़ज़ल की अच्छी गायिका थीं, ये रामपुर के नवाब कल्बे अली खाँ के दरबार में थीं।[4]

मुहम्मद करम इमाम ने उस युग में बनारस-निवासी किसी ठुमरी-गायक या ठुमरी-गायिका की चर्चा नहीं की।

परशद्दू कत्थक नृत्य और अभिनय में कुशल थे, सम्भव है कि लखनवी अंग की ठुमरी गाते हों और उसका अभिनय भी करते हों, परन्तु मुहम्मद करम इमाम ने इन्हें ख़याल और टप्पे में मियाँ शोरी का प्रशिष्य और गामू खाँ का शिष्य बताया है।[5] बनारस की चित्रा और इमाम बाँदी भी ख़याल और टप्पे की गायिका बतायी गयी हैं, ठुमरी की नहीं। ये दोनों शादी खाँ की शिष्या थीं। बनारस-निवासी बक़ा, मदारी भी ठुमरी-गायक नहीं थे।[6] बनारस-निवासी कल्लू ढारी और धन्नू ढारी ख़याल भी गाते थे और सारंगी भी बजाते थे।[7] सार्वजनिक रूप में गाने-बजानेवाली शिष्याएँ तैयार करना ऐसे ही लोगों का काम था, यह उन्हें किस मात्रा में 'राग-तत्त्व' की शिक्षा देते थे, इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है। अस्तु, सम्भव है, सारंगीवादक होने के कारण ये लोग ठुमरी की संगति भी कर लेते हों।

बोल-बनाव की ठुमरी का जन्म कैसे और किन परिस्थितियों में हुआ, यह

---

१. नग़मातुल् हिन्द, पृ० ३
२. वही
३. मु० भा० सं०, पृ० ८६-८७
४. वही, पृ० ९७
५. मु० भा० सं०, पृ० ८७-९०
६. वही, पृ० ८४
७. वही, पृ० ८९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पृथक् विवाद का विषय है। मुहम्मद करम इमाम के युग तक इस शैली का जन्म नहीं हुआ था।

टप्पा-गायक

टप्पे का आविष्कार 'शोरी' ने किया। 'शोरी' का वास्तविक नाम ग़ुलाम नबी था, ये ग़ुलाम रसूल के पुत्र थे। ग़ुलाम रसूल ख़याल-गायक थे और जाति के क़व्वाल।[1] मियाँ जानी और ग़ुलाम रसूल परस्पर सहोदर और रंगीले के प्रसिद्ध क़व्वाल ताज ख़ाँ के पुत्र थे।

'शोरी' मुक़ाम-पद्धति के गान में मुल्ला मुहम्मद किताबख़्वाँ के शिष्य थे। 'शोरी' पंजाब जाकर रहे, वहाँ के कुछ लोक-गीतों की शैली में मुक़ाम-पद्धति से तहरीर और ज़मज़मः सम्मिलित करके इन्होंने टप्पे का आविष्कार किया। पंजाबी भाषा में 'टपना' का अर्थ 'कूदकर या लाँघकर जाना' है, इस क्रिया की प्रधानता के कारण इस शैली का नाम 'टप्पा' रखा गया।

आसफ़ुद्दौला (मृ० १७९७ ई०) के राज्य-काल में 'शोरी' प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँच चुके थे।[2] इसका अर्थ यह है कि इनका जन्म मुहम्मदशाह रंगीले की मृत्यु (१७४८ ई०) से पूर्व हो चुका था।

शोरी के पितामह ताज ख़ाँ क़व्वाल की अत्यन्त प्रशंसा दरगाह क़ुली ख़ाँ ने १७३८ ई० के पश्चात् लिखित अपने ग्रन्थ में अत्यन्त सम्मानपूर्वक की है। शोरी के पिता ग़ुलाम रसूल भी दरगाह क़ुली ख़ाँ की दृष्टि में अनुपम थे।[3]

शोरी निस्सन्तान मरे, गामू ख़ाँ उनके शिष्य थे, और बनारस के परशद्दू कत्थक गामू ख़ाँ के शिष्य। गामू ख़ाँ के पुत्र शादी ख़ाँ काशी-नरेश महाराज उदितनारायणसिंह के आश्रित रहे। बनारस की चित्रा और इमाम बाँदी शादी ख़ाँ की ही शिष्या थीं।

वाजिद अली शाह के युग में 'सरशार' नामक एक अन्य व्यक्ति ने भी शोरी की शैली से पृथक् शैली में टप्पों की रचना की, ये 'ढारी' जाति के थे। उस युग में मम्मी ख़ाँ ढारी और छज्जू ख़ाँ ढारी भी टप्पे के अच्छे गायक हुए हैं।[4]

बाबू रामसहाय टप्पे में मियाँ शोरी के शिष्य थे, बहुत अच्छा टप्पा गाते थे। नवाब हुसेन ख़ाँ की प्रसिद्धि भी टप्पा गाने में थी।[5]

---

१. मअ० मू०, पादटिप्पणी, पृ० ३९
२. मअ० मू०, पृ० ३९
३. पु० दि० हा०, पृ० ७२
४. मअ० मू०, पृ० ३९-४०
५. वही, पृ० ३८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ख़याल-गायक

उपलब्ध सामग्री में बरनावा के शैख़ बहाउद्दीन बरनावी (जन्म १४१२ ई०) वह व्यक्ति हैं, जो सूफ़ियों में 'खात्तिमुत्तारिकीन' के नाम से प्रसिद्ध महान् सन्त, ध्रुवपद, तराने और ख़याल की रचना और गान में निपुण होने के साथ-ही-साथ बीन, इमरती और रबाब के वादन में भी कुशल थे। (देखें : परिशिष्ट 'आ', क्र० सं० १२७)। इसका अर्थ यह है कि इन पर जौनपुर के सुल्तान हुसेनशाह शर्क़ी की परम्परा का भी प्रभाव था। 'बादशाहनामा', 'मिराति-आफ़ताबनुमा' इत्यादि ग्रन्थों के अनुसार हुसैन शाह शर्क़ी ही ख़याल का आविष्कारक था। मुग़ल दरबार में कलावन्तों के छा जाने के बाद शैख़ बहाउद्दीन बरनावी के शिष्य शैख़ पीर मुहम्मद (देखें : परिशिष्ट 'आ', क्र० सं० १२८) शर्क़ी की शैली को जीवित कर रहे थे। औरंगज़ेब के युग में सवाद ख़ाँ ढारी थे, जो मुहम्मदशाह रंगीले के युग में भी पुरानी शैली के सम्मानित ख़याल-गायक कहे जाते थे। (देखें : परिशिष्ट 'आ', क्र० सं० १९३) इसी युग में सदारंग ने क़व्वालों का मुँह बन्द करने के लिए अपनी विशिष्ट शैली में नवीन ख़यालों की रचना की। सदारंग के प्रतिभाशाली शिष्यों ने इस शैली का रंग बाँध दिया। उन्नीसवीं शती ई० में शकर और मक्खन ने ऐसे तालों में ख़याल बाँधे जिनका प्रयोग ध्रुवपद में नहीं होता। बड़े मुहम्मद ख़ाँ ने ख़याल में तान, पल्टे, तहरीर और ज़मज़मे का प्रयोग कुशलतापूर्वक किया। आगरेवालों ने ख़याल में फिरत और बोलतानें सम्मिलित कीं। अल्लादिया ख़ाँ जैसे ध्रुवपदगायकों के वंशजों ने एक विशेष प्रकार की फिरत पर ज़ोर दिया।

तथाकथित 'विलम्बित' के प्रेमी सारंगीवादकों ने जब ख़याल के नाम पर गले से सारंगी का काम लेना आरम्भ कर दिया, तब 'ख़याल' गूँगा हो गया और इसमें भाषा, भाव, लय और अर्थ विदा हो गये; केवल बहलावे, तानें और फिरत रह गये, अर्थात् आभूषणों का ढेर तो बच रहा, इन्हें धारण करनेवाली सुन्दरी लुप्त हो गयी। गाना गूँगा हो गया और राग चेतनाहीन। इस तथाकथित विलम्बित गायकी के प्रयोक्ता किसी भी गायक के शिष्य न थे, अतः शिक्षा अनावश्यक हो गयी, प्रामाणिक बन्दिशें ऐसे लोगों के लिए व्यर्थ हो गयीं। केवल 'घिघियाने' को गवैयापन माना जाने लगा। 'मुखड़ा' ही रह गया, शरीर लुप्त हो गया।

कवित्त-गायक

ब्रजभाषा-कवियों का प्रसिद्ध छन्द 'घनाक्षरी' कवित्त का ही एक प्रकार है। यह वस्तुतः गेय छन्द है। मुग़ल-सम्राटों के सम्पर्क में जहाँ कलावन्त आये, वहाँ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ब्रजभाषा के कवि भी। अकबर के दरबार में जो कलावन्त आये, वे प्रमुख रूप से ध्रुवपद गाते थे, परन्तु उनके द्वारा 'कवित्त' भी गाया जाता था। दुरसाजी, होलराय, कुम्भनदास, व्यास, चन्द्रभान, चतुर्भुजदास, राजा आसकरन, पृथ्वीराज, सूरदास मदनमोहन, मनोहर, टोडरमल, नरहरि, और गंग जैसे कवि अकबर के दरबार में आये थे, फलतः हम देखते हैं कि बरनावा के निवासी शैख बहाउद्दीन (ज० का० १५१३ ई०) जैसे संगीत और साहित्य के महारथी कवित्तों, खयालों, ध्रुवपदों और तरंगों की रचना भी करते थे और ध्रुवपद एवं खयाल गाने के साथ-ही-साथ कवित्त भी गाते थे। अकबरी दरबार में तानसेन के प्रवेश (१५६२ ई०) के समय शैख बहाउद्दीन की आयु इक्यावन वर्ष थी।[१]

शैख बहाउद्दीन बरनावी के शिष्य शैख पीर मुहम्मद भी, ध्रुवपद, तराने और कवित्त गाते थे।[२] शैख पीर मुहम्मद जहाँगीर के राज्य-काल में भी जीवित रहे। जहाँगीर के सम्पर्क में गंग, रहीम और मनोहर जैसे उत्कृष्ट कवि थे। महाकवि केशवदास ने अपने ग्रन्थ 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' में जहाँगीर के यश का वर्णन किया था।

कवीन्द्र सरस्वती, चिन्तामणि, सुन्ददास, शिरोमणि और वेदांगराय जैसे कवि शाहजहाँ के सम्पर्क में आये थे तथा औरंगजेब को कालिदास त्रिवेदी, किशन कवि, अब्दुल जलील बिलग्रामी, ईश्वर, इन्द्रजीत, काशीराम, सामन्त और वृन्द कवि के सम्पर्क में आने का अवसर मिला था। इन दोनों सम्राटों के युग में मन्नू नायक के पोते किशनसेन कलावन्त ध्रुवपद और कवित्त अच्छा गा रहे थे।[३]

आजम, बहादुरशाह और तत्पश्चात् मुहम्मदशाह रंगीले के युग में महाकवि देव, नेवाज, अब्दुर्रहमान, मदनकिशोर, आलम, वृन्द, गुमान मिसर तथा घनानन्द जैसे कवि मुग़ल-दरबार से सम्पृक्त थे। 'सदारंग' को महाकवि देव की शिष्यता का सौभाग्य प्राप्त था। इस युग में अकबरी दरबार के तानसेन के वंशज रहीमसेन और तानसेन (तृतीय) ध्रुवपद-गान के साथ कवित्त-गान में भी निपुण थे।[४] इसी युग में शाह दानियाल, क़व्वालबच्चे रहीम खाँ इत्यादि और खयाल-गायिका उमाबाई जैसे कलाकार कवित्त भी गा रहे थें।

कवित्त-गान की यह परम्परा रामपुर में जीवित रही, क्योंकि उस दरबार में महाकवि ग्वाल और उनके गुरुबन्धु महापण्डित दत्तराम जैसे सिद्ध कवि रहे।

---

१. रागदर्पण, दसवाँ बाब
२. वही
३. वही
४. पु० दि० हा०, पृ० ७६-७७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रामपुर-नवाब हामिद अली खाँ (राज्य-काल १८८९-१९३० ई०) के प्रति आशीर्वाद के रूप में 'सादत' मुद्रा से अंकित छम्मन साहब का यह कवित्त विहाग में निबद्ध है :—

"जौ लौं मारतण्ड चन्द्र सोहैं आसमान माँहि,
जौ लौं सेस सीस भुव अचल बनी रहै।
जौ लौं गंग जमुन की धार धरामण्डल में,
जौ लौं कयलास में कुबेर सों धनी रहै।
जौ लौं छीरसागर उजागर जहान बीच,
जौ लौं बिस्नुचक्र असुरन पै गनी रहै।
'सादत' के प्रभु हामिदली खाँ बहादुर जू,
तौ लौं जग रावरी सुकीरत बनी रहै।"[1]

हिन्दू कलाजीवियों में भट्ट जाति ने महाकवि, सिद्धगायक और अच्छे पखावजवादक उत्पन्न किये हैं। सम्प्रदाय को जाननेवाले ही इस तत्त्व से परिचित हैं कि 'घनाक्षरी' में बराबर की, सवाई और ड्योढी लय का प्रदर्शन अत्यन्त कलात्मक ढंग से होता है।

नक्क़ारावादक

नक्क़ारावादकों को महत्त्व किसी इतिहासकार ने नहीं दिया। अकबर स्वयं भी अच्छा नक्क़ारा बजाता था।[2] तथापि उसके दरबार के प्रमुख कलाकारों में किसी नक्क़ारावादक का उल्लेख नहीं।

मुहम्मद करम इमाम ने आसयून के क़ासिम खाँ, ओनाम के घूरन खाँ, बनारस के सुजान खाँ, लखनऊ के मखदूमबख्श, बाँदा के घसीट खाँ और ओनाम के अघावन का उल्लेख नक्क़ारावादकों के रूप में किया है।[3]

इस युग में झाँसी के राजा रघुनाथसिंह बोंगा बहादुर भी नक्क़ारावादन में प्रवीण हुए हैं।[4]

ओनाम के घसीट खाँ नक्क़ारावादन के साथ-ही-साथ तबलावादन में भी इतने निपुण थे कि उनके शिष्यों ने बख्शू मियाँ ढारी के भी छक्के छुड़वा दिये थे।[5]

---

१. इस कवित्त के भ्रष्ट पाठ के लिए देखिए : क० पु० मा०, पृ० २३९-२४३
२. भारत का इतिहास, ईश्वरी प्रसाद, पृ० ५७
३. मु० भा० सं०, पृ० ८९-९०
४. वही
५. वही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नक़्क़ारावादकों की एक विशिष्ट जाति थी और ये प्राय: शेख कहलाते थे।

नवीन चिन्तन करनेवाले कलाकार

नवीन चिन्तन की ओर मानव की प्रवृत्ति सदैव रही है, चिन्तकों और कलाकारों ने इस ओर सदैव ध्यान दिया है।

शैख बहाउद्दीन ज़करिया मुलतानी ने खुसरो से पूर्व नवीन रागों का आविष्कार किया था। खुसरो के गुरुबन्धु सैयद मुहम्मद इमाम और सैयद मुहम्मद मूसा की प्रसिद्धि भी नवीन चिन्तन करनेवालों के रूप में थी। अमीर खुसरो ने 'समिति' और 'तातार' की सहायता से क़ौल, तराना का आविष्कार किया।

हुसेन शाह शर्क़ी ने 'खयाल' का आविष्कार तो किया ही, 'बादशाहनामा', 'खुलासतुल्ऐश आलमशाही' और 'मिराति-आफ़ताबनुमा' के अनुसार इसने बारह रागों का भी आविष्कार किया।

बाबरी दरबार के कलाकार क़ुले मुहम्मद ऊदी ने बरबत में तीन तारों की वृद्धि की। इनके ही साथी शैखी नाई और गुलामशादी नयी धुनों और नये रागों के आविष्कारक बताये गये हैं। इसी युग के बनाई भी नये रागों के आविष्कर्त्ता कहे जाते हैं।

मुहम्मद करम इमाम के अनुसार दरबारी के आविष्कर्त्ता बैजू हैं।

अकबरी युग के कलाकारों में तानसेन, रामदास, चरजू, धोंधू, सूरदास इत्यादि ने मलार के नये प्रकारों की सृष्टि की।

इसी युग में क़ासिम कोहबर ने रबाब और आवज के मिश्रण से एक नवीन वाद्य का निर्माण किया था। बरनावा-निवासी शैख बहाउद्दीन ने 'खयाल-ओ-तराना' नामक वाद्य का आविष्कार इसी युग में किया।

मुहम्मदशाह रंगीले के युग में सदारंग ने 'खयाल' को एक नवीन शैली दी। ये अपने शिष्यों को नवीन चिन्तन की ओर प्रेरित करते थे। इनकी शिष्या कमालबाई और पन्नाबाई में नवीन रागों के निर्माण की प्रतिभा थी। सितार का आविष्कार इसी युग में हुआ।

इस युग के पश्चात् 'सदारंग' जैसे अनेक विषयों के विद्वान् संगीत-क्षेत्र में न हुए।

अठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में ताज खाँ क़व्वाल के पौत्र और गुलाम रसूल के पुत्र मियाँ गुलाम नबी 'शोरी' ने टप्पे का आविष्कार किया और उन्हीं के समकालीन अवध के एक शाहज़ादे वज़ीर मिर्ज़ा 'कदरपिया' ने 'ठुमरी' को दरबार में प्रवेश दिलाया। वाजिद अली शाह के समय लखनऊ ठुमरीमय हो गया, इसी युग में प्यार खाँ के पौत्र और जाफ़र खाँ के पुत्र सादिक़ अली खाँ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'राहतुद्दौला' ने 'षड्ज-चालन' के प्रयोग से ठुमरी को एक नवीन दिशा दी।

क़ानूनवादक

बाबर के कलाकारों की सूची में हमें अब्दुल्लाह मरवारीद नामक क़ानून-वादक और गायक कलाकार की चर्चा मिलती है। मुहम्मद जान नामक क़ानून-वादक का नाम भी वहाँ है।[1]

अकबरी दरबार के प्रमुख कलाकारों की सूची में अबुल् फ़ज़्ल ने अब्दुल्ला हमीर नामक क़ानूनवादक का भी उल्लेख किया है।[2]

अकबरी युग में बीनकार और कलावन्त मुग़ल-दरबार पर इतने छा गये कि उसके बाद से किसी क़ानूनवादक को मुग़ल-दरबार में उल्लेखनीय स्थान प्राप्त न हुआ। फ़क़ीरुल्ला, दरगाह क़ुली खाँ या मुहम्मद करम इमाम ने अपने-अपने युग में किसी भी क़ानूनवादक की चर्चा नहीं की है।

गिटारवादक

क़ुले मुहम्मद ऊदी बाबरी दरबार के कलाकार थे। ये गिटार और बरबत बजाते थे, इन्होंने 'बरबत' में तीन तार और बढ़ाये थे। इसी दरबार के शैख़ी बरबत गिटार, बीन और नै बजाते थे। गिटारवादक शाह क़ुली भी गिटार बजाते थे।[3]

बाबरी युग के पश्चात् हमें किसी गिटारवादक का नाम नहीं मिलता।

ग़िचक़वादक

हुमायूनी दरबार के कलाकारों में सैयद अली मार, बहराम और कजक नामक ग़िचक़वादकों की चर्चा है।[4] सैयदअली मीर और बहराम अली अकबरी दरबार के भी आश्रित रहे। इनकी चर्चा अबुल् फ़ज़्ल ने अकबरी दरबार के छत्तीस प्रमुख कलाकारों में की है।[5] इस युग के पश्चात् किसी ग़िचक़वादक का नाम नहीं मिलता।

क़ुब्सवादक

बाबरी दरबार के कलाकारों में हमें क़ुब्सवादक मुखलिस मुहिब का नाम मिलता है।[6] अकबरी दरबार के ताशबेग भी क़ुब्सवादक हैं। इसके बाद

---

१. मुग़लकालीन भारत (बाबर), पृ० ५९५-५९६.
२. आईने अकबरी, खण्ड-२, पृ० ६८०
३. मुग़लकालीन भारत (बाबर), पृ० ५९५-५९६
४. वही
५. आईने अकबरी, खण्ड-२, पृ० ६८०
६. मु० का० भा० (बाबर), पृ० ५९५-५९६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किसी क़ुब्सवादक का नाम उपलब्ध नहीं होता ।[1]

बरबतवादक

बाबरी युग के कलाकारों में क़ुले मुहम्मद ऊदी, शैखी नाई और हुसेन ऊदी बरबत वादक हैं ।[2]

क़रनावादक

बाबरी दरबार में ईराज तरसून बरलास[3] और अकबरी युग में शैख दावन[4] ढारी की चर्चा क़रनावादक के रूप में है ।

तम्बूरवादक

तम्बूर नामक वाद्य का लक्षण अहोवल ने 'संगीत-पारिजात' के द्वितीय काण्ड में 'तौम्बुरु' (तुम्बुरु से सम्बद्ध) कहकर किया है, वे 'रबाब' जैसे फ़ारसी शब्द को 'रवावह' के रूप में संस्कृत शब्द बना डालते हैं । अस्तु उन्होंने 'तौम्बुरु' को तुम्बुरु वाद्य कहते हुए उसके दो प्रकार 'निबद्ध' और 'अनिबद्ध' बताये हैं । नारायण ने भी तुम्बरी वीणा का लक्षण किया है ।[5]

अस्तु, 'तम्बूर' अथवा 'तम्बूरा' नाम से एक वाद्य अन्य देशों में भी प्रचलित है। अकबरी दरबार में हमें हिरात-निवासी उस्ताद यूसुफ़ तथा मुहम्मद हुसेन नामक तम्बूरवादक मिलते हैं। मुहम्मदशाह रंगीले के युग में वाक़र तम्बूरची का उल्लेख मिलता है। इस युग के पश्चात् किसी तम्बूरची की चर्चा नहीं मिलती।

'स्वर' देने के लिए आज जिस 'तम्बूरा' या 'तानपूरा' वाद्य का प्रयोग होता है, वह सर्वथा पृथक् है ।

नै-वादक

'नै' एक सुषिर वाद्य है। इसके वादकों के रूप में बाबरयुगीन शैखी,[6] हुमायूँकालीन तूफ़ान[7] नाई (नै बजाने वाला), और अकबरकालीन उस्ता दोस्त[8] का उल्लेख हमें मिलता है। वाजिद अली शाह के युग में बाँदा-निवासी

---

१. आ० अ०, ख०-२, पृ० ६८०
२. मु० का० भा० (बाबर), पृ० ५९५-५९६
३. वही
४. आ० अ०, पृ० ६८०
५. भरतकोष, पृ० २५२
६. मु० का० भा० (बाबर), पृ० ५९५-५९६
७. मु० का० भा० (हुमायूँ), पृ० ८४६-८४७
८. आ० अ०, ख०-२, पृ० ६८०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

घसीट खाँ अलगोज़े, छोटी शहना और नक़्क़ारा बजाने के अतिरिक्त पटलीदार नै भी बजाते थे।[१]

चंगवादक

जलालुद्दीन खिलजी के कलाकारों में मुहम्मद सना चंगी, हुमायूँ के कलाकारों में क़ासिम और ग़ैबुल्लाह और मुहम्मदशाह रंगीले के युग में एक अज्ञातनाम चंगी और दरगाही अच्छे चंगवादक हुए हैं।[२] अहोबल ने चंग का लक्षण किया है।

ढोलवादक

जलालुद्दीन खिलजी के युग में मुहम्मद सना ढोल अच्छा बजाता था। मुहम्मदशाह रंगीले के युग में हुसेन खाँ अद्भुत ढोलवादक हुए हैं। इनका शिष्य धन्ना भी अच्छा ढोलकवादक था।[३]

पखावजवादक

ध्रुवपद के साथ पखावज का भी पुनरुद्धार सम्भवतः मानसिंह तोमर ने किया। यद्यपि अबुल् फ़ज़्ल ने प्रमुख कलाकारों की सूची में किसी पखावजवादक का उल्लेख नहीं किया है, तथापि 'रागदर्पण' में फ़क़ीरुल्लाह ने एक शतायु पखावजी भगवानदास की चर्चा की है, जिसे तानसेन की संगति करने का अवसर मिला था। फ़ीरोज़ ढारी नामक एक पखावजी की चर्चा भी फ़क़ीरुल्लाह ने की है और किरपा नामक पखावजी का भी उल्लेख किया है, जिसे औरंगज़ेब ने मृदंगराय' उपाधि दी थी।[४]

मुहम्मदशाह रंगीले के युग में घासीराम पखावजी की चर्चा हमें मिलती है तथा उन्नीसवीं शती ई० में लाला भवानीदीन पखावजी और उनके शिष्य कुदऊसिंह तथा ताज खाँ डेरेदार का उल्लेख हमें मिलता है। जोतसिंह पखावजी तथा ताज खाँ के पुत्र नासिर खाँ की चर्चा भी 'मअदन्-उल्-मूसिक़ी' में है।[५]

रबाबवादक

उपलब्ध सामग्री के अनुसार हमें हुमायूँ के कलाकारों की सूची में 'तूफ़ान' नामक रबाबवादक का नाम मिलता है।[६] इस वाद्य ने भारतीय संगीत में पहले

---

१. मु० भा० सं०, पृ० ८६
२. वही, पृ० ५८, ७२, ७६
३. वही
४. रागदर्पण, दसवाँ बाब
५. मु० भा० सं०, पृ० ७६-६२
६. मुग़लकालीन भारत (हुमायूँ), पृ० ८४६-८८७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ही प्रवेश पा लिया था, प्रसिद्ध वैष्णव गायक सन्तशिरोमणि स्वामी हरिदासजी ने अपने ध्रुवपद-संग्रह 'केलिमाल' में 'बीन' के साथ 'रबाव' की भी चर्चा की है।[1]

अकबरी युग के प्रमुख कलाकारों की सूची में रबाववादक क़ासिम कोहबर है। अहोबल ने अपने ग्रन्थ 'संगीतपारिजात' में 'रबाव' का संस्कृतीकरण करके इसे 'रबावह' कहा है और इसका लक्षण दिया है।[2] शाहजहाँ के युग में हम सुखी-सेन कलावन्त को रबाबवादक के रूप में पाते हैं।[3] मुहम्मदशाह रंगीले के युग में हमें हसन खाँ नामक रबाववादक की चर्चा मिलती है।[4] मुहम्मद करम इमाम ने छज्जू खाँ कलावन्त को रबाववादक कहा है और उनके पुत्र बासत खाँ और प्यार खाँ को भी। बहादुर खाँ भी इस युग के श्रेष्ठ रबाववादक थे।[5]

बीनवादक

यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि हमें सर्वप्रथम बीनकार का नाम बाबरी युग के कलाकारों में मिलता है। यह नाम शैखी नाई का है, जिन्होंने बाल्यकाल से ही बीन पर अभ्यास किया था। ये राग-प्रयोग में भी कुशल थे और इन्होंने नयी रचनाएँ भी की थीं।

अकबरी युग के कलाकारों में हमें ग्वालियर-निवासी शिहाब खाँ और परवीन खाँ नामक बीनकार दिखायी देते हैं। इसी युग में शैख बहाउद्दीन बरनावी के दर्शन होते हैं, जो रबाब और इमरती बजाने में कुशल होने के साथ-ही-साथ बीन बजाने में भी निष्णात हैं।

मुहम्मदशाह रंगीले के युग में नेमत खाँ सदारंग, उनके भाई खुसरो खाँ और भतीजे 'अदारंग' बीनकार भी हैं और गायक भी।

उन्नीसवी शती ई० के पूर्वार्द्ध में उमराव खाँ, उनके भाई मुहम्मद अली और पुत्र अमीर खाँ तथा रहीम खाँ कुशल बीनकार हैं। अमीर खाँ के पुत्र वज़ीर खाँ भी अच्छे बीनकार हुए, जो स्व० भातखण्डे और रामपुर के नवाब हामिद अली के गुरु थे।

'बीन' में 'मुक़ाम-सिद्धान्त' के अनुसार एक-एक 'स्थान' (मन्द्र-मध्य और तार) में प्रत्येक स्वर के लिए पृथक अचल सारिकाएँ हैं।

---

१. कृष्णभक्ति-काव्य में सखीभाव, पृ० ४६२
२. संगीत पारिजात, द्वितीय काण्ड, श्लोक १२५
३. राग-दर्पण, दसवाँ बाब
४. पुरानी दिल्ली के हालात, पृ० ६९
५. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ८७-८८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सरोदवादक

बरनावा-निवासी शैख़ बहाउद्दीन का जन्म १५११ ई० में हुआ, यह मानसिंह तोमर का राज्य-काल था। ये एक सौ सत्रह वर्ष जिये और इनका स्वर्गवास १६२८ ई० में हुआ, जब आगरा पर शाहजहाँ राज्य कर रहा था।

इनके शिष्य शैख़ पीरमुहम्मद ने जहाँ ध्रुवपदों और तरानों की रचना की, हुसैन शाह शर्क़ी की शैली को पुनर्जीवित किया, वहाँ सरोद-वादन की नयी शैली भी प्रवर्तित की।[1] इससे यह सिद्ध है कि पन्द्रहवीं शती ई० से सरोद-वादन भारत में प्रचलित था।

मुग़ल बादशाहों के युग में हमें सरोद की इतनी ही चर्चा मिलती है। दरगाह क़ुली ख़ाँ और मुहम्मद करम इमाम भी किसी सरोदवादक की चर्चा नहीं करते। ऐसा लगता है कि सरोद इन लोगों के युग में प्रतिष्ठित वाद्य नहीं समझा जाता था, अतः उसे दरबारों में स्थान प्राप्त नहीं था।

रामपुर के नवाब हामिद अली ख़ाँ (राज्य-काल १८८९-१९३० ई०) के दरबार में फ़िदा हुसैन ख़ाँ सरोदिये का नाम हमें मिलता है। छुन्नू ख़ाँ नामक एक अच्छे सरोदवादक भी रामपुर में थे।

सदारंग के वंशजों ने जब सरोदवादकों को भारतीय राग-तत्त्व की शिक्षा दी तब दरबारों में सरोद का प्रवेश हुआ। सदारंग के वंशज बीन और रबाब की शिक्षा प्रत्येक को न देना चाहते थे, अतः उन्होंने सरोद, सितार और सारंगी के वादकों को राग-वादन की शिक्षा दी।

सारंगीवादक

आचार्य शार्ङ्गदेव ने 'संगीतरत्नाकर' के वाद्याध्याय में सारंगी की चर्चा की है। सोलहवीं शती ई० में लिखित ग्रन्थ 'संगीतनारायण' में नारायण ने 'सारंगी' का लक्षण किया है।[2] शाहजहाँ तथा औरंगज़ेब के युग में हमें जालन्धर-निवासी अल्लाहदाद ढारी नामक सारंगीवादक की चर्चा मिलती है।[1] मुहम्मदशाह रंगीले के युग में दरगाह क़ुली ख़ाँ ने अखिल भारतीय ख्याति के सारंगीवादक ग़ुलाम मुहम्मद की चर्चा की है।[3] मुहम्मद करमइमाम ने अपने ग्रन्थ 'मअ़दन्-उल्-मूसिक़ी' में दिल्लीवासी अलीबख़्श, लखनऊवासी हसनबख़्श, ग्वालियर-वासी सादिक़ अली, बाँदा-निवासी इब्राहीम ख़ाँ, मुहम्मद अली और जहूर ख़ाँ, लखनऊ-निवासी हसन ख़ाँ ढारी, तथा बनारस-निवासी कल्लू ढारी, घन्नू ढारी

---

१. राग-दर्पण, नवाँ बाब

२. भरतकोष, पृ० २२१

३. राग-दर्पण, दसवाँ बाब

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और जतन कथक की चर्चा की है।[१]

अबुल् फ़ज़्ल ने अकबरी दरबार के प्रमुख कलाकारों में किसी महिला की चर्चा नहीं की, सारंगी नारीकण्ठ की संगति के लिए अधिक अनुकूल है, अतः 'आईने अकबरी' में किसी सारंगीवादक की चर्चा नहीं। सारंगी का नारायण-कृत लक्षण सिद्ध करता है कि सोलहवीं शती में यह एक आदरणीय वाद्य था।

सितारवादक

नेमत खाँ 'सदारंग' के छोटे भाई खुसरो खाँ ने 'सितार' का आविष्कार किया। इसे दरगाह क़ुली खाँ ने तीन तारोंवाला एक बाजा कहा है, जिस पर अत्यन्त सुन्दरतापूर्वक राग-रागनियों का वादन हो सकता है।[२]

मुग़ल सम्राट् शाह आलम की कृति 'नादिराति शाही' में सितार की चर्चा अन्य वाद्यों के साथ है।[३] 'नादिराति शाही' की प्रथम पाण्डुलिपि शाह आलम ने १७६७ ई० में तैयार करायी, उस समय रंगीले की मृत्यु को पचास वर्ष बीत चुके थे।[४]

सितार में फ़ीरोज़खानी गतों के प्रवर्तक फ़ीरोज़ खाँ अदारंग ही हुए हैं। उन्नीसवीं शती में मसीतखानी गतों के प्रवर्तक मसीत खाँ हुए, जिनकी चर्चा १८५४ ई० में मुहम्मद करम इमाम द्वारा लिखित ग्रन्थ 'मअदन्-उल्-मूसिक़ी' में है।

सितार की रज़ाखानी गतों के प्रवर्तक मुहम्मद रज़ा खाँ अवध के नवाब आसफ़ुद्दौला (मृ० १७९७ ई०) के आश्रित थे। उन्होंने रईसों के लिए ठुमरी के अंग पर रज़ाखानी गतें बाँधीं। उस युग के उस्ताद इस शैली को पसन्द नहीं करते थे, क्योंकि इसमें ठोक और झाले के लिए अवकाश न था।[५]

मुहम्मद करम ने सितारवादकों में मसीत खाँ, रहीमसेन, दिल्ली-निवासी नवाब हुसेन खाँ, फ़ैज़ाबाद-निवासी ग़ुलाम रज़ा, बाँदा-निवासी ग़ुलाम मुहम्मद, इलाहाबाद-निवासी बाबू ईश्वरी प्रसाद, बनारस-निवासी बाजपेयी, फर्रुख़ाबाद-निवासी बरकत अली 'सँवलिया' और नवाब हशमतजंग, वाजिद अली शाह के महामन्त्री अली नक़ी खाँ, बरेली-निवासी क़ुतुब अली 'क़ुतुबुद्दौला' और पंजाब-निवासी नबीबख़्श डेरेदार की चर्चा की है।[६]

---

१. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ८८-८९
२ पुरानी दिल्ली के हालात, पृ० ६७
३. नादिराति शाही, पृ० ८७
४. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० १४
५. वही, पृ० ८७-८८
६. वही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुहम्मद करम इमाम ने उस युग के सितारवादकों में बाँदा-निवासी ग़ुलाम मुहम्मद को सर्वश्रेष्ठ बताया और उन्हें अखिल भारतीय प्रसिद्धि का कलाकार कहा है। मुहम्मद करम इमाम की दृष्टि में ग़ुलाम मुहम्मद का सितार रबाव या बीन से कम न था।[1]

उस युग में बनारस-निवासी वाजपेयी दो मिज़राबों से सितार बजाने में निपुण थे। 'सदारंग' के वंशजों ने दूसरों को सितार की शिक्षा दी, परन्तु स्वयं सितार न बजाया। प्यार खाँ ने बरकत अली सँवलिया, फर्रुखाबाद के नवाब हश्मतजंग और बरेली-निवासी क़ुतुब अली 'क़ुतुबुद्दौला' को सितार की शिक्षा दी। इसी वंश के हैदर खाँ ने वाजिद अली शाह के महामन्त्री नवाब अली नक़ी को सितार सिखाया।[2]

फ़ीरोज़ खाँ 'अदारंग' रामपुर के नवाब फ़ैज़ुल्लाह खाँ (मृ० १७९४ ई०) के बड़े भाई सादुल्लाह खाँ के आश्रित थे। क़ुतुबअली 'क़ुतुबुद्दौला' रामपुर के नवाब अहमद अली खाँ (मृ० १८८९ ई०) के आश्रित थे और नबीबख़्श डेरेदार भी। ये रामपुर-नवाब हामिदअली खाँ (रा० का० १८९८-१९३० ई०) के भी आश्रित रहे।

तबलावादक

ऐसा लगता है कि सितार की संगति के लिए 'तबले' का आविष्कार दिल्ली में हुआ। शाह आलम ने अपने ग्रन्थ 'नादिरात‍ि शाही' (रचना-काल १७९७ ई०) में बीन, रबाब, तम्बूरा, सितार, क़ानून, दमामा, सारंगी, मुहचंग, झाँझ, मंजीरा, ढोलक, दाइरा, बाँसुरी, क़रह, हीचंग, खटजरी, कटतार, सुरनाई, अबपंग (उपंग), करनाई, नफ़ीरी, मृदंग, दफ़ की तो चर्चा की है, परन्तु तबले की नहीं।[3] इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अठारहवीं शती ई० के अन्त तक तबले का आविष्कार या प्रचलन नहीं हुआ था। इस युग से पूर्व अबुल फ़ज़्ल, फ़क़ीरुल्लाह और दरगाह क़ुली खाँ ने भी किसी तबलावादक का उल्लेख नहीं किया।

मुहम्मद करम इमाम ने मियाँ बख़्शू ढारी की चर्चा अत्यन्त सम्मानपूर्वक करते हुए इन्हें एक विशिष्ट शैली का मर्मज्ञ और अपने युग के तबलावादकों में प्रसिद्ध कहा है। साथ-ही-साथ इस तथ्य का भी उल्लेख किया है कि ओनाम-निवासी घूरन खाँ नक़्क़ारची के शिष्यों ने बख़्शू मियाँ के छक्के छुड़वा

---

१. मुसलमान और भारतीय संगीत, पृ० ८७-८८
२. वही
३. नादिरात‍ि शाही, पृ० १७, १०४, ११७, ११८, १३३, १४४, १४७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दिये थे। घूरन खाँ नक़्क़ारा बजाने के साथ-ही-साथ तबलावादन में कुशल थे। सम्भव है, उनकी शैली पृथक् हो। मियाँ बख्शू ढारी के पुत्र सलारी और मम्मू ढारी को मुहम्मद करम इमाम ने गत-परन में अच्छा कहा है। नज्जू डेरेदार उस युग के अच्छे तबलावादक थे, अघावन ढारी नक़्क़ारा और तबला अच्छा बजाते थे, विलायत अली ढारी अच्छे तबलावादक थे, हज करने के पश्चात् इन्होंने तबला बजाना छोड़ दिया था।

आबिद अली ढारी भी अच्छे तबलावादक थे। एक बार उन्होंने वाजिद अली शाह को बेताला कह दिया था, तब कुदऊसिंह पखावजी ने कहा कि ये सब तबलानवाज तो हमारे गुलाम और 'सिख्याकार' हैं।[1]

इस घटना से सिद्ध होता है कि 'तबला' पखावज का ही छोटा रूप है और तबलावादकों का निर्माण पखावजवादकों ने ही किया।

परिशिष्ट 'आ'

(प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थों में चर्चित कुछ उत्तरभारतीय संगीत-साधक काल-क्रम के अनुसार, संक्षिप्त टिप्पणियों सहित, १२ शती ई० से १९ शती ई० तक)

जिस समय वेंकटमुखी ने अपने ग्रन्थ 'चर्तुदण्डी प्रकाशिका' (रचना-काल १६६० ई०) में बहत्तर मेलकर्त्ताओं का आविष्कार तंजौर में बैठकर किया, उस समय तंजौर के पास ही पुलीकट और सद्रास में 'डच', मद्रास में 'अंग्रेज' और पाण्डिचेरी में 'फ्रांसीसी' डटे हुए थे। ये सभी अष्टक (आक्टेव) सिद्धान्त के अनुयायी थे और इनका अपना-अपना संगीत था। इस परिस्थिति से प्रभावित होकर 'वेंकटमखी' ने कहा :—

"अनन्ताः खलु देशास्तद्देशस्था अपि मानवाः'
तेषु सांगीतिकैरुच्चावचसंगीतकोविदैः
ये कल्पपिष्यमाणाश्च कल्पमानाश्च कल्पिताः
अस्मदादिभिरज्ञाताः...
नाना देशीय रागास्तद्रागसामान्यमेलकान्।
संग्रहीतुं समुन्नीता एते मेला द्विसप्ततिः।"[2]

अर्थात—"देश अनन्त हैं, उन देशों में मानव भी अनन्त हैं। उन देशों में मर्मज्ञ संगीतशास्त्री ऐसे रागों की कल्पना कर चुके हैं, कर रहे हैं और करेंगे, जिन्हें हम नहीं जानते, अतः सभी सम्भव रागों का वर्गीकरण करने के लिए ये बहत्तर मेलकर्त्ता हैं।"

---

१. मु० भा० सं०, पृ० ८९-९२
२. चतुर्दण्डी प्रकाशिका, पृ० ४२-४३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वेंकटमखी के ये शब्द उस समय की उस परिस्थिति की ओर संकेत कर रहे हैं, जिस परिस्थिति में 'डच', 'अंग्रेज' और 'फ्रांसीसी' अपने सांगीतिक स्वरों का परिचय भारत के उस भाग को दे चुके थे।

वेंकटमखी भेद में अभेद देखनेवाले भारतीय आचार्य थे, अतः उन्होंने बहत्तर मेलकर्त्ताओं की सृष्टि की।

'चतुर्दण्डी प्रकाशिका' की रचना के समय औरंगज़ेब के शासन-काल का आरम्भ था। गोलकुण्डा पर अब्दुल्लाह क़ुतुबशाह, बीजापुर पर अली आदिलशाह (द्वितीय) और अहमदनगर पर हुसेन निज़ामशाह शासन कर रहे थे।

वेंकटमखी ऐसे कलाकारों के सम्पर्क में भलीभाँति थे, जो कन्नड, तेलुगु और दक्खिनी हिन्दी में बन्दिशें गाते थे और जिनके गाने की शैली सदृश थी। वे कहते हैं—

'कर्णाटान्ध्रतुरुष्कादिपदगानेषु संग्रहम्।
तारस्थानरिगादीनां सर्वे कुर्वन्ति गायकाः।'[1]

अर्थात्—"गायक लोग 'कर्णाट पदों' (कन्नड पदों), 'आन्ध्रपदों' (तेलुगु पदों) और 'तुरुष्क पदों' (तुर्कों के पदों) के गाने में तारस्थानीय ऋषभ, गान्धार इत्यादि का प्रयोग करते हैं।"

वेंकटमखी ने 'कल्याणी' और 'पन्तुवराली' मेल को तुरुष्कप्रिय (मुसलमानों को प्रिय) कहकर भी उन्हें मेलकर्त्ता-पद्धति में स्थान दिया है।

आचार्य शार्ङ्गदेव के प्रति सम्मानसूचक शब्दों का प्रयोग करते हुए उन्होंने कहा है कि शार्ङ्गदेवोक्त राग मेरे युग में प्रसिद्ध नहीं हैं, अतः मैं अपने गुरु तानप्पा द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय के अनुसार उन रागों का निरूपण करूँगा, जो प्रचार में हैं।[2]

वेंकटमखी अथवा उनके पूर्ववर्ती किसी दाक्षिणात्य आचार्य ने यह नहीं कहा कि भारत में 'कर्नाटकपद्धति' और 'हिन्दुस्तानी पद्धति' के नाम से दो स्वतन्त्र पद्धतियाँ हैं, न यही कहा है कि 'हिन्दुस्तानी पद्धति' तो मुसलमानों के सम्पर्क से दूषित हो गयी है और तथाकथित 'कर्नाटकपद्धति' वेदाश्रित है।

दक्षिण के प्रसिद्ध सन्त गायक त्यागराज का जन्म मुग़ल सम्राट् शाह आलम के राज्यकाल में हुआ और स्वर्गवास ६ जनवरी, १८४७ ई० को। इस समय दिल्ली पर बहादुरशाह ज़फ़र का राज्य था और रामपुर पर नवाब अहमद अली खाँ शासन कर रहे थे, प्रस्तुत पंक्तियों के विनम्र लेखक के प्रपितामह महापण्डित दत्तराम की आयु इस समय पैंतीस वर्ष थी।

त्यागराज ने 'कापिं' (काफ़ी), 'जिंगल' (जंगूला), 'हुसेनी', 'दरबार' जैसे

---

१. चतुर्दण्डी प्रकाशिका, पृ० १३
२. वही, पृ० ५७

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुस्लिम रागों का प्रयोग अपनी कृतियों में किया, परन्तु उनके संगीत को मुस्लिम सम्पर्क से दूषित कहने का साहस किसी ने न किया।

अस्तु, पश्चिमोत्तर प्रदेश से भारत में आनेवाले मुसलमान उत्तर भारत को 'हिन्दुस्तान' और दक्षिण भारत को 'दकन' कहते थे। हैदराबाद इत्यादि में जा बसनेवाले मुसलमान भी उत्तर भारत को 'हिन्दुस्तान' कहते थे। उत्तर प्रदेश के रहनेवालों को आज भी बंगाली और पंजाबी सज्जन 'हिन्दुस्तानी' कहते हैं। अतः आगरा, दिल्ली, लखनऊ, जौनपुर जैसे नगर संगीत के जिस प्रकार के केन्द्र रहे, उसे 'हिन्दुस्तानी संगीत' कह दिया गया।

यहाँ तक तो कुशल थी, परन्तु आज जब विदेशों में कुछ विशिष्ट सज्जन विशिष्ट प्रयोजन से यह कहते हैं कि 'कर्नाटक संगीत' का वर्तमान रूप अनादि काल से अविकृत है और 'हिन्दुस्तानी संगीत' मुस्लिम संसर्ग से भ्रष्ट हो गया, तब एक चिन्तनीय भ्रान्ति की सृष्टि होती है।

अस्तु, प्रस्तुत प्रसंग में हम 'हिन्दुस्तानी संगीत' के कुछ साधकों की ही चर्चा करेंगे।

१. शैख़ बहाउद्दीन ज़करिया

इनका जन्म ११८२ ई० में हुआ और स्वर्गवास १२६७ ई० में। इनके पूर्वज पहले तो अरब आक्रान्ताओं के साथ सिन्ध आकर बसे और ग़ज़नवी सुल्तानों की छत्रछाया में मुलतान आकर रहने लगे।

शैख़ बहाउद्दीन ज़करिया ने अनेक इस्लामी देशों की यात्राएँ की थीं। सिन्ध के प्रसिद्ध सन्त सैयद जलालुद्दीन बुख़ारी इनके मुरीद और ख़लीफ़ा थे। शैख़ मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी (मृ० १२३५ ई०) और उनके मुरीद एवं ख़लीफ़ा शैख़ बख़्तयार काकी (मृत्यु १२३६ ई०) से शैख़ बहाउद्दीन ज़करिया का अच्छा परिचय था। ये अनेक विद्याओं के पारंगत विद्वान् थे, इनके कारण मुलतान विद्याओं का केन्द्र बन गया था। संगीत पर भी इनका अद्भुत अधिकार था और इन्होंने अनेक रागों का अविष्कार किया था। (देखिए : 'अरब और हिन्द के तअल्लुक़ात', पृ० ३५५-३८७, 'मुसलमान और भारतीय संगीत', पृ० १२-१३, २७, ५७, ६०; 'मअदन्-उलू-मूसिकी', पृ० १५२)

२. महमूद क़व्वाल

इनके आश्रयदाता शैख़ हमीदुद्दीन नागौर के क़ाज़ी थे और शैख़ मुईनुद्दीन चिश्ती के मुरीद। शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (राज्य-काल १२१०-३५ ई०) की समा में इन्होंने क़व्वाली गाकर 'साद' और 'एमाद' जैसे संगीतविरोधियों को भी मन्त्रमुग्ध कर दिया था। ये 'संगीत-रत्नाकर' के प्रसिद्ध लेखक आचार्य शार्ङ्गदेव के समकालीन थे। (देखिए : 'आदि तुर्ककालीन भारत', पृ० ३०१;

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'मुसलमान और भारतीय संगीत', पृ० ५६-५७)

३. शैख़ कदवा

ये शैख़ बहाउद्दीन ज़करिया मुलतानी के पुत्र, संगीतमर्मज्ञ और संगीतानुरागी थे। गयासुद्दीन बलबन का पुत्र और मुलतान का सूबेदार मुहम्मद इनका बड़ा भक्त था और इन्हें निमन्त्रित करके क़व्वाली आयोजित कराता था। अमीर ख़ुसरो उसके आश्रय में थे और शैख़ कदवा से प्रभावित हुए थे। (देखिए : आदि तुर्ककालीन भारत, पृ० १६०; मुसलमान और भारतीय संगीत पृ० ५७)

४. मुहम्मद सना चंगी

जलालुद्दीन खिलजी के आश्रित इस ढोलकवादक की अत्यन्त प्रशंसा इतिहासकार बरनी ने की है। (दे० : ख़िलजीकालीन भारत, पृ० १५-१६; मु० मा० सं०, पृ० ५८)

५. मौलाना हमीदुद्दीन

ये अलाउद्दीन ख़िलजी (राज्य-काल १२९६-१३१६ ई०) के युग में दिल्ली-निवासी श्रेष्ठ गायक थे। (दे० : ख़िलजीकालीन भारत, पृ० ९०; मु० भा० सं०, पृ० ५९)

६. मौलाना लतीफ़

ये भी अलाउद्दीन ख़िलजी के युग में एक प्रमुख गायक थे। (दे० : मु० भा० सं०, पृ० ९०; ख़ि० का० भा०, पृ० ९०)

७. अल्ताफ

ये मौलाना लतीफ़ के पुत्र और मुहम्मद गायक के भाई थे। (दे० : ख़ि० का० भा०, पृ० ९०; मु० भा० सं०, पृ० ५९)

८. मुहम्मद

ये मौलाना लतीफ़ के पुत्र और अल्ताफ़ के भाई थे। (दे० : ख़ि० का० भा०, पृ० ९०; मु० मा० सं०, पृ० ५९)

९. महमूद (ग़ज़ल-गायक)

ये अलाउद्दीन ख़िलजी के युग में श्रेष्ठ ग़ज़ल-गायक थे। (दे० : वही)

१०. मुहम्मद (ग़ज़ल-गायक)

ये अलाउद्दीन ख़िलजी के युग में श्रेष्ठ ग़ज़ल-गायक थे। (दे० : वही)

११. ईसा ख़ुदादी

ये अलाउद्दीन ख़िलजी के युग में एक प्रमुख ग़ज़ल-गायक थे। (दे० : वही)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१२. फ़ुतूहा

ये फ़क़ाई नामक संगीतजीवी की पुत्री थीं, जलालुद्दीन ख़िलजी के दरबार की प्रमुख गायिका थीं। (दे० : ख़ि० का० भा०, पृ० १५, १६; मु० भा० सं०, पृ० ५७)

१३. नुसरत ख़ातून

ये जलालुद्दीन ख़िलजी के युग की प्रसिद्ध दरबारी गायिका थीं। (दे० : वही)

१४. मेहर अफ़रोज़

ये जलालुद्दीन ख़िलजी के दरबार की प्रमुख गायिका थीं। (दे० : वही

१५. ख़्वाजा सैयद मुहम्मद इमाम

ये शैख़ फ़रीदुद्दीन गंजशकर (मृ० १२५६ ई०) के दौहित्र, शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती (मृ० १३२४ ई०) के मुरीद और हज़रत अमीर ख़ुसरो के गुरुबन्धु और सखा थे। अपने युग के प्रमुख संगीतमर्मज्ञ, गायक और गायकों के आश्रयदाता थे। इनकी सेवा में फ़ारसी और हिन्दी रचनाएँ गानेवाले अनेक क़व्वाल रहते थे। (दे० : 'सियरुल् औलिया', निज़ामी वंसरी, पृ० ४४०-४४५ पर उद्धृत; मु० भा० सं०, पृ० २८)

१६. ख़्वाजा सैयद मुहम्मद मूसा

ये सैयद मुहम्मद इमाम के अनुज, संगीतमर्मज्ञ, गायक, कवि एवं अन्य अनेक विद्याओं के मर्मज्ञ पण्डित थे।

१७. अमीर ख़ुसरो

इनका जन्म १२५३ ई० में हुआ। उत्तरप्रदेश के एटा ज़िले में स्थित पटियाली नामक ग्राम को इनका जन्म-स्थान होने का सौभाग्य प्राप्त है। इनका वास्तविक नाम अबुल् हसन था। इनके पिता सैफ़ुद्दीन लाचीनी तुर्क थे और इनकी माँ हिन्दू। इनके नाना एमादुल्मुल्क नौमुस्लिम हिन्दू रावत थे। हिन्दू माँ की सन्तान होने के कारण ही इन्होंने हिन्दी को अपनी मातृभाषा कहा है।

१२६४ ई० में अमीर ख़ुसरो के पिता एक युद्ध में मारे गये, अतः अमीर ख़ुसरो अपने नाना के संरक्षण में पले, बढ़े। ये बाल्यावस्था में ही शैख़ निज़ामुद्दीन चिश्ती के मुरीद हो गये थे, आठ वर्ष की आयु में इन्होंने काव्य-रचना आरम्भ कर दी थी और बारह वर्ष की आयु में इनका काव्य अच्छी कोटि का होने लगा था। इन्होंने फ़ारसी के श्रेष्ठ कवियों की रचना का अध्ययन और उनकी शैली का अनुकरण किया। फ़ारसी, अरबी और तुर्की के साथ-साथ इन्होंने हिन्दी का भी अध्ययन किया था; ये अनेक ब्राह्मणों के भी शिष्य थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बलबन के राज्य-काल (१२६५-१२८७ ई०) में अमीर ख़ुसरो ने बलबन के भतीजे अलाउद्दीन किशली खाँ की नौकरी की, कुछ दिनों के बाद वह बलबन के छोटे पुत्र बुग़रा खाँ के नौकर होकर लखनौती गये और १२७९ में वे बलबन के ज्येष्ठ पुत्र शाहज़ादा मुहम्मद के नौकर होकर मुलतान चले गये। मुलतान में उन्हें शेख़ बहाउद्दीन ज़करिया के पुत्र शेख़ कदवा जैसे संगीतमर्मज्ञों के सत्संग का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

१२८४-८५ ई० में मुग़ल आक्रान्ताओं ने शाहज़ादा मुहम्मद का वध किया और अमीर ख़ुसरो बन्दी बनाकर हिरात और बलख़ ले जाये गये। प्राय: दो वर्ष बन्दी-जीवन बिताने के पश्चात् वे किसी तरह भागकर दिल्ली पहुँचे और बलबन की सेवा में उपस्थित हुए। शाहज़ादा मुहम्मद की मृत्यु के विषय में अमीर ख़ुसरो ने बलबन को स्वरचित ऐसा करुण मर्सिया सुनाया कि रोते-रोते उसे ज्वर चढ़ आया और वह तीसरे दिन ही मर गया।

अमीर ख़ुसरो अमीर अली जामदार के आश्रित होकर अवध चले गये और १२८८ ई० में सम्राट् कैक़ुबाद (रा० का० १२८७-१२९० ई०) के द्वारा निमन्त्रित किये जाने पर दिल्ली चले आये।

जलालुद्दीन खिलजी (१२९०-१२९६ ई०) के युग में ये शाही पुस्तकालय के अध्यक्ष नियुक्त हुए। इस दरबार में सुन्दर किशोरों और रूपाजीवाओं के सौन्दर्य की प्रशंसा में ग़ज़लों की रचना करना भी ख़ुसरो का कर्तव्य था। ये ग़ज़लें लौकिक एवं ईश्वरीय दोनों प्रकार के प्रेम से सम्बद्ध की जा सकती थीं।

अलाउद्दीन खिलजी (रा० का० १२९६-१३१६ ई०) ने अमीर ख़ुसरो को 'ख़ुसरूए शाइरां' (कवि-सम्राट्) उपाधि दी। यह उपाधि ही इनका नाम बन गयी।

क़ुतुबुद्दीन खिलजी (रा० का० १३२०-२५ ई०) ने अमीर ख़ुसरो के एक क़सीदे पर प्रसन्न होकर उन्हें एक हाथी के भार के बराबर स्वर्ण और रत्न दिये।

ग़यासुद्दीन तुग़लक़ (रा० का० १३२०-२५ ई०) के साथ अमीर ख़ुसरो बंगाल गये और निज़ामुद्दीन चिश्ती के स्वर्गवास के पश्चात् इसी वर्ष उनकी मृत्यु हुई और वे निज़ामुद्दीन चिश्ती की समाधि के पास दफ़न कर दिये गये।

जामी के अनुसार अमीर ख़ुसरो ने निन्यानवे ग्रन्थों की रचना की थी, जिनमें से आज कुछ ही उपलब्ध हैं।

अपने ग्रन्थ 'क़िरानुस्सादैन' में ख़ुसरो ने कहा है कि मुझे ईरानी संगीत के चार उसूलों, बारह पर्दों एवं सूक्ष्म रहस्यों का ज्ञान है। क़व्वाली की गोष्ठियों में निज़ामुद्दीन चिश्ती जब भावमग्न होकर नाचने लगते, तब ख़ुसरो गाते थे। दौलतशाह के द्वारा उद्धृत अमीर ख़ुसरो के एक 'क़तअ़' (छन्द-विशेष) में कहा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गया है कि मेरी सांगीतिक रचनाएँ तीन जिल्दों में आयेंगी। 'तज़किरः उर्फ़ात' नामक ग्रन्थ में औहादी ने कहा है कि अमीर खुसरो ने हिन्दी में भी उतने ही परिमाण में कविताएँ लिखीं, जितने परिमाण में फ़ारसी में। खुसरो को हिन्दी में लिखने की प्रेरणा उनके पीर शैख निज़ामुद्दीन चिश्ती ने दी थी, जिनका जन्मस्थान बदायूँ था।

अमीर खुसरो ने भारतीय संगीत को विश्व में सर्वश्रेष्ठ और भारतीय ब्राह्मणों को अरस्तू के समान ज्ञानी और पण्डित कहा है। अमीर खुसरो के अनुसार अनेक विदेशी चिरकाल से भारतीय संगीत की शिक्षा लेने के लिए भारत आते थे, परन्तु उसमें पारंगत न हो पाते थे।

अमीर खुसरो भारतीय एवं अभारतीय संगीतज्ञों में प्रतियोगिताएँ भी कराते थे। वे ऐसा इसलिए करते थे कि 'खुरासानी सिलहटी कबूतर' (गायक) यह जान सकें कि भारतीय चिड़ियाँ (मधुर गायक) कैसा गाती हैं। 'एजाजे खुसरवी' में खुसरो के ये शब्द भारतीय कलाकारों की श्रेष्ठता व्यंजित करते हैं।

खुसरो के समवर्तियों और उनसे सम्पृक्त व्यक्तियों में शैख कदवा मुलतानी, ख्वाजा सैयद मुहम्मद इमाम, ख्वाजा सैयद मूसा, मौलाना हमीदुद्दीन, लतीफ़, अल्ताफ़, मुहम्मद, महमूद और ईसा खुदादी जैसे संगीतमर्मज्ञ और गायक थे।

'अबुल् फ़ज़्ल' के अनुसार 'समित' (भारतीय गुणियों की समिति) और 'तातार' (तातारी अर्थात् तुर्किस्तान के तातार नामक प्रदेश के निवासियों) की सहायता से खुसरो ने 'क़ौल' एवं 'तराना' का आविष्कार किया, जिनमें भारतीय और अभारतीय शैली का मिश्रण है। 'क़ौल' का अर्थ 'सूक्ति' है, क़ौल गानेवाले क़व्वाल कहलाते हैं और 'ग़ज़ल' गानेवाले भी। 'तराना' भारतीय 'वाद्य-प्रबन्ध' का रूपान्तर था। इस प्रबन्ध में विभिन्न वाद्यों में निकलनेवाले 'पाटों' (बोलों) और मुख से बोले जानेवाले अर्थहीन 'स्तोभाक्षरों', 'शुष्काक्षरों' अथवा 'वाक्करणों' का प्रयोग होता था।

खुसरो ने भारतीय रागों को अभारतीय 'मुक़ाम-पद्धति' में वर्गीकृत किया, कालान्तर में खुसरो का सम्प्रदाय ही 'इन्द्रप्रस्थ-मत' कहलाया। 'मेल-पद्धति' एवं 'ठाठ-पद्धति' के नाम से अभारतीय 'मुक़ाम-पद्धति' ही 'मूर्च्छना-पद्धति' के स्थान पर प्रचलित हो गयी। राग-वर्गीकरण की दृष्टि से आज सारा भारत खुसरो का अनुयायी है।

(देखिए : आदि तुर्ककालीन भारत, पृ० २३२; खिलजीकालीन भारत, पृ० १८०, निज़ामी बंसरी, पृ. २८, ८१, ८२, २९९, ३००; लाइफ़ एण्ड वर्क्स ऑफ़ अमीर खुसरो, पृ० २३८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१८. गोपाल नायक

अलाउद्दीन खिलजी (रा० का० १२९६-१३१६ ई०) की प्रशंसा में गोपाल नायक की एक रचना मिलती है। ये 'चतुर्दण्डी-सम्प्रदाय' के संस्थापक थे। गीत, आलाप, ठाप, और प्रबन्ध मिलकर चतुर्दण्डी कहलाते हैं। 'संगीत-रत्नाकर' के प्रसिद्ध टीकाकार कल्लिनाथ ने आदरपूर्वक इनका उल्लेख किया है। सम्भवतः इन्होंने किसी ग्रन्थ की भी रचना की थी।

ऐसा लगता है कि उस समय के यादव नरेश रामचन्द्र के साथ ये अलाउद्दीन खिलजी की सेवा में दिल्ली पहुँचे, जिन्हें अलाउद्दीन खिलजी ने 'राय-रायान' की उपाधि और गुजरात की जागीर दी थी।

अपनी भारतीयता पर गर्व करनेवाले, भारत को संसार में सर्वश्रेष्ठ देश, भारतीय संगीत को विश्व में सर्वोत्तम और भारतीय ब्राह्मणों को अरस्तू कहनेवाले अमीर खुसरो से इनका सौहार्द स्वतःसिद्ध है। ये निस्सन्देह उस 'समिति' में मूर्धन्य स्थान पर रहे होंगे, जो अमीर खुसरो की सहायता सांगीतिक विषयों में कर रही थी और जिसका उल्लेख अबुल् फ़ज़्ल ने किया है।

गोपाल नायक और अमीर खुसरो की तथाकथित प्रतियोगिता की कहानी औरंगज़ेब के युग में फ़क़ीरुल्लाह ने गढ़ी है। खुसरो के समसामयिक इतिहासकारों ने इस प्रतियोगिता के सम्बन्ध में कोई चर्चा नहीं की। (दे० : संगीतचिन्तामणि, पृ० ३१८; भरतकोष, पृ० १९९; संगीत-रत्नाकर, तालाध्याय, कल्लिनाथ-टीका, अडयार-संस्करण, पृ० १४०; चतुर्दण्डी प्रकाशिका, प्रबन्ध प्रकरण, श्लो० ५; मध्य युग का इतिहास, पृ० २३०)

१९. क़ुतुबुद्दीन खिलजी

ये दिल्ली-सम्राट् स्वयं नाचते-गाते, नारी-वेश में निकल पड़ते और अपने सरदारों के घरों में भी जाकर नाचते थे। इनके कृपापात्र जिन खुसरो खाँ ने इनका वध किया और तीन महीने तक दिल्ली पर राज्य किया, वे गुजरात की परवार नामक संगीतजीवी जाति के एक सुन्दरतम नवयुवक थे। (दे० : मध्ययुग का इतिहास, पृ० २५१-२५२; खिलजीकालीन भारत, पृ० १३३)

२०. क़ाज़ी सिराज

यह फ़ीरोज़शाह बहमनी (रा० का० १३९७-१४२२ ई०) के क़ाज़ी थे। नाचने, गाने और स्वर-मण्डल बजाने पर इनका और इनके साथियों का पूर्ण अधिकार था। (दे० : ए फारगाट्न एम्पायर, पृ० ५८-६४)

२१. मीरान सैयद नूरुल्लाह

ये सिकन्दर लोदी (रा० का० १४८८-१५१७ ई०) के दरबार के प्रमुख

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संगीतमर्मज्ञों और पारखियों में थ। (दे० : तुग़लक़कालीन भारत, भाग-२, पृ० २२०)

२२. सैयद इब्नुर्रसूल

ये भी सिकन्दर लोदी के दरबार में थे। संगीतमर्मज्ञ और कलापरीक्षक थे। (दे० : वही)

२३. मियाँ ताहा

इनकी गणना सिकन्दर लोदी के प्रधान पुरुषों में थी। ये प्रकाण्ड राज-नीतिज्ञ, कुशल प्रशासक, चतुर शिल्पी और महान् संगीतज्ञ एवं कलाकार थे। उस युग के बड़े-बड़े ब्राह्मण पण्डित इनसे संगीत की शिक्षा लेते थे। ये वीणावादन के भी मर्मज्ञ थे। (दे० : उत्तर तैमूरकालीन भारत, पृ० ३३२)

२४. बैंजू

इनके मार्गदर्शन में ही ग्वालियर-नरेश मानसिंह तोमर ने ब्रजभाषा के माध्यम से ध्रुवपद का पुनरुद्धार किया। मानसिंह तोमर की मृत्यु (१५१६ ई०) के पश्चात् ये मानसिंह तोमर के पुत्र विक्रमाजीत (मृ० १५२६ ई०) के आश्रय में रहे, तत्पश्चात् कुछ दिनों कालिंजर के राजा कीरत के पास रहकर ये बहादुर-शाह गुजराती (रा० का० १५२७-३७ ई०) के आश्रय में रहे। १५३५ ई० में जब हुमायूँ ने माण्डो जीतकर क़त्लेआम कराया, तब बैंजू ने फ़ारसी ग़ज़लें गाकर हुमायूँ को प्रसन्न किया। अवसर मिलते ही यह भागकर पुन: बहादुरशाह गुज-राती के पास चले गये। बहादुरशाह गुजराती के आश्रित गोपाल भी बैंजू के ही शिष्य थे।

बैंजू ब्रजभाषा-ध्रुवपदों के आदिगायक और कलावन्तों की उस परम्परा के प्रवर्तक हैं, जो मुग़ल-दरबार पर छायी रही और ग्राम-मूर्च्छना-पद्धति के भी विशेषज्ञ थे। (दे० : मिराति सिकन्दरी, पृ० २४९; खुलासतुल् ऐश आलमशाही, पृ० १४६ 'अ'; मिराति आफ़ताबनुमा, पृ० २८९ 'अ'; उर्दू 'आजकल', अगस्त १९५६ ई०, पृ० १०३)

२५. महमूद (ग्वालियर)

ये मानसिंह द्वारा रचित ग्रन्थ 'मानकुतूहल' की रचना में सहायक थे। (दे० : रा० द०)

२६. लोहंग

ये 'मानकुतूहल' की रचना में सहायता करनेवाले कलाकारों में और मान सिंह तोमर के आश्रित थे। (दे० : रागदर्पण, भूमिका, रामपुर-प्रति)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२७. नायक पाण्डवी

ये कुरुक्षेत्र में स्नान करने के लिए तैलंग देश से आये थे। 'मानकुतूहल' की रचना में इन्होंने भी मानसिंह तोमर की सहायता की थी। (दे० : रा० द०, भूमिका, रामपुर-प्रति)

२८. नायक बख़्शू

ये बैजू के पट्टशिष्य, श्रेष्ठ गायक और ध्रुवपदकार थे। शाहजहाँ ने 'सहस-रस' के नाम से इनके ध्रुवपदों का संकलन किया है। ये अपने गुरु बैजू के साथ-साथ ही रहे। इनका पुत्र हुसेनी बहादुरशाह गुजराती के पुत्र महमूद द्वितीय के युग में जब चमक रहा था, तब ये वृद्ध हो चले थे। (दे० : मिराति सिकन्दरी, उर्दू 'आजकल', अगस्त १९५६ ई०, पृ० १०३; 'सहसरस' भूमिका, पृ० ११)

बाबर (रा० का० १५२६-३० ई०) के आश्रित निम्नांकित कलाकार थे :

२९. ख़्वाजा अब्दुल्लाह मरवारीद—ये गायक और वादक थे।

३०. क़ुले मुहम्मद ऊदी—ये बरबत और गिटारवादक थे, इन्होंने बरबत में तीन तार और बढ़ाये थे।

३१. शैख़ी नाई—ये नै, बरबत, गिटार और बीन बचपन से बजाते थे, रचयिता भी थे।

३२. शाहक़ुली—ये गिटारवादक थे, इन्होंने अनेक धुनों और रागों का आविष्कार किया था।

३३. हुसेन ऊदी—ये बरबतवादक थे।

३४. गुलाम शादी—ये गायक तथा लोकप्रिय रागों और धुनों के आविष्कारक थे।

३५. मीर अंजू—ये गायक थे।

३६. बनाई—ये गायक थे।

३७. शैख़ घूरन—इनकी गणना बाबर के बड़े भारतीय अमीरों में थी और ये सिद्ध गायक थे। जौनपुर-निवासी शैख़ अदहन इनके मित्र और शिष्य थे। (दे० : 'मुग़लकालीन भारत, बाबर,' पृ० ४४०, ५९५-५९६)

हुमायूँ के दरबारी कलाकार निम्नांकित थे :

३८. मुहम्मदजान (क़ानूनवादक)

३९. तूफ़ान (रबाबवादक)

४०. मीर सैयद अली (ग़िजकवादक)

४१. कज़क (ग़िचकवादक)

४२. बहराम (ग़िचकवादक)

४३. बायज़ीद (क़रनावादक)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

४४. क़ासिम (चंगवादक)
४५. ग़ैबुल्लाह (चंगवादक)
४६. मुख़लिस (क़ुब्सवादक)
४७. तूफ़ान (नै-वादक)
४८. बाबा दोस्त तूनकतार
४९. जान मुहम्मद अरलात
५०. यार मुहम्मद
५१. मुल्ला ताहिर बुख़ारी
५२. मस्तूरबेग बक़ावल
५३. रहमान क़ुली खुशबेगी
५४. ईरज तरसून बरलास
५५. अरबे बई
५६. हाफ़िज़ सुल्तान मुहम्मद आख़्ता
५७. हाफ़िज कमालुद्दीन हुसेन
५८. हाफ़िज मेहरी बकावली
५९. हाफ़िज नासिर
६०. मौलाना सिपहरी
६१. ख़्वाजा मुहिम अली बख़्शी
६२. मौलाना बज्मी
६३. मौलाना मीरजान पैवन्दीजेब
६४. महमूद फ़िरकीराक़
६५. साक़ी दराज़
६६. तरसून अली क़रावल

(दे० : मुग़लकालीन भारत, हुमायूँ, पृ० ८४६-८४७)

६७. नायक चतुर—ये बहादुरशाह गुजराती के आश्रित और रंग ख़ाँ के पिता थे।

६८. गोपाल (द्वितीय)

ये बैजू के शिष्य और बहादुरशाह गुजराती के आश्रित थे। बहादुरशाह गुजराती के पुत्र महमूद द्वितीय के महामन्त्री दरिया ख़ाँ के मन्त्रित्व-काल (१५३८-५४ ई०) में ये जीवित थे और अत्यन्त वृद्ध हो चुके थे।

बहादुरशाह गुजराती और सूरवंश के सुल्तानों में विरोध था। गोपाल बहादुरशाह गुजराती के दरबार में थे और तानसेन मुहम्मद आदिलशाह अदली (राज्य-काल, १५४९-५६ ई०) के दरबार में आश्रित थे। सम्भव है, दो परस्पर-विरोधी सुल्तानों के आश्रित कलाकार तानसेन और गोपाल में कभी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परस्पर प्रतिस्पर्धा भी हो गयी हो। इस सम्बन्ध में अनेक अतिरंजित कहानियाँ प्रसिद्ध हैं।

दरिया खाँ के आश्रित अब्भू नायक का गाना सुनकर गोपाल नायक की मुर्दा हड्डियों में जान आ जाती थी। सम्भव है, अब्भू गोपाल के ही शिष्य हों। (दे० : मिराति-सिकन्दरा, २४९ ब, उर्दू 'आजकल', अगस्त १९५६, पृ० १०३)

दरिया खाँ के आश्रित निम्नांकित कलाकार भी थे :

६९. मलही (गायक, नायक चतुर के पुत्र)

७०. खेमकरण (गायक)

७१. नायक अब्भू (गायक)

७२. हुसेनी (बख्शू के पुत्र, गायक)

७३. रंग खाँ (नायक चतुर के पुत्र)

एक रंग खाँ का नाम तानसेन के शिष्यों में मिलता है, सम्भवतः यही तानसेन के शिष्य हो गये हों। (दे० : मिराति-सिकन्दरी, पृ० २६८; राग-दर्पण, दसवाँ बाब)

७४. मुहम्मद आदिलशाह अदली

इतिहासप्रसिद्ध हेमूँ इनके ही महामन्त्री थे। ये खुसरो-पद्धति में पारंगत थे। बाबा रामदास, तानसेन और बाज़बहादुर भी इनके शिष्य थे। (दे० : मुन्तख़बुत्तवारीख़, खण्ड-२, पृ० ५५, ५५७)

७५. स्वामी हरिदासजी

इनके स्वर्गवास से प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पश्चात् लिखित साम्प्रदायिक ग्रन्थों ने इनके विषय में अनेक कपोल-कल्पनाओं की सृष्टि की है।

इनके द्वारा लिखित सिद्धान्त के अठारह पद और 'केलिमाल' नामक ध्रुवपद-संग्रह प्रसिद्ध हैं। 'केलिमाल' में संगृहीत पदों में नट, गौरी, कान्हरा, केदारा, कल्याण, सारंग, विभास, विलावल, मलार, गौड और वसन्त राग प्रयुक्त हुए हैं। ततवाद्यों में किन्नरी और अघौटी के साथ-साथ रबाब जैसे अभारतीय वाद्य का भी उल्लेख है, तथा अवनद्ध वाद्यों में मृदंग तथा ढप चर्चा का विषय है।

इनकी प्रसिद्धि ध्रुवपद-गायक के रूप में है। ये पच्चीस वर्ष की आयु में वृन्दावन गये और यावज्जीवन वहीं रहे।

ध्रुवपद का उद्धार मानसिंह तोमर ने बैजू की सहायता से किया, इस परम्परा की लोकप्रियता के पश्चात् ही हरिदासजी ने ध्रुवपद की शिक्षा ली होगी, अतः ये ध्रुवपदों के आदिगायक बैजू की अपेक्षा छोटे सिद्ध होते हैं।

हरिदास के संगीतगुरु का नाम उपलब्ध नहीं होता। ये बैजू अथवा उनके

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किसी शिष्य के शिष्य होंगे।

इनके वंशज कहलानेवाले सज्जनों अथवा इनके विरक्त शिष्यों की परम्परा में कोई ध्रुवपद-गायक नहीं हुआ।

'केलिमाल' के ध्रुवपदों की शैली 'सहसरस' में संगृहीत बख्शू के ध्रुवपदों से मिलती-जुलती है, परन्तु 'केलिमाल' की भाषा अधिक उदात्त, प्रांजल और मनोरम है।

किसी समसामयिक इतिहासकार ने इनकी कोई चर्चा नहीं की।

७६. तानसेन

तानसेन अकबरी दरबार के कलाकारों में सर्वश्रेष्ठ और प्रथम थे। अकबरी दरबार में आने से पूर्व ये रीवाँ-नरेश राजा रामचन्द्र और उससे पूर्व मुहम्मद आदिलशाह अदली के आश्रय में थे।

रीवाँ-नरेश ने एक बार प्रसन्न होकर तानसेन को एक करोड़ अशर्फियाँ पुरस्कार में दी थीं और अकबर ने इन्हें 'कण्ठाभरणवाणीविलास' उपाधि दी थी। अकबरी दरबार में आने के पश्चात् ये अकबर के पीर सीकरी-निवासी शैख सलीम चिश्ती के घनिष्ठ सम्पर्क में आये, जिन्होंने अपनी मृत्यु के दिन भी इनका गाना सुना।

अत्यन्त वृद्धावस्था के कारण १५७५ ई० में इनका कण्ठस्वर विकृत हो गया था। १५८९ ई० में इनका स्वर्गवास आगरा में हुआ और अकबरी दरबार के कलाकार इनकी शवयात्रा में गाते-बजाते, विवाहोत्सव जैसा मनाते हुए सम्मिलित हुए।

तानसेन ने सहस्रों ध्रुवपदों की रचना की और उनमें से अनेक अकबर की मुद्रा से अंकित किये। ये मूर्च्छना-पद्धति और मुक़ाम-पद्धति दोनों के ही मर्मज्ञ थे और अनेक रागों के आविष्कारक।

अकबरी दरबार के प्रमुख कलाकारों की सूची में तानसेन की पीढ़ी के अन्य तीन कलाकार बाबा रामदास, सुबहान खाँ और सुरज्ञान खाँ हैं, जिनका स्थान इस सूची में क्रमशः दूसरा तीसरा, तीसरा और चौथा है। पाँचवें स्थान पर मियाँ चाँद हैं, जोकि तानसेन के शिष्य हैं। इससे सिद्ध होता है कि तानसेन के जीवन-काल में ही उनकी शिष्य-परम्परा पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुकी थी और अकबरी-दरबार के अवशिष्ट इकतीस कलाकार तानसेन के शिष्य-चाँद खाँ की अपेक्षा निम्नस्थानीय थे।

तानसेन के संगीतगुरुओं में केवल मुहम्मद आदिलशाह अदली का नाम इतिहास में मिलता है, जिसने तानसेन को ख़ुसरो-सम्प्रदाय की शिक्षा दी होगी। ध्रुवपद में सम्भवतः तानसेन के गुरु बख्शू या बैजू हों।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तानसेन कलावन्त नामक संगीतजीवी जाति के व्यक्ति थे। (दे० : आईने अकबरी, पृ० ६८०; मुन्तखबुत्तवारीख, खण्ड-१, पृ० ५५७, खण्ड-२, पृ० २७३, ३४५; अकबरनामा, खण्ड-२, पृ० २७९, तुजुके जहाँगीरी, पृ० ४१३; आईने० अ०, खण्ड-२, पर उद्धृत जहाँगीरनामा रागदर्पण, दसवाँ बाब)

अकबरी-दरबार में आश्रित अन्य कलाकार ये हैं :

७७. बाबा रामदास (ग्वालियरी)

सूची में इनका स्थान द्वितीय है और इनके पुत्र सूरदास उन्नीवें स्थान पर हैं। इस्लामशाह सूर (राज्य-काल १५४५-४९ ई०) के आश्रित रहे और मुहम्मद आदिलशाह अदली (राज्य-काल १५४९-५६ ई०) के भी। अदली इनका गुरु भी था। अकबर का संरक्षक बैराम खाँ खानखाना इनके ग़ज़लगायन पर मुग्ध था और उसने एक बार इन्हें एक लाख तनके पुरस्कार में दिये थे। रामदासी मलार के आविष्कारक यही हैं। (दे० : मुन्त०, खण्ड-२, पृ० ३७; आई० अ०, खण्ड-२, पृ० ६८०)

७८. सुबहान खाँ (ग्वालियरी गायक)

सूची में इनका स्थान तीसरा है। (दे० : आ० अ०, खण्ड-२, पृ० ६८०)

७९. सुरज्ञान खाँ (ग्वालियरी गायक)

सूची में इनका स्थान चौथा है। (दे० : वही)

८०. मियाँ चाँद (ग्वालियरी गायक)

ये तानसेन के शिष्य थे, सूची में इनका स्थान पाँचवाँ है। (दे० : वही; रागदर्पण, दसवाँ बाब)

८१. विचित्र खाँ (ग्वालियरी गायक)

सूची में इनका स्थान छठा है, ये पूर्वोक्त सुबहान खाँ के सहोदर थे। (दे०; आ० अ०, खण्ड २, पृ० ६८०)

८२. मुहम्मद खाँ ढारी (ग्वालियरी गायक)

'ढारी' जाति का मूल स्थान पंजाब है, वहीं से यह जाति अन्य स्थानों में जाकर बसी। मुहम्मद खाँ ढारी का स्थान अकबरी कलाकारों की सूची में सातवाँ है। (दे० : आ० अ०, ग्लैड०, पृ० ७३४; आ० अ०, ब्लॉक०, खण्ड-२, पृ० ६८०)

८३. बीरमण्डल खाँ (ग्वालियरी सरोदवादक

अकबरी दरबार के कलाकारों की सूची में इनका स्थान आठवाँ है। (दे० : वही)

८४. बाज़बहादुर (खुसरो-पद्धति के मर्मज्ञ)

सूची में इनका स्थान नवाँ है। संगीत में ये मुहम्मद आदिलशाह अदली के शिष्य थे। लोकगीतों की प्रसिद्ध नायिका रूपमती इनकी पतिव्रता प्रेयसी थी। ये शुजाअत खाँ सूर के पुत्र थे और इनका वास्तविक नाम बायज़ीद सूर था। अकबरी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सेनापतियों के विरुद्ध ये वर्षों लड़े, मेवाड़ के राणा उदयसिंह की शरण में गये और अन्ततोगत्वा इन्होंने अकबर के सम्मुख आत्मसमर्पण किया। ये दोहज़ारी मनसबदार बना दिये गये। (दे० : रागदर्पण, दसवाँ बाब; भारत का इतिहास, पृ० २४)

८५. शिहाब खाँ (ग्वालियरी वीनकार)

सूची में इनका स्थान दसवाँ है। (दे० : आ० अ०, खण्ड-२, पृ० ६८०)

८६. दाऊद ढारी (गायक)

इनका निवास-स्थान अज्ञात है। सम्भव है, ये ढारी जाति के मूल स्थान पंजाब से ही आये हों। सूची में इनका स्थान ग्यारहवाँ है। (दे० : वही, पृष्ठ वही)

८७. सरोद खाँ (ग्वालियरी गायक)

इनका स्थान सूची में बारहवाँ है। (दे० : वही, पृ० वही)

८८. मियाँलाल (ग्वालियरी गायक)

सूची में इनका स्थान तेरहवाँ है। जहाँगीर के अनुसार ये यौवन में ही अकबर की सेवा में आ गये थे। इनकी मृत्यु पर इनकी पत्नी ने अफ़ीम खाकर अपनी जान दे दी। १६०७ ई० में इनका स्वर्गवास हुआ। (दे० : आ० अ०, खण्ड-२, पृ० ६८०, पाद-टिप्पणी)

८९. तानतरंग खाँ

ये तानसेन के पुत्र थे, किसी मुस्लिम उपपत्नी के गर्भ से इनका जन्म हुआ था। सूची में इनका स्थान चौदहवाँ है। (दे० : वही, पृ० वही)

९०. मुल्ला इसहाक़ ढारी

सूची में इनका स्थान पन्द्रहवाँ है। (दे० : वही, पृ० वही)

९१. उस्ता दोस्त (मशहद-निवासी, नै-वादक)

सूची में इनका स्थान सोलहवाँ है। (दे० : वही, पृ० वही)

९२. चरजू नायक (ग्वालियरी गायक)

सूची में इनका स्थान सत्रहवाँ है। ये 'चरजू की मलार' के आविष्कारक हैं। (दे० : वही, पृ० वही)

९३. परवीन खाँ

सूची में इनका स्थान अठारहवाँ है। इनके पुत्र बीनकार थे। (दे० : वही, पृ० वही)

९४. सूरदास (ग्वालियरी गायक)

सूची में इनका स्थान उन्नीसवाँ है। 'सूरदासी मलार' इनका आविष्कार है। ये पूर्वोक्त बाबा रामदास के पुत्र थे। (दे० : वही, पृ० वही)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

९५. चाँद ख़ाँ (ग्वालियरी गायक)
सूची में इनका स्थान बीसवाँ है। (दे० : वही)
९६. रंगसेन (आगरा-निवासी गायक)
सूची में इनका स्थान इक्कीसवाँ है। (दे० : वही)
९७. शैख़ दावन ढारी (क़रनावादक)
सूची में इनका स्थान बाईसवाँ है। (दे० : वही)
९८. रहमतुल्लाह (गायक)
ये मुल्ला इसहाक़ ढारी के भाई थे, सूची में तेईसवें स्थान पर हैं। (दे० : वही)
९९. मीर सैयद अली (मशहद-निवासी ग़िचकवादक)
हुमायूं के प्रमुख कलाकारों की सूची में ये सर्वप्रथम हैं। अकबरी दरबार के कलाकारों की सूची में ये चौबीसवें हैं। विदेशी कलाकारों में इनका नाम शीर्षस्थ है। (दे० : वही)
१००. उस्ता यूसुफ़ (हिरात-निवासी तम्बूरावादक)
सूची में इनका स्थान पच्चीसवाँ और विदेशी कलाकारों में दूसरा है। (दे० : वही)
१०१. क़ासिम 'कोहबर'
रबाब और आवज के मिश्रण से इन्होंने एक नवीन वाद्य का आविष्कार किया था। (दे० : वही)
१०२. ताशबेग (क़िपचाक़-निवासी कुबुसवादक)
सूची में ये सत्ताईसवें हैं। (दे० : वही)
१०३. सुलतान हाफ़िज़ हुसेन (मशहद-निवासी सस्वर पाठ करनेवाले)
सूची में ये अट्ठाईसवें हैं। (दे० : वही)
१०४. बहराम क़ुली (हिरात-निवासी ग़िचकवादक)
हुमायूं के कलाकारों की सूची में एक ग़िचकवादक बहराम की चर्चा है। सम्भव है, ये वही हों। अकबरी दरबार की सूची में इनका स्थान उन्तीसवाँ है। (दे० : वही)
१०५. उस्ता शाहमुहम्मद (क़रनावादक)
सूची में इनका स्थान इकतीसवाँ है। (दे० : वही)
१०६. उस्ता मुहम्मद अमीन (तम्बूरावादक)
सूची में इनका स्थान बत्तीसवाँ है। (दे० : वही)
१०७. हाफ़िज़ ख़्वाजा अली (मशहद-निवासी सस्वर पाठक)
सूची में इनका स्थान तैंतीसवाँ है। (दे० : वही)
१०८. अब्दुल्लाह मीर (क़ानूनवादक)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ये मीर अब्दुल हई के भाई और सूची में चौंतीसवें हैं। (दे० : वही)

१०९. पीरज़ादा (खुरासान-निवासी सस्वर पाठक और गायक)

ये मीर दावन के भतीजे और सूची में पैंतीसवें हैं। (दे० : वही)

११०. उस्ता मुहम्मद हुसैन (तम्बूरावादक)

सूची में इनका स्थान छत्तीसवाँ और अन्तिम है। (दे० : वही)

१११. तानसेन (द्वितीय)

ये भी कलावन्त थे और जहाँगीर (१६०५-२७ ई०) के काल में १६१८ ई० में जीवित थे (दे० : तुज़ुके जहाँगीरी, खण्ड-२, पृ० ७८)

११२ सूरज खाँ (गायक)

ये अकबरी युग के प्रसिद्ध गायक थे। (दे० : रा० द०, नवाँ बाब)

११३. बिलास खाँ (गायक)

ये तानसेन के पुत्र थे। जहाँगीर ने जिन लाल खाँ को 'गुनसमन्दरखाँ' उपाधि दी थी, वे बिलास खाँ के ही दामाद थे। (दे० : बादशाहनामा २/५; राग-दर्पण, नवाँ और दसवाँ बाब)

११४. मदन खाँ ढारी (गायक)

ये अकबरी युग के एक प्रसिद्ध गायक थे। (देखिए : राग-दर्पण नवाँ बाब)

११५. हसन खाँ अफ़ग़ान (गायक)

ये अकबरी युग में थे। (दे०, वही)

११६. नबात खाँ

ये भी अकबरी युग में थे। (दे० : वही)

११७. नायक भगवान

ये भी अकबरी युग में थे। (दे० : वही)

'राग-दर्पण' के नवें बाब में अकबरकालीन निम्नांकित आठ कलाकारों की भी चर्चा है :

११८. धोंधू नायक (गायक, 'धोंधू की मलार' के आविष्कारक)

११९. अहमीं (गायक)

१२०. बाद खाँ (गायक)

१२१. आक़िल (गायक, बाद खाँ के पुत्र)

१२२. सोन बाजपेयी

१२३. लाला

१२४. देवी (लाला के भाई)

१२५. ख़िज़्र (मुल्ला इसहाक़ के भाई)

१२६. शेख़ बंभू (जौनपुरी गायक)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ये शैख़ अहमद जौनपुरी के शिष्य थे। इन्होंने अपनी कला से अकबर को प्रसन्न किया और प्रतिस्पर्धा के लिए अकबरी दरबार के कलाकारों को ललकारा था। (दे० : मुन्त०, खण्ड-१, पृ० १७३)

१२७. शैख़ बहाउद्दीन बरनावा-निवासी (ध्रुवपद, खयाल, कवित्त, रबाब, इमरती, बीन)

ये एक अमीरज़ादे थे। बरनावा (उत्तर प्रदेश) में इनका जन्म १५११ ई० में हुआ। १५२६ ई० में यह फ़क़ीर होकर घर से निकल गये और फ़क़ीरों का सत्संग करते रहे। दक्षिण में इन्होंने गान-वादन की शिक्षा ली। १५६७ ई० में अपनी जन्म-भूमि लौटे, यह अकबर का राज्य-काल था। इन्होंने विवाह न किया, ये हरे रंग के कपड़े पहनते थे।

ध्रुवपद, कवित्त, खयाल और तरानों की अच्छी रचना करते और अत्यन्त निपुण गायक होने के साथ-ही-साथ बीन, रबाब एवं इमरती खूब बजाते थे। इन्होंने 'खयाले तराना' नामक एक वाद्य का आविष्कार भी किया था। इसका वादन अत्यन्त शक्तिशाली व्यक्ति ही कर सकता था।

जिस समय १६२८ ई० में इनका स्वर्गवास हुआ, उस समय इनकी आयु एक सौ सत्रह वर्ष की थी। इनका सम्बन्ध चिश्ती-सम्प्रदाय से था। मखदूम अलाउद्दीन द्वितीय ने अपनी पुस्तक 'किताबे चिश्तिया' में इनकी कविताओं के नमूने दिये हैं।

१५२६ ई० में जब इन्होंने दक्षिण की ओर प्रयाण किया, तब विजयनगर पर कृष्णदेवराय, गोलकुण्डा पर सुल्तान क़ुली क़ुतुबशाह (राज्य-काल १५१८-४३ ई०), बीजापुर पर इस्माईल आदिलशाह (१५१०-३४ ई०), अहमदनगर पर बुरहान निज़ामशाह (राज्य-काल १५०८-५३ ई०) शासन कर रहे थे।

१५६७ ई० में जब शैख़ बहाउद्दीन बरनावी अपने जन्म-स्थान में लौटे, तब विजयनगर-साम्राज्य बिखरकर तंजौर, मदुरा, मैसूर, जिञ्जी और पेनुकोण्डा जैसी पाँच इकाइयों में बँट चुका था, गोलकुण्डा पर इब्राहीम क़ुली (राज्य-काल १५५०-८० ई०), बीजापुर पर इब्राहीम आदिलशाह प्रथम (राज्य-काल १५३४-५७ ई०) और अहमदनगर पर मुर्तज़ा निज़ामशाह का शासन था।

इनकी मृत्यु १६२८ ई० में हुई, तब मुग़ल सम्राट् शाहजहाँ के राज्य का दूसरा वर्ष था, गोलकुण्डा पर अब्दुल्ला (राज्य-काल १६२५-७२ ई०), बीजापुर पर मुहम्मद आदिलशाह (राज्य-काल १६२७-१६५६ ई०) और अहमदनगर पर बुरहान सालिस (राज्य-काल १६००-३३ ई०) राज्य कर रहे थे।

शैख़ बहाउद्दीन की उपाधि 'खातिमुत्तारिकीन' (अन्तिम विरक्त) है। बैजू, बख्शू, गोपाल, तानसेन और उनकी सन्तानों और शिष्यों को शैख़ साहब ने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देखा था ।

शैख बहाउद्दीन बरनावी 'चौतुकला' गाना कठिन बताते थे । ये खयाल गाते भी थे और उनकी रचना भी करते थे । अकबर के युग में 'खयाल-गान' प्रचलित था, इस तथ्य का प्रमाण इनका जीवन-वृत्त है । खयाल का आविष्कारक हुसेन-शाह शर्क़ी (मृत्यु-काल १४६६ ई०) था । अतः यह सिद्ध है कि ये जौनपुर भी गये होंगे। उस समय शैख घूरन जैसे संगीत-मर्मज्ञ के शिष्य शैख अदहम वहाँ जीवित थे ।

शैख बहाउद्दीन बरनावी ने दक्षिण के किन-किन नगरों में रहकर संगीत की शिक्षा प्राप्त की, यह कहना कठिन है । (दे० : राग-दर्पण, बाब १०; उर्दू की इब्तिदाई नश्वोनुमा में सूफ़ियाए कराम का काम, पृ० ३१; मु० भा० सं०, पृ० ११०-१११)

१२८. भगवान पखावजी

अकबरी दरबार के पखावजी और तानसेन की संगति किये हुए थे । शतायु हुए (दे० : रा० द० : दसवाँ बाब)

'मआसिरे रहीमी' नामक ग्रन्थ के अनुसार निम्नांकित कलाकार खान-खाना के आश्रित थे । (दे० : आ० अ०, ब्लॉक मैन, खण्ड-२, पृ० ६८०) :

१२९. मौलाना अश्वती (तबरेज़-निवासी)

१३०. आग़ा मोहम्मद (नै-वादक, हाजी इस्माईल तबरेज़ी के पुत्र)

१३१. उस्ताद मिर्ज़ा अली (फ़तहग़ी)

१३२ मौलाना शरीफ़ (नीशापुरी, कवि नज़ीरी के भाई)

१३३. मुहम्मद मूमिन (तम्बूरावादक)

१३४. हाफ़िज़ हाजरा (गायक)

'तुज़ुके जहाँगीरी' और 'इक़बालनामा जहाँगीरी' के अनुसार ये जहाँगीर (राज्य-काल १६०५-२३ ई०) के आश्रित कलाकार हैं (दे० : वही) :

१३५. जहाँगीर दाद

१३६. चत्र खाँ

१३७. परवेज दाद

१३८. ख़ुर्रम दाद

१३९. मक्खू

१४०. हम्जा

१४१. शैख पीर मुहम्मद (रचयिता, गायक, वादक)

जहाँगीरी युग के अत्यन्त करुण गायक थे, शैख बहाउद्दीन बरनावी के सत्संग में भी रहे थे, इन्होंने उनकी अत्यन्त सेवा की थी। जब उनका देहान्त

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हुआ तब पीर मुहम्मद जवान थे। शैख के मरते ही ये यात्रा पर निकल खड़े हुए। अनेक नरेश इनसे परिचित थे।

ये बचपन में अनाथ हो गये थे, अतः अपने सम्बन्धी शैख नसीरुद्दीन के संरक्षण में पले-बढ़े। उनके ही सत्संग से इन्होंने संगीत में अत्यन्त उन्नति कर ली थी। इन्होंने हुसेनशाह शर्क़ी की शैली को नवजीवन दिया, जो 'चौतुकलों' और 'ख़यालों' की रचना करता था।

१४२. शौक़ी आनन्द खाँ (ग़ज़ल-गायक)

शौक़ी अपने युग का अद्भुत गायक था। इसे हिन्दी और फ़ारसी चीज़ों को गाने पर अधिकार था। जहाँगीर ने इसे 'आनन्द खाँ' उपाधि दी थी और एक वार प्रसन्न होकर मंगलवार को आये हुए समस्त उपहार इसे दे दिये। (दे० : जहाँगीरनामा, पृ० ३६६, ४३३)

१४३. बख़्तर खाँ (कलावन्त)

ये 'किताबे नवरस' के लेखक बीजापुर-सुल्तान का गुरु था, जिसे आदिलशाह ने अपनी भतीजी ब्याह दी थी, जहाँगीर को यह दरवेश के रूप में मिला था। जहाँगीर ने पहली ही बार में इसे दस सहस्र रुपये, सभी प्रकार के वस्त्र तथा मोतियों की एक माला देकर आसफ़ खाँ का अतिथि बनाया था। (दे० : जहाँगीरनामा, पृ० ३३९।

१४४. जगन्नाथ कविराय

इन्हें शाहजहाँ ने चाँदी से तुलवाया और 'कविराय' उपाधि दी थी। इन्होंने 'नट' में एक ध्रुवपद की रचना करके तानसेन को सन्तुष्ट किया और उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया था। (दे० : रा० द०, दसवाँ बाब)।

'राग-दर्पण' दसवें बाब के अनुसार अवशिष्ट कलाकार निम्नांकित हैं :

१४५ सुन्दरघन (अच्छे रचयिता और गायक)

१४६. हयात सरसनैन (रचनाकार, औरंगज़ेब के कृपापात्र, मुग़ल दरबार में आनुवंशिक वृत्ति)

१४७. मुहम्मद बाक़ी (अच्छे रचनाकार)

१४८. शैख़ सादुल्लाह लाहौरी (श्रेष्ठ गायक)

१४९. ग़ुलाम मुहीउद्दीन (अच्छे रचनाकार, अमीरज़ादे, अन्त में फ़क़ीर)

१५०. हमीरसेन कलावन्त (तानसेन के पुत्र, ध्रुवपद-गायक)

१५१. सोहिलसेन कलावन्त (तानसेन के पुत्र, अच्छे रचनाकार, शुजा के आश्रित, सत्तर वर्ष जिय)

१५२. सुधीनसेन कलावन्त (गायक, सोहिलसेन के पुत्र)

१५३. लाल खाँ 'गुनसमन्दर खाँ' (गायक)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ये बचपन से ही तानसेन की सेवा में आ गये थे, बिलास खाँ के दामाद थे, तानसेन की रचनाओं को जैसा-का-तैसा गाते थे, १६३० ई० में शाहजहाँ ने इन्हें 'गुनसमन्दर खाँ' उपाधि दी, १६५२ ई० में स्वर्गवासी हुए। इनके चार पुत्र खुशहाल खाँ, बिसराम खाँ, रसबैन खाँ और एक अज्ञातनाम थे। भूपत खाँ इनके पोते और बिसराम खाँ के पुत्र थे।

१५४. रंग खाँ कलावन्त

ये तानसेन के शिष्य, अत्यन्त श्रेष्ठ गायक, शाहजहाँ के पुराने नौकर, फ़क़ीरों के भक्त और फ़क़ीरुल्लाह के मित्र थे।

१५५ धरमदास कलावन्त (अच्छे ध्रुवपद-गायक, पचास-साठ वर्ष जिये)

१५६ तुलसीराय कलावन्त (अच्छे गायक, पचास-साठ वर्ष जिये)

१५७. वाजीद खाँ कलावन्त (अच्छे ध्रुवपद-गायक, चालीस-पचास वर्ष जिये)

१५८. ख़ुशहाल खाँ कलावन्त (गायक)

औरंगज़ेब के साथ एक षड्यन्त्र में लिप्त होने के कारण शाहजहाँ ने इन्हें पदच्युत कर दिया था। अपने द्वारा रचित ध्रुवपद इन्होंने 'शाहजहाँ' की मुद्रा से अंकित किये थे। सम्राट् होने पर औरंगज़ेब ने इन्हें भी 'गुनसमन्दर खाँ' उपाधि दी थी।

१५९. किशनसेन नायक कलावन्त (अच्छे रचयिता, अच्छे कवित्त-गायक, कश्मीर में मरे)

१६०. बख़्त खाँ गुजराती (तानसेन के शिष्य, अच्छे गायक, साठ-सत्तर वर्ष जिये)

१६१. बसन्ती (गायक, बख़्त खाँ के शिष्य, तीस-चालीस वर्ष जिये)

१६२ सुखीसेन कलावन्त (श्रेष्ठ रबाबवादक, औरंगज़ेब के कृपापात्र)

१६३. सालिम खाँ डागुर (अच्छे गायक और रचनाकार)

१६४. सैयद खाँ नौहार (सुरज्ञान खाँ के पोते, खुसरो-सम्प्रदाय से परिचित, ध्रुवपद-कवित्त-गायक)

१६५. हसन खाँ नौहार (गायक, पचास-साठ वर्ष जिये।)

१६६. स्वालेह रब्बानी ढारी (मुलायम-वादक, जूतपर्वत के निवासी, फ़क़ीरुल्लाह से सम्पृक्त)

१६७. अल्लाह दाद ढारी (जालन्धर-निवासी, सारंगीवादक, पचास-साठ वर्ष जिये)

१६८. कसब कुव्वत ढारी (अच्छे रचनाकार, अस्सी-नब्बे वर्ष जिये, फ़ुल्लौर में मरे)

१६९. सवाद खाँ ढारी (रचयिता, गायक, फ़तहपुर-निवासी) रंगीले के युग में जीवित और सम्मानित थे। दरगाह क़ुली खाँ ने इनकी प्रशंसा की है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१७०. मिसरी खाँ ढारी (विलास खाँ के शिष्य, शुजा के आश्रित, रचयिता, सत्तर वर्ष जिये)

१७१. मियाँ डालू ढारी (ध्रुवपद-रचयिता, सो-वादक, अच्छे गायक, आगरा-वासी फ़क़ीर, जवानी में मरे)

१७२. कबीर क़व्वाल (सूफ़ियों के भक्त, पीर मुहम्मद के शिष्य)

१७३. रोरा क़व्वाल (अच्छे क़व्वाल, पचास-साठ वर्ष जिये)

१७४. मीर स्वालेह देहलवी (अच्छे क़व्वाल, नब्बे वर्ष जिये)

१७५. फ़ीरोज़ ढारी पखावजी (लाहौर में मरे, आयु पचास-साठ वर्ष)

१७६. शैख़ कमाल (गायक, मियाँ डालू ढारी के शिष्य)

१७७. किरपा पखावजी (औरंगज़ेब ने इन्हें 'मृदंग राय' उपाधि दी थी)

१७८. लाल कुँवारि नर्तकी—मुगल सम्राट् जहाँदारशाह की प्रेयसी थी, इसके सम्बन्धियों को उच्च पद दिये गये थे। (दे० : मु० भा० सं०, पृ० ७८)

दरगाह क़ुली खाँ मुहम्मदशाह रंगीले के युग में दिल्ली रहते थे। उनके अनुसार उस युग के कलाकार निम्नांकित हैं :

१७९. नेमत खाँ 'सदारंग'

ये परमील खाँ के पुत्र, ख़ुसरो खाँ के अग्रज, फ़ीरोज़ खाँ 'अदारंग' के चचा, ससुर और गुरु, सिद्ध वीनकार और गायक, नायिका-भेद के मर्मज्ञ, एक तातारी क़व्वाल, एक बंगाली नटवे और महाकवि देव के शिष्य, कई विषयों के अधिकारी विद्वान् एवं लेखक, ख़याल की एक नवीन शैली के जन्मदाता, शाह रहमतुल्लाह जैसे संगीतानुरागी सूफ़ियों के भक्त, लतीफ़ खाँ जैसे रसिक नागरिक के परम मित्र, कासिम अली, पन्नाबाई और कमाल बाई जैसे उत्कृष्ट शिष्यों के निर्माता तथा मुग़ल सम्राट् जहाँदारशाह और मुहम्मदशाह रंगीले के आश्रित एक युग-प्रवर्तक आचार्य थे।

१८०. ख़ुसरो खाँ (गायक, वादक, सितार के आविष्कर्ता)

ये फ़ीरोज़ खाँ अदारंग के पिता, 'सदारंग' के अनुज, सितार के आविष्कर्ता, और गुणों में सदारंग जैसे प्रतिभाशाली एवं अनेक प्रकार के वाद्यों के वादन में कुशल गुणी थे।

१८१. रहीमसेन (कवित्त-ध्रुवपद-गायक)

ये तानसेन के वंशज, कवित्त और ध्रुवपद गाने में अनुपम तथा तानसेन तृतीय के सहोदर थे।

१८२. तानसेन तृतीय

ये रहीमसेन के सहोदर और गुण में उनके सदृश थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१८३. शाह दानियाल (कवित्त-ख़याल-गायक)

अनेक कलाओं में कुशल, कवित्त और ख़याल गाने में निपुण, सूफ़ियों के वंशज, संगीत-गोष्ठियों में अध्यक्ष रहनेवाले प्रतिष्ठित व्यक्ति, अभ्यासप्रिय, रसिक एवं शिष्ट पुरुष थे।

१८४. शुजाअत खाँ (गीत-कवित्त-गायक)

रंगीले तक इनकी पहुँच थी।

१८५. ताज खाँ क़व्वाल

ये अपने युग के प्रसिद्ध क़व्वाल, मियाँ जानी और ग़ुलाम रसूल के पिता, ग़ुलाम नबी शोरी के पितामह, सूफ़ी, सूफ़ियों के भक्त और सत्पुरुष थे।

१८६. ग़ुलाम रसूल क़व्वाल

ये ताज खाँ के पुत्र, मियाँ जानी के भाई और ग़ुलाम नबी शोरी के पिता थे। इनकी और मियाँ जानी की जोड़ी प्रसिद्ध थी। नवाब शुजाउद्दौला के युग में अवध चले गये।

१८७. मियाँ जानी क़व्वाल

ये ताज खाँ के पुत्र, ग़ुलाम रसूल के भाई और ग़ुलाम नबी शोरी के चचा थे।

१८८. मुईनुद्दीन क़व्वाल

ये क़व्वाली के माने हुए उस्ताद और प्रभावशाली सात्विक गायक थे।

१८९. बुरहानी क़व्वाल

उस युग के प्रसिद्ध सूफ़ी मौलाना शाह कमाल के भक्त, अत्यन्त कुशल क़व्वाल और संगीतमर्मज्ञ थे।

१९०. जट्टा क़व्वाल

क़ुरान की सर्वात्मवादपरक आयतों के अनुपम सस्वर पाठक, असंख्य सूफ़ी रचनाओं को कण्ठाग्र रखनेवाले, वैराग्यपूर्ण और करुण रचनाओं के गायक, सूफ़ियों के लाड़ले और शाह बासत के परम भक्त थे।

१९१. अल्लाहबन्दे क़व्वाल (ख़याल-गायक)

इनका गाना अत्यन्त मधुर और रंगीन था।

१९२. बोले खाँ

बादशाह के वृत्तिभोगी, अत्यन्त विश्वसनीय और समादृत और पुरानी शैली के गायक थे।

१९३. सवाद खाँ

औरंगज़ेब के युग के कलाकारों में फ़क़ीरुल्लाह ने इनकी चर्चा की है। दिल्ली के प्रसिद्ध व्यक्तियों में थे। मुहम्मदशाह रंगीले के युग में भी पुराने लोग और नवयुवक भी इनका समान आदर करते थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१९४. रहीम खाँ (ख़याल-गायक)

सवाद खाँ और बोले खाँ की सन्तति-परम्परा के अच्छे ख़याल-गायक थे।

१९५. ज्ञान खाँ (ख़याल-गायक)

१९६. दौलत खाँ (ख़याल-गायक)

१९७. हड्डू (ख़याल-गायक)

ये तीनों रहीम खाँ (क्र० सं० १९४) के सहोदर थे।

१९८. इब्राहीम खाँ (गायक)

१९९. ख़वासी (नक़्क़ाल, ख़याल-गायक और नर्तक)

२००. अनूठा (नक़्क़ाल, ख़याल-गायक, नर्तक, ख़वासी के सहोदर)

२०१. सब्ज़ः (रूपवान नक़्क़ाल और नर्तक)

२०२. मज़ः (रूपवान नक़्क़ाल और नर्तक, सब्ज़ः के सहोदर)

२०३. यारी (अत्यन्त रूपवान नक़्क़ाल)

२०४. अबुल् हसन की प्रेयसी (ख़याल और कवित्त गाने में निपुण)

२०५. नूरबाई (शिष्ट, विदग्ध, सम्भाषण व कलाकुशल, अमीरों पर शासन करनेवाली डोमनी गायिका)

२०६. सरसरूप (यथानाम तथागुण गायिका, शासकों की परम प्रिया)

२०७. चमनी (सम्राट् की दृष्टि में सम्मानित, शिष्ट, स्वच्छ, कुशल एवं सुन्दर गायिका)

२०८. रामजनी (एतमादुद्दौला के आश्रित, संगीतमर्मज्ञ श्रोताओं की दृष्टि में सम्मानित गायिका)

२०९. मानी 'चकमक'(सम्राट की प्रेयसी, 'चकमक' रंगीले की दी हुई उपाधि)

२१०. गुलाब (रूपवती, सहृदयता और रससिद्ध विख्यात गायिका)

२११. पन्नाबाई (आविष्कारिणी प्रतिभा से युक्त, शिष्ट, सभ्य, मेधाविनी, 'सदारंग' की शिष्या)

२१२. कमालबाई (कुशल एवं अभ्यासप्रिय गायिका एवं नर्तकी, सदारंग के ख़यालों की गायिका, सम्राट् के हृदय पर शासन करनेवाली)

२१३. उमाबाई (रूपवती, चपल, आकर्षक, कवित्त और ख़याल गाने में निपुण)

२१४. कुँवर (मियाँ मुहम्मदशाह की आश्रित गायिका, उमाबाई की पुत्री)

२१५. पन्ना (सम्राट् की मुँहलगी, रचनात्मक प्रतिभा, साहित्यमर्मज्ञ, शिष्ट गायिका और नर्तकी)

२१६. तन्नो (पन्ना की बहन, गुणों में उसी जैसी)

२१७. ज़ीनत (कोमलांगी, सुकण्ठी गायिका एवं चपल नर्तकी)

२१८. भज्जी (ज़ीनत की बहन, उसी के सदृश)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२१९. हसन खाँ (रबाबवादक, सम्मानित और प्रसिद्ध)

२२०. ग़ुलाम मुहम्मद (अखिल भारतीय प्रसिद्धि का सारंगीवादक, करुण रागों में सिद्ध, सत्संगी व्यक्ति)

२२१. बाक़र तम्बूरची (सम्राट का अनुग्रहपात्र)

२२२. घासीराम पखावजी (अपने युग के अद्वितीय पखावजवादक)

२२३. हुसेन खाँ ढोलकवादक (अखिल भारतीय ख्याति के ढोलकवादक)

२२४. थन्ना (ढोलकवादक, हुसेन खाँ का शिष्य और उत्तराधिकारी)

२२५. शहबाज़ (धमधमीवादक)

२२६. शाह दरवेश (घटवादक तथा ढोलक, पखावज और तमूरे की ध्वनि साथ-साथ निकालनेवाले एक वाद्य के आविष्कारक)

२२७. एक अन्धा (पेट बजाकर नर्तकियों की आदर्श संगति करने में निपुण)

२२८. तक़ी (सम्राट् का कृपापात्र, 'भगत' (नौटकी ?) बनानेवालों का अखिल भारतीय प्रमुख)

२२९. चंगी (चंग बजाने में निपुण)

२३०. दरगाही (नर्तक और मंजीरावादक)

२३१. सुलताना (नर्तक)

२३२. हींगा (अत्यन्त गौरांग, सुवेष और कुशल नर्तक)

२३३. कालेकंका (अपने युग का अनुपम नर्तक, नृत्य के सभी अंगों में कुशल)

२३४. रहमानबाई (अत्यन्त सुन्दर षोडशवर्षीया नर्तकी)

२३५. रज़ी (गायक, सदारंग की रचनाएँ गाने में निपुण)

२३६. फ़ीरोज़ खाँ 'अदारंग' (सदारंग के भतीजे, दामाद और शिष्य, गायक एवं वीनकार, प्रथम रुहेले नवाब अली मुहम्मद खाँ के पुत्र सादुल्लाह खाँ के भी आश्रित, सितार के आविष्कारक खुसरो खाँ के पुत्र, फ़ीरोज़खानी गतों के जन्मदाता)

२३७. मेंहदीसेन

ये सादुल्लाह खाँ के आश्रित थे (दे० : इन्तखाबे यादगार, पृ० १९)

२३८. करीमसेन

ये सादुल्लाह खाँ के आश्रित थे। (दे० : वही)

२३९. उस्ताद नज़र अली

ये मुग़ल सम्राट् शाह आलम (रा० का० १७५९-१८०६ ई०) के गुरु थे। (दे० : नादिरातिशाही, भूमिका, पृ० १०)

२४०. ख्वाजा मीर 'दर्द'

ये उस युग के प्रसिद्ध सूफ़ी और संगीतमर्मज्ञ थे। अच्छे-अच्छे कलावन्त मुहम्मदशाह रंगीले के युग में अपनी रचनाएँ सुधार के लिए इन्हें दिखाते थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(दे० : नादि० शा०, भू०, पृ० ३)

२४१. मीर मुहम्मद 'रंज'

ये ख़्वाजा मीर 'दर्द' के दौहित्र थे। संगीत के बड़े-बड़े उस्ताद उनके सामने कान पकड़ते थे। (दे० : वही)

२४२. अलीमुल्लाह ख़ाँ

ये 'मअदन्-उल्-मूसिक़ी' के लेखक मुहम्मद करम इमाम के मामा थे। ख़याल-गान में शोरी के पिता ग़ुलाम रसूल (क्र० सं० १८६) और मियाँ जानी (क्र० सं० १८७) के शिष्य थे। मिया जानी और ग़ुलाम रसूल की चर्चा रंगीले के युग के कलाकारों में हो चुकी है। मुहम्मदशाह रंगीले को जब संगीत से विरक्ति हो गयी, तब कालान्तर में मियाँ जानी और ग़ुलाम रसूल ने अवध के नवाब आसफ़ुद्दौला (मृ० १८९७ ई०) का आश्रय लिया था। एक बार आसफ़ुद्दौला के महामन्त्री हसन रज़ा के द्वारा उचित सम्मान न प्रदर्शित किये जाने पर इन दोनों ने आसफ़ुद्दौला की नौकरी छोड़ दी।

२४३. ग़ुलाम नबी 'शोरी'

ये ताज ख़ाँ के पौत्र, ग़ुलाम रसूल के बेटे और मियाँ जानी के भतीजे थे। इन्होंने संगीत को आजीविका न बनाया था। इतने मस्त थे कि नवाब आसफ़ुद्दौला को पहचानते तक न थे। एक बार आसफ़ुद्दौला के द्वारा दी हुई सम्पत्ति इन्होंने मार्ग में ही गरीबों को लुटा दी। ये मुक़ाम-पद्धति में मुल्ला मुहम्मद-किताब ख़ाँ के शिष्य थे, तहरीर और ज़मज़मे की शिक्षा शोरी ने मुल्ला साहब से ली और इसका प्रयोग पंजाब की एक लोकगीत-शैली में सम्मिलित करके इन्होंने टप्पे का आविष्कार किया। ये निस्सन्तान मरे। इनके योग्य शिष्य गामू ख़ाँ थे। गामू ख़ाँ के पुत्र शादी ख़ाँ काशी-नरेश महाराज उदितनारायण के आश्रय में रहे। गामू के शिष्य परशद्दू कत्थक भी थे। (दे० : मअ० उ० मू०, पृ० २३-५०)

२४४. शकर क़व्वाल

ये लखनऊ-निवासी थे। प्रसिद्ध बड़े मुहम्मद ख़ाँ और अहमद ख़ाँ इनके पुत्र थे और यूसुफ़ तथा वज़ीर ख़ाँ दौहित्र। सम्भवतः मक्खन क़व्वाल इनके भाई थ। (दे० : मु० मा० सं०, पृ० ८२-८५)

२४५. मक्खन क़व्वाल

ये शकर क़व्वाल के सहोदर थे।

२४६. सोना क़व्वालबच्चे

ये प्रसिद्ध क़व्वालबच्चे थे।

मुहम्मद करम् इमाम ने अपने ग्रन्थ 'मअदन्-उल्-मूसिकी' में पृ० २३ से

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पृ० ५० तक उस युग के कलाकारों का संक्षिप्त परिचय दिया है। उसके आधार पर निम्नांकित कलाकार ये हैं :

२४७. गामू क़व्वाल (शोरी के शिष्य, शादी खाँ के पिता, परशद्दू कत्थक के गुरु, प्रसिद्ध टप्पा-गायक)

२४८. छज्जू खाँ (ध्रुवपद-गायक, प्यार खाँ, बासत खाँ, जाफ़र खाँ के पिता)

२४९. प्यार खाँ

ये छज्जू खाँ के पुत्र, प्रसिद्ध रबाबवादक, सुरसिंगार नामक वाद्य के आविष्कारक, बहादुर हुसेन खाँ सुरसिंगारवादक के मामा, धर्मपिता और गुरु, फ़र्रुखाबाद के रईस नवाब हश्मतजंग तथा बरेली-निवासी 'क़ुतुबद्दौला' के उस्ताद थे।

२५०. बासत खाँ

ये छज्जू खाँ के पुत्र, प्यार खाँ, जाफ़र खाँ और बासत खाँ के भाई थे।

२५१. जीवन खाँ (छज्जू खाँ के भाई)

२५२. जाफ़र खाँ

ये छज्जू खाँ के पुत्र एवं प्यार खाँ और जाफ़र खाँ के भाई थे।

२५३. शादी खाँ (शोरी के शिष्य, गामू खाँ के पुत्र, काशी-नरेश उदितनारायण के आश्रित)

२५४. क़ाजिय अली खाँ 'आरामुद्दौला' (जाफ़र खाँ के पुत्र)

२५५. सादिक़ अली खाँ 'राहतुद्दौला' (जाफ़र खाँ के पुत्र, ठुमरी में षड्ज-चालन के प्रवर्तक)

२५६. निसार अली (जाफ़र खाँ के पुत्र)

२५७. बहादुरहुसेन खाँ (जियाउद्दौला)

ये प्यार खाँ के भांजे, दत्तक पुत्र और शिष्य, अनुपम सुरसिंगारवादक, रामपुर के प्रसिद्ध साहबज़ादा हैदर अली खाँ के गुरु, २६ अप्रैल १८५७ ई० से रामपर-नवाब यूसुफ़ अली खाँ के आश्रित दरबारी, कलाकार और शिष्ट व्यक्ति थे। जनवरी १८७९ में रामपुर में ही इनका स्वर्गवास हुआ। डूंगरपुर-दरवाजे से आध मील दूर रामपुर के अपने बाग़ में दफ़न हुए। (दे० : मु० मा० भा०, पृ० ८३; मुसद्दस बेनज़ीर, पृ० ८०)

२५८. बहादुर खाँ (जीवन खाँ के पुत्र, निपुण रबाबवादक)

२५९. हैदर खाँ (जीवन खाँ के पुत्र, बहादुर खाँ के भाई, महामन्त्री अली नक़ी खाँ के गुरु)

२६०. उमराव खाँ (बीनकार, मुहम्मद अली के भाई)

२६१. मुहम्मद अली बीनकार (उमराव खाँ के भाई, काशी-नरेश उदितनारायण के आश्रित)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२६२. तुराब अली खाँ (उमराव खाँ के कुटुम्बी)

२६३. अमीर खाँ बीनकर (उमराव खाँ बीनकार के पुत्र, रहीम खाँ के भाई, रामपुर-दरबार के आश्रित, रामपुर-नवाब कल्वे अली खाँ (रा० का० १८६४-८७ ई०) के साथ १८७२ ई० में हज के यात्री, उस्ताद वज़ीर खाँ बीनकार के पिता, १३ अगस्त, १८७० ई० को रामपुर में स्वर्गवासी, शाह रफ़ीक़ के तकिये में दफ़न। साहबज़ादा हैदर अली खाँ, खुर्जा-निवासी सारंगीवादक ख्वाजाबख्श ढारी और मुहम्मद करम इमाम के गुरु, चित्रकला में मुहम्मद करम इमाम और काव्य में महापण्डित दत्तराम के शिष्य)

२६४. रहीम खाँ (उमराव खाँ के पुत्र, अमीर खाँ बीनकार के भाई, अच्छे गायक और बीनकार)

२६५. तानरस खाँ (दिल्ली-निवासी, ग़ज़ल और खयाल के गायक)

२६६. इमाम बख़्श (शाहजहानाबाद-निवासी, शतायु और संगीतमर्मज्ञ)

२६७. क़ायम खाँ कलावन्त (निज़ाम खाँ कर्री के पिता, यूसुफ़ खाँ के दादा)

२६८. निज़ाम खाँ कर्री (बाँदा के नवाब के आश्रित श्रेष्ठ गायक, यूसुफ़ खाँ और वज़ीर खाँ के पिता)

२६९. यूसुफ़ खाँ (कायम खाँ कलावन्त के पौत्र, निज़ाम खाँ कर्री के पुत्र, शकर क़व्वाल के दौहित्र, बड़े मुहम्मद खाँ के भांजे, चरखारी-नरेश के आश्रित, बाँदा-नवाब अली बहादुर के छः महीने तक अतिथि और उनके द्वारा प्रभूत सम्पत्ति से पुरस्कृत, अत्यन्त सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट)

२७०. वज़ीर खाँ (यूसुफ़ खाँ के सहोदर, उनके ही सदृश)

२७१. मौज खाँ कलावन्त (ताज खाँ क़व्वाल, क्र० सं० १५८, के साले, शोरी के पिता ग़ुलाम रसूल के मामा, अद्वितीय ध्रुवपद-गायक)

२७२. अहमद खाँ (शकर क़व्वाल के पुत्र, बड़े मुहम्मद खाँ के सहोदर, राग में मुहम्मद खाँ की अपेक्षा अच्छे)

२७३. मुहम्मद खाँ (बड़े) शकर क़व्वाल के पुत्र, अहमद खाँ के सहोदर, दक्षिण से प्रभावित, वहीं का रहन-सहन और वेश-भूषा, तान, पल्टा, तहरीर, ज़मज़मे में करारे, रीवाँ-नरेश के आश्रित, वहीं स्वर्गवासी)

२७४. क़ुतुबअली (गायक, मुहम्मद खाँ के, पत्नी से उत्पन्न पुत्र, रामपुर-नवाब यूसुफ़ अली खाँ, रा० का० १८५५-६४ ई०, के आश्रित)

२७५. मुनव्वर खाँ (मुहम्मद खाँ के रक्षिता-पुत्र, अच्छे गायक)

२७६. मुरादअली (मुनव्वर खाँ के सहोदर)

२७७. रजब अली क़व्वाल (मुहम्मद खाँ के कुटुम्बी, अच्छे खयाल गायक)

२७८. फ़ज़ल अली क़व्वाल (रजब अली के सहोदर, अच्छे खयाल-गायक)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२७९. नेंडू खाँ (बड़े मुहम्मद खाँ के दौहित्र, यूसुफ़ खाँ और वज़ीर खाँ के भांजे, गान-शैली अपनी, जबड़ा हद्दू खाँ की भाँति तैयार)

२८०. बक़ा (बनारस-गिवासी श्रेष्ठ ख़याल-गायक)

२८१. मवारी (बनारस-निवासी श्रेष्ठ ख़याल-गायक)

२८२. हद्दू खाँ गायक (नत्थन-पीरबख़्श की सन्तति-परम्परा के प्रसिद्ध गायक, चरखारीवाली बी रहीमबाई के प्रशंक, अभिमानी)

२८३. हस्सू खाँ (हद्दू खाँ के सहोदर, १८५५ ई० से पूर्व स्वर्गवासी)

२८४. नत्थे खाँ (हस्सू खाँ के सहोदर)

२८५. ग़ुलाम इमाम (हद्दू खाँ, हस्सू खाँ और नत्थे खाँ के सहोदर, १८५५ ई० से पूर्व मृत) तिरहवाँ-निवासी मौज खाँ कलावन्त इनके मामा थे।

२८६. मुराद खाँ (मेरठ-निवासी, गामू खाँ, क्र० सं० २४७, के पौत्र, शादी खाँ, क्र० सं० २५३, के पुत्र) ठाह-दून में सरगम करने में अद्वितीय।

२८७. मुराद अली खाँ ढारी (लखनऊ-निवासी, ख़याल-गायक, सुलेमान के पिता)

२८८. सुलेमान (मुराद अली खाँ के पुत्र, रज़ब अली क़व्वाल, क्र० सं० १७६, के शिष्य, अच्छा तान-पल्टा, ख़याल-गान की एक विशेष शैली)

२८९. नूर खाँ (कालपी-निवासी, अच्छे होरी-गायक, मुग़ल खाँ के भाई)

२९०. मुग़ल खाँ (नूर खाँ के भाई)

२९१. नूर खाँ चौगोशियां (दक्षिण-निवासी, होरी के अद्वितीय गायक)

२९२. ग़ुलाम रसूल खाँ (तिरहवाँ-निवासी मौज खाँ कलावन्त के भांजे, नेपाल-नरेश के आश्रित)

२९३. परशद्दू कत्थक (ख़याल और टप्पे में शादी खाँ, क्र० सं० २५३, के शिष्य, नृत्य एवं अभिनय में कुशल, बनारसवासी)

२९४ मीर अली सैयद (पीरज़ादा बासत खाँ के दौहित्र, दीर्घजीवी, नवाब सआदत अली खाँ के युग से वाजिद अलीशाह के युग तक अत्यन्त सम्मानित, महान् संगीतमर्मज्ञ, विद्वान्, किसी दरबार में न गये)

२९५. बाबू रामसहाय (ख़याल-गान में रामानुजदास और नारायणदास, होरी-ध्रुवपद में छज्जू खाँ के भाई जीवन खाँ, बीन में छज्जू खाँ, ख़याल-गान में ग़ुलाम रसूल, शंकर राव सोनाके, टप्पे में मियाँ शोरी और फ़ारसी मुक़ामों में शोरी के गुरु मुल्ला मुहम्मद किताब खाँ के शिष्य और अपने युग के अप्रतिम संगीतमर्मज्ञ, बी रहीमनबाई के गुरु)

२९६. रामानुजदास बैरागी (चरखारी-निवासी, ध्रुवपद में जीवन खाँ के शिष्य, अद्भुत गायक, बाबू रामसहाय के गुरु)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२९७. नारायणदास वैरागी (रामानुजदास वैरागी के सहोदर, गुणों में उनके सदृश)
२९८. नवाब सुल्तान अली खाँ (नवाब क़ासिम अली खाँ के पुत्र, अच्छे ध्रुवपद-गायक)
२९९. नवाब हुसेन अली खाँ (नवाब सुलतान अली खाँ के भाई, अच्छे टप्पा-गायक)
३००. अमीर अहमद साहब (अज़ीमाबाद के एक रईस, अच्छे टप्पा-गायक)
३०१. मुहम्मद दिलावर अली खाँ (मुहम्मद करम इमाम के पिता, होरी और ध्रुवपद के गायक)
३०२. बशारत अली ख़ाँ (अलीमुल्लाह खाँ, क्र० सं० २४२, के भाई, अच्छे ध्रुवपद-गायक)
३०३. रहीमनबाई (चरखारी-निवासी किफ़ायत अली की पुत्री, उस्तादों की दृष्टि में सम्माननीय अद्वितीय ख़याल-गायिका, हद्दू खाँ की दृष्टि में अद्वितीय, पौरुषपूर्ण गान, बाबू रामसहाय की शिष्या, बनारस-निवासी सारंगीवादक जतन कथक की प्रसिद्धि का कारण)
३०४. सुन्दरबाई (रहीमनबाई की बहन, ख़याल में राग-शुद्धि रखनेवाली)
३०५. लतीफ़न (रहीमनबाई की बहन, गायिका और कुशल नर्तकी)
३०६. सेढ़ूबाई (शरफ़ोबाई की माँ)
३०७. शरफ़ोबाई (बड़े मुहम्मद खाँ की शैली में ख़याल गाती थी, तान-पलटे में करारी और साफ़)
३०८. जीसुखबाई (नत्थे खाँ, क्र० सं० २८४, की शिष्या, ओज से पूर्ण ख़याल गाती थी, क्रमशः बाँदा, रामपुर और अलवर में आश्रित)
३०९. घूमन (ठुमरी-ग़ज़ल गाती थी, शरफ़ोबाई की भतीजी)
३१०. हुसैनी (शरफ़ो की बहन, ठुमरी-ग़ज़ल गाती थी)
३११. कमलाबाई (बिठूर में नानाराव की नौकर, दक्षिण-निवासी, सीधी पटली का ख़याल गाती थी)
३१२. हीराबाई (कमलाबाई की बहन)
३१३. खजूरबाई (अच्छी ख़याल-गायिका)
३१४. ख़ुर्शीदबाई (आगरा-निवासिनी, मुहम्मद अली कलावन्त की शिष्या, अच्छी ख़याल-गायिका, राग शुद्ध)
३१५. चन्दाबाई (ख़ुर्शीदबाई की बहन, नाचने-गाने में कुशल, प्रकाश कत्थक के पुत्र तानसिंह की शिष्या)
३१६. बन्दीजान (ओनाम-निवासिनी, टप्पे की श्रेष्ठ गायिका, मीर रौशनअली की शिष्या, बिठूर में नानाराव की आश्रित, अन्त में खादिम सफ़ी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

साहब की मुरीद और एक कुलीन मुसलमान की परिणीता पत्नी, रामपुर-नवाब कल्वे अली खाँ के आश्रय में भी रही।

३१७. रौशन अली मीर (बन्दीजान के गुरु)

३१८. हुसेनी (बन्दीजान की बहन)

३१९. जट्टो (कुन्दनलाल पाठक की नौकर, खयाल और तराने की अच्छी गायिका)

३२०. चित्रा (बनारस-निवासिनी, शादी खाँ की शिष्या, टप्पे की अच्छी गायिका)

३२१. इमामबाँदी (बनारस-निवासिनी, शादी खाँ की शिष्या, टप्पे की अच्छी गायिका)

३२२. लज्ज़तबख्श (ठुमरी और ग़ज़ल की अच्छी गायिका, रामपुर-नवाब कल्वे अली खाँ के आश्रय में रहीं।

३२३. गुलबदन (बनारस की कुशल नर्तकी)

३२४. जानबख्श (नर्तकी, बाँदा के नवाब जुल्फ़िकार अली खाँ की आश्रिता)

३२५. सैयद नासिर अहमद (बीनकार, बीन सीखने के लिए कलावन्त-कुल में विवाहित)

३२६. चन्द्रभागा (खयाल-गायिका, भैया गनपतराव की जननी)

३२७. सेढूबाई (पेशावर-निवासिनी, श्रेष्ठ खयाल-गायिका)

३२८. बल्लो (लाहौर-निवासिनी, ध्रुवपद और खयाल की अच्छी गायिका)

३२९. वजीरन ध्रुवपदवाली (लखनऊ-निवासिनी, श्रेष्ठ ध्रुवपद-गायिका)

३३०. हसन खाँ ढारी (बीन में सितार का बाज तैयारी से बजानेवाले)

३३१. मसीत खाँ (सितार में मसीतखानी गतों के प्रवर्तक, रहीमसेन के पिता)

३३२. रहीमसेन (मसीत खाँ के पुत्र, निपुण सितारवादक)

३३३. नवाब ग़ुलाम हुसेन खाँ (निपुण सितारवादक, मसीतखानी शैली)

३३४. ग़ुलाम रज़ा (आसफ़ुद्दौला का आश्रित, 'नग़माते आसफ़ी' का लेखक, सितार की रज़ाखानी गतों का प्रवर्तक, ठुमरी-शैली का सितार में अनुकर्त्ता)

३३५. ग़ुलाम मुहम्मद (बाँदा-निवासी, अपने युग में देश का सर्वश्रेष्ठ सितार-वादक, बीन और रबाब जैसी शैली, बलरामपुर के राजा दुर्गविजय सिंह के आश्रित)

३३६. बाबू ईश्वरीप्रसाद (बाबू रामसहाय, क्र० सं० २९५, के छोटे भाई, खयाल, होरी, सरगम और टप्पा के अच्छे गायक, सितारवादक)

३३७. बाजपेयी (बनारस-निवासी, दो मिज़राबों से सितारवादन में कुशल)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

३३८. बरक़त अली साँवलिया (प्यार खाँ का शिष्य, फ़र्रुखाबाद-निवासी, कुशल सितारवादक)

३३९. नवाब हश्मतजंग (फ़र्रुखाबाद के रईस, प्यार खाँ के शिष्य, निपुण सितार-वादक)

३४०. अली नकी खाँ (अवध के महामन्त्री, हैदर खाँ के शिष्य, अच्छे होरी-गायक और सितारिये)

३४१. क़ुतुब अली 'क़ुतुबुद्दौला' (बरेली-निवासी, प्यार खाँ के शिष्य, रामपुर-नवाब यूसुफ़ अली खाँ के आश्रित)

३४२. नबीबख़्श डेरेदार (पंजाबी, अच्छे सितारवादक, ग़ुलाम मुहम्मद (क्र०सं० ३४३) के शिष्य, अमीरजान गायिका के भाई, रामपुर-नवाब कल्बे अली खाँ के आश्रित)

३४४. अमीरजान (नबीबख़्श की बहन, रामपुर-नवाब कल्बे अली खाँ की आश्रित)

३४५. हसनबख़्श ढारी (लखनऊ-निवासी श्रेष्ठ सारंगीवादक)

३४६. साबित अली (ग्वालियर-निवासी, निपुण सारंगीवादक)

३४७. इब्राहीम खाँ (बाँदा-निवासी, निपुण सारंगीवादक)

३४८. मुहम्मद अली (बाँदा-निवासी, श्रेष्ठ सारंगीवादक)

३४९. जहूर ख़ाँ (सारंगी पर अच्छी धुन बजानेवाला)

३५०. हसन खाँ (लखनऊ-निवासी, सारंगी पर धुनों का अच्छा वादक)

३५१. क़ासिम खाँ (आसयून-निवासी, नक़्क़ारावादक)

३५२. घूरन खाँ (ओनाम-निवासी, नक़्क़ारा और तबला बजाने में कुशल)

३५३. अहमद खाँ (खुशतरंग, जलतरंग, पटलीदार नै, क्लारिउनेट बजाने में कुशल, घूरन खाँ का ससुर)

३५४. सुजान खाँ (बनारस का कुशल नक़्क़ारावादक)

३५५. रघुनाथसिंह (झाँसी के रईस, अच्छे नक़्क़ारावादक)

३५६. मख़दूमबख़्श (लखनऊ के कुशल नक़्क़ारावादक)

३५७. झब्बू (ओनाम-निवासी, देश का सर्वश्रेष्ठ नक़्क़ारावादक)

३५८. अहमद अली (बनारस के मधुर शहनाईवादक, सारंगी के समान बजाई)

३५९. बख़्शू मियाँ ढारी (उन्नीसवीं शती के प्रसिद्ध उस्ताद तबलावादक, मम्मू और सलारी के पिता)

३६०. मम्मू (बख़्शू मियाँ के पुत्र, गतवादन में अच्छे)

३६१. सलारी (मम्मू के भाई, गत-परन में अच्छे तबलावादक)

३६२. घसीट खाँ (नक़्क़ारा, अलगोज़ा, छोटी शहना, पटलीदार नै के अच्छे वादक, बाँदा के नौबतख़ाने में जमादार)

३६३. कल्लू ढारी (बनारस-निवासी, ख़याल भी गाते और सारंगी भी बजाते)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

३६४. धन्नू ढारी (बनारस-निवासी, खयाल-गायक और सारंगीवादक)

३६५. जतन कथक (बनारसवासी सारंगीवादक, रहीमनबाई की संगति के कारण प्रसिद्ध)

३६६. नज्जू डेरेदार (मियाँ बख्शू के शिष्य, अच्छे तबलावादक)

३६७. भवानीदीन पखावजी (पखावज में निष्णात, कुदऊसिंह और ताज खाँ डेरेदार के गुरु)

३६८. कुदऊसिंह पखावजी (युगप्रवर्तक पखावजवादक, 'कुँवरदास' उपाधि, बाँदा-निवासी ब्राह्मण, वाजिद अली शाह की सभा में जोतसिंह पर विजयी, कुछ दिनों रामपुर-दरबार के आश्रित)

३६९. जोतसिंह पखावजी (अच्छे पखावजी, वाजिद अली शाह के आश्रित)

३७०. ताज खाँ (कुदऊसिंह के गुरुबन्धु डेरेदार)

३७१. नासिर खाँ (ताज खाँ डेरेदार के पुत्र और शिष्य, पखावजी, रामपुर-दरबार के आश्रित)

३७२. अघावन नक़्क़ारची (ओनाम-निवासी, नक़्क़ारे और तबले का कुशल वादक)

३७३. विलायत अली ढारी हाजी (लखनऊ-निवासी प्रसिद्ध तबलावादक, हज से लौटने पर तबलावादन छोड़ा)

३७४. लल्लूजी कथक (लखनऊ-निवासी कुशल नर्तक)

३७५. प्रकाश कथक (लखनऊ के श्रेष्ठ नर्तक, अभिनयकुशल)

३७६. दुर्गा कथक (प्रकाशजी का भतीजा, कुशल नर्तक, यौवनकाल में ही मृत)

३७७. मानसिंह कथक (प्रकाशजी का पुत्र और कुशल नर्तक)

३७८. तानसिंह कथक (मानसिंह के अनुज और चन्दाबाई, क्र० सं० ३१५, के गुरु)

३७९. बेनीप्रसाद (बनारस-निवासी कथक, नृत्य और अभिनय में कुशल)

३८०. रामसहाय कथक (हण्डिया-निवासी, अच्छे कथक)

३८१. रमज़ानी नक़्क़ाल (मोहान-निवासी नर्तक)

३८२. हुसेनबख्श (लखनऊ-निवासी कुशल नर्तक)

३८३. क़ायम अली (कुशल नर्तक)

३८४. वाहिद मिर्ज़ा कश्मीरी (कुशल नर्तक)

३८५. कन्हैया (नक़्क़ाल, कुशल नर्तक, वाजिद अली शाह की प्रतिमूर्ति)

अलीमुल्लाह (क्र० सं० २४२) से लेकर कन्हैया (क्र० सं० ३८८) तक के सम्बन्ध में जानकारी के लिए संगीत-जगत् मुहम्मद करम इमाम का ऋणी है। 'मअदन-उल्-मूसिक़ी' के अनुसार मुहम्मद करम इमाम का परिचय निम्न प्रकार है :

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

३८६. मुहम्मद करम इमाम

मुहम्मद करम इमाम के पूर्वपुरुष, ग़ोर-निवासी मुहम्मद ग़ौस अली अकबर के युग में भारत आये और सम्राट् अकबर की ओर से अवध सूबे के अन्तर्गत झलोतर परगने के चौधरी नियुक्त हुए। उनके वंशज मुहम्मद ज़ोरावर अली खाँ ने आसफ़ुद्दौला (मृ० १८९७ ई०) के युग में ओनाम नामक कस्बे को अपना निवासस्थान बनाया और लखनऊ की नवाबी के नौकर रहे, इन्होंने ही मुहम्मद करम इमाम को सिपहगरी तथा अन्य अनेक कलाओं की शिक्षा दी।

मुहम्मद करम इमाम ने संगीत की आरम्भिक शिक्षा अपने पिता मुहम्मद दिलावर अली खाँ और मामा बशारत अली खाँ और अलीमुहम्मद खाँ से प्राप्त की। तत्पश्चात् इन्हें नवाब सालारजंग खाँ के पौत्र और नवाब क़ासिम अली खाँ के पुत्र नवाब हुसेन अली खाँ जैसे संगीतमर्मज्ञ के सत्संग का सौभाग्य लखनऊ में प्राप्त हुआ। यहीं सैयद मीर अली से मुहम्मद करम इमाम ने संगीत-सम्बन्धी ऐसे साम्प्रदायिक रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया, जिनका उल्लेख ग्रन्थों में न था।

मुहम्मद करम इमाम को जब यात्रा में रुचि हुई, तब उन्हें उस युग के प्रमुख कलावन्तों, क़व्वालों और ढारियों को भलीभाँति सुनने का अवसर मिला।

नसीरुद्दीन हैदर बादशाह की मृत्यु के बाद मुहम्मद करम इमाम शिकोहाबाद के रईस सैयद ग़ुलाम अब्बास के पास बहुत दिनों रहे, जो उन दिनों बाँदा की कलक्टरी में सरिश्तेदार थे। वहाँ मुहम्मद करम इमाम को उन समस्त गुणियों को भलीभाँति सुनने का अवसर मिला, जो नवाब ज़ुल्फ़िक़ार अली के संगीतानुराग के कारण उनके आश्रित थे। मुहम्मद करम इमाम वहाँ अंग्रेजों के नौकर और तहसीलदार थे।

१८५३ ई० में मुहम्मद करम इमाम ने नौकरी छोड़ी और नौकरी की आशा में वे लखनऊ पहुँचे। उस युग में बाबू रामसहाय वाजिद अली शाह के ससुर नवाब करीमुद्दौला के उस्ताद थे। मुहम्मद करम इमाम को उक्त नवाब साहब के यहाँ नौकरी मिल गयी। विरोधियों के द्वारा कान भरे जाने पर वहाँ से मुहम्मद करम इमाम की नौकरी छूट गयी। संगीत के गूढ़ रहस्यों की शिक्षा मुहम्मद करम इमाम को बाबू रामसहाय ने भी दी थी।

१८५५ ई० में मुहम्मद करम इमाम के छोटे भाई मुहम्मद फजल इमाम का देहान्त हो गया। ये राग और लय के प्रयोग में अनुपम थे। इनकी मृत्यु से मुहम्मद करम इमाम विह्वल हो गये। समय काटने के लिए इन्होंने इसी वर्ष 'मअदन्-उल्-मूसिक़ी' की रचना की। ये उमराव खाँ के पुत्र अमीर खाँ बीनकार के भी शिष्य थे।

अपने युग के कलाकारों के विषय में मुहम्मद करम का कथन विश्वसनीय

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai Charitable Foundation, Chennai

है। इन्होंने संगीत-विषयक फ़ारसी ग्रन्थों का अध्ययन किया था और ये अनेक रागों के आविष्कारक थे, जो प्रचलित न हुए।

३८७. मुहम्मद फ़ज़ल इमाम

ये मुहम्मद करम इमाम के छोटे भाई थे, राग और लय पर इनका अच्छा अधिकार था। १८५५ ई० में ये स्वर्गवासी हुए।

दक्षिण में जा बसनेवाले कुछ मर्सियागो कलाकार

करबला में हज़रत इमाम हुसेन और उनके साथियों के बलिदान की कहानी अत्यन्त करुण और हृदयद्रावक है। उस कथा की चर्चा 'गद्य' में प्रभावपूर्ण ढंग से करनेवाले व्यक्ति 'ज़ाकिर' कहलाते हैं। यदि घटना के अंश पद्यबद्ध हों और उन्हें प्रभावपूर्ण शैली में राग संवलित करके पढ़ा जाये, तो यह कला 'मर्सिया-ख़्वानी' कहलाती है। मर्सिया (शोक-गीत) प्रस्तुत करनेवाले लोग मर्सिया-ख़्वाँ कहलाते हैं। अमीर ख़ुसरो ने सम्राट् ग़यासुद्दीन बलबन के समक्ष उसके पुत्र शाहज़ादा मुहम्मद की मृत्यु से सम्बद्ध स्वरचित मर्सिया इतने प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया था कि उसे रोते-रोते ज्वर चढ़ आया और तीसरे दिन उसका भी स्वर्गवास हो गया।

दक्षिण में मर्सियाख़्वानी का प्रचलन सुल्तान मुहम्मद क़ुली क़ुतुबशाह (रा० का० १५८०-१६११ ई०) के युग से हुआ।

कुछ लोगों की दृष्टि में 'सोज़ख़्वानी' गवैयेपन से नीचे की वस्तु है, क्योंकि सोज़ख़्वाँ या मर्सियाख़्वाँ लोग 'लय' नहीं जानते, केवल 'राग' पर अधिकार रखते हैं; इस दृष्टिकोण के विरोध में यह कहा जाता है कि मर्सियाख़्वानी अथवा सोज़ख़्वानी केवल राग के स्वरों का व्यायाम नहीं है, अपितु 'सोज़' प्रस्तुत करके श्रोताओं को रोते-रोते बेहाल करने, करुण-रस में पूर्णतया निमग्न करने की कला है।

अस्तु, हम यहाँ कुछ ऐसे लोगों की चर्चा करेंगे, जो ध्रुवपद-गायक, बीन-कार, ख़यालगायक अथवा क़व्वाल होने के साथ ही सोज़ख़्वानी भी ख़ूब करते थे।

३८८. करीम ख़ाँ (करीमसेन)

ये प्रथम रुहेले नवाब अली मुहम्मद ख़ाँ (मृ० १७५० ई०) के पुत्र नवाब सादुल्लाह ख़ाँ के आश्रित थे। इतिहासप्रसिद्ध सुल्तान हैदर अली (मृ० १७८२ ई०) के एक सरदार अज़ीज़ हलीम ख़ाँ अफ़ग़ान ने इन्हें अत्यन्त सम्मानपूर्वक दक्षिण में निमन्त्रित किया। वहाँ पहुँचकर इनका मन न लगा। ये कुशल कला-वन्त थे, अतः हैदराबाद पहुँचकर क्रमशः महामन्त्री राजा चन्दूलाल, उनके चचेरे भाई राजा रघुनाथदास, राजा भवानीदास और नवाब शिकोहजंग के आश्रय में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रहे। वहीं देहान्त हुआ। कोहशरीफ़ के रास्ते में इनकी क़ब्र है। (दे० : तज्किर: ज़ाकिरीन, पृ० ४१-४२)

३८६. ख़ुशहाल ख़ाँ (द्वितीय)

अच्छे गायक होने के साथ-ही-साथ ये व्रजभाषा के कवि थे, इनका उपनाम 'अनूप' था, ये करीम ख़ाँ (क्र० सं० ३९५) के पुत्र थे। चन्दाबीबी उर्फ़ माहलक़ी-बाई इनकी प्रसिद्ध शिष्या थीं। उनके आवास 'हवेली खासरंग' में ही ख़ुशहाल ख़ाँ का स्वर्गवास हुआ।

३९०. चन्दाबीबी माहलक़ीबाई

ये बारा के ख़्वाजा मुहम्मद हुसेन ख़ाँ की धेवती थीं, इनकी माँ का नाम राजकुँवरबाई उर्फ़ मैंदाबीबी था। मैंदाबीबी अरक्षित होने के कारण गाने-बजाने और नाचने का काम करने लगी थीं। हैदराबाद के एक अमीरज़ादे नवाब वसालत अली ख़ाँ ने राजकुँवरबाई को निक़ाह में ले लिया, जो बख़्शी थे। नवाब साहब से राजकुँवरबाई के दो लड़कियाँ महताब कुँवरबाई और 'चन्दाबीबी' उत्पन्न हुईं। चन्दाबीबी का जन्म १७६७ ई० में हुआ और स्वर्गवास १८२४ ई० में।

अनेक गुणियों से तो चन्दाबीबी ने संगीत की शिक्षा ली ही, परन्तु ये ख़ुश-हाल ख़ाँ (क्र० सं० ३९६) से यावज्जीवन सीखती रहीं। इनके काव्यगुरु नवाब मीर आलम बहादुर थे। चन्दाबीबी का काव्यसंग्रह 'गुलज़ार माहलक़ीबाई' के नाम से प्रकाशित हुआ।

ये अत्यन्त सुन्दर, शिष्ट, गान-कलानिपुण, उदार एवं कुशल शिक्षिका थीं। इनकी दो प्रसिद्ध शिष्याएँ हुसेनलक़ीबाई और हुसेन अफ़ज़ाबाई थीं। हुसेन-लक़ी का देहान्त १८४६ ई० में और हुसेन अफ़ज़ा का १८४४ ई० में। (दे० : वही, पृ० ३२)

३९१. महताब कुँवरबाई 'साहबजी साहिबा'

ये चन्दाबीबी की बड़ी बहिन थीं और नवाब रुक्नुद्दौला बहादुर की विवा-हिता पत्नी। ये निस्सन्तान थीं, चन्दाबीबी का पालन-पोषण इन्होंने ही किया था। (दे० : वही)

३९२. वाहिद ख़ाँ

इनके पूर्वपुरुष दिल्ली के पास समाना स्थान के रहनेवाले थे। ये समस्त भारत में अपनी कला के लिए प्रसिद्ध, हैदराबाद में मर्सिये की एक विशिष्ट शैली के जन्मदाता, यात्रा-प्रेमी और शिष्ट व्यक्ति थे। अनेक संगीतज्ञ इन्हें सुनने के लिए उत्सुक रहते थे। उन्नीसवीं शती (नवाब नासिरुद्दौला, रा० का० १८२८-५६ ई०) में इनका स्वर्गवास हुआ। जान अल्लाह साहब के तकिये में गाड़े गये। (दे० : वही, पृ० ४९)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

३९३. खादिम हुसेन खाँ ध्रुवपद-गायक

ये आसफ़जाह नवाब मीर महबूब अली खाँ (रा० का० १८६८-१९११ ई०) के युग में बड़ौदा से हैदराबाद आये। अच्छे ध्रुवपद-गायक थे और अत्यन्त श्रेष्ठ मर्सियाख्वाँ भी थे। बड़ौदा-नरेश की दृष्टि में इनका अत्यन्त सम्मान था। हैदराबाद के दीवानी महकमे में इनको नौकरी दी गयी। मुराद अली खाँ इनके अनुज और ग़ुलाम अब्बास, ग़ुलाम सरवर और ग़ुलाम सादात इनके चचेरे भाई थे।

खादिम हुसेन खाँ के पिता का नाम हुसेन खाँ था, जो हाजी सुजान खाँ के पोते थे।

३९४. मुराद अली खाँ ध्रुवपद-गायक

ये खादिम हुसेन खाँ (क्र० सं० ४००) के अनुज और योग्य शिष्य थे। इन्होंने हैदराबाद के महामन्त्री के एक अनुचित आदेश का विरोध किया था। १९१५ ई० में इनका देहान्त हुआ। (दे० : वही, पृ० ११७)

३९५. हैदर मिर्ज़ा

ये दिल्ली-निवासी, संगीतमर्मज्ञ, मधुरकण्ठ और अच्छे सोज़ख्वाँ थे। (दे० : वही, पृ० १२५)

३९६. अब्बास अली खाँ बीनकार

इनका वास्तविक नाम मिर्ज़ा हैदर बेग था। बीनकार होने के साथ-ही-साथ ये श्रेष्ठ सोज़ख्वाँ थे। (दे० : वही, पृ० १३८)

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सहायक ग्रन्थ-सूची

१. अकबरनामा, अबुल् फ़ज़्ल, अनु० बेवरिज, १९१२ ई० ।

२. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय ।

३. अरब और हिन्द के तअल्लुक़ात, सैयद सुलेमान नदवी, हिन्दुस्तानी एकेडमी, यू० पी० ।

४. आईने अकबरी, अबुल् फ़ज़्ल, अनु० ग्लैडविन, १७८३ ई० ।

५. आईने अकबरी, अबुल् फ़ज़्ल, अनु० ब्लॉकमैन, द्वितीय संस्करण, १९२७ ई० ।

६. आदि तुर्ककालीन भारत, अतहर अब्बास रिज़वी, इतिहास-विभाग, मुस्लिम युनिवर्सिटी, अलीगढ़ ।

७. इन्तखाबे यादगार, अमीर मीनाई, रामपुर, १८७२ ई० ।

८. इस्लाम की जिन्दा तहरीक चिश्तियत, अबुल् ग़फ़ूर, बारगाहे अदब, कराची, १९६६ ई० ।

९. उत्तर तैमूरकालीन भारत, अतहर अब्बास रिज़वी, मुस्लिम युनिवर्सिटी, अलीगढ़ ।

१०. उर्दू की नश्वोनुमा में सूफ़ियाए कराम का हिस्सा, डॉ० अब्दुल हक़, अंजुमन तरक़्क़िए उर्दू, अलीगढ़, १९५८ ई० ।

११. औरंगज़ेब, यदुनाथ सरकार, अनु० महाराजकुमार डॉ० रघुवीरसिंह, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९५१ ई० ।

१२. औरंगजेबनामा, अनु० मुंशी देवीप्रसाद, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।

१३. कृष्णभक्ति-काव्य में सखी-भाव, डॉ० शरणबिहारी गोस्वामी, चौखम्बा, बनारस ।

१४. खिलजीकालीन भारत, अतहर अब्बास रिज़वी, मुस्लिम युनिवर्सिटी, अलीगढ़ ।

१५. खुलासतुल् ऐश आलमशाही, (हस्तलिखित), रज़ा लायब्रेरी, रामपुर ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१६. ग्रेट कम्पोज़र्स, पी० साम्बमूर्ति ।

१७. चतुर्दण्डी प्रकाशिका, वेंकटमखी, म्युजिक एकेडमी, मद्रास ।

१८. तज़्किरः ज़ाकिरीन, मुहम्मद अली खाँ, मशीर आलम प्रेस, हैदराबाद (दकन) ।

१९. तुग़लक़कालीन भारत, अतहर अब्बास रिज़वी, मुस्लिम युनिवर्सिटी, अलीगढ़ ।

२०. तुज़ुके जहाँगीरी, अनु० अलेक्ज़ेंडर रोजर्स, १९०९ ई० ।

२१. त्यागराजकृति-संग्रह, संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली ।

२२. दकन में उर्दू, नसीरुद्दीन हाशमी, नसीम बुकडिपो, लखनऊ ।

२३. नग़मातुल्-हिन्द, साहबज़ादा अशफ़ाक़ अली खाँ, निज़ामी प्रेस, लखनऊ ।

२४. निजमत सिद्धान्त, टट्टी-सम्प्रदाय, वृन्दावन ।

२५. निज़ामी बंसरी, ख्वाजा हसन निज़ामी, दिल्ली ।

२६. पुरानी दिल्ली के हालात, अनु० ख्वाजा हसन निज़ामी, दिल्ली ।

२७. बादशाहनामा (हस्तलिखित), रज़ा लायब्रेरी, रामपुर ।

२८ भरत का संगीत-सिद्धान्त, बृहस्पति, हिन्दी समिति, लखनऊ, १९५९ ई० ।

२९. भरतकोष, रामकृष्ण कवि, देवस्थान, तिरुपति ।

३०. भातखण्डे संगीतशास्त्र, संगीत कार्यालय, हाथरस ।

३१. भारत का इतिहास, डॉ० ईश्वरी प्रसाद, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ।

३२. मअदन्-उल्-मूसिक़ी, मुहम्मद करम इमाम, लखनऊ, १८५४ ई० ।

३३. मध्ययुग का इतिहास, डॉ० ईश्वरी प्रसाद, इण्डियन प्रेस, प्रयाग ।

३४. आसिरुल् उमरा, अनु० ब्रजरत्नदास, बनारस ।

३५. मिराति आफ़ताबनुमा (हस्तलिखित), रज़ा लायब्रेरी, रामपुर ।

३६. मिराति सिकन्दरी (हस्तलिखित), रज़ा लायब्रेरी, रामपुर ।

३७. मिश्रबन्धु-विनोद, गंगा-ग्रन्थागार, लखनऊ ।

३८. मुग़लकालीन भारत (बाबर), अतहर अब्बास रिज़वी, मुस्लिम युनिवर्सिटी, अलीगढ़ ।

३९. मुग़ल राजमहलों का जीवन, भगवती प्रसाद पान्थरी, किताब महल, प्रयाग ।

४०. मुन्तख़बुत्तवारीख़, अब्दुल क़ादिर बदायूनी, लो-कृत अनुवाद ।

४१. मुसद्दस बेनज़ीर, मुहम्मद अली खाँ असर, रामपुर ।

४२. मुसलमान और भारतीय संगीत, बृहस्पति, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

४३. राग़-दर्पण (हस्तलिखित), फ़क़ीरुल्लाह, रज़ा लायब्रेरी, रामपुर ।

४४. रागमाला (चित्रलिपि), संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

४५. राग-विबोध, सोमनाथ, अडयार लायब्रेरी, मद्रास ।
४६. लाइफ एंड वर्क ऑव् अमीर खुसरो, मिर्जा वहीद, लाहौर, १९३५ ई० ।
४७. वाग्गेयकार पण्डित ओंकारनाथ, डॉ० प्रदीपकुमार दीक्षित, वाराणसी ।
४८. शिवसिंह-सरोज, शिवसिंह सेंगर ।
४९. संगीतज्ञों के संस्मरण, विलायत हुसेन खाँ, संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली ।
५०. संगीत पारिजात, अहोबल, टंकित प्रति ।
५१. संग्रह चूड़ामणि, गोविन्दाचार्य, मद्रास ।
५२. सहसरस, सं० डॉ० प्रेमलता, संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली ।
५३. सौतुलमुबारक (हस्तलिखित), वाजिद अली शाह, रज़ा लायब्रेरी, रामपुर ।
५४. स्प्रिच्युल हैरिटेज ऑव् त्यागराज, सी० रामानुजाचारी, मद्रास ।
५५. हमारे संगीत-रत्न, संगीत कार्यालय, हाथरस ।
५६. हिन्दी वीर-काव्य, डॉ० टीकमसिंह तोमर, हिन्दुस्तानी एकेडमी, १९५४ ई० ।
५७. हू इज हू, संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली ।
तथा अन्य अनेक पत्र-पत्रिकाएँ एवं उपर्युक्त ग्रन्थों में चर्चित पुस्तकें ।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नामानुक्रमणिका

'अ'

अकबर, ५७, ६१, ६६, ७३, ७४, ७५, ७७, ८८, १०३, १०७, ११२, ११६, ११८, १२०, १२१, १२६, १२९, १७७, १८२, २०८, २०९, २३०, २३१, २३५, २३६, २५१

अखी सिराज, १५, ६१, ६२

अख़्तर जान, १५६

अग्रदास, ११७

अघावन नक़्क़ारची, २०९, २१८, २५०

अचपल मियाँ, १४७

अजयपाल, ३०

अज़ीज़ हलीम खाँ अफ़ग़ान, २५२

अताहुसेन खाँ, १६०

अदहम खाँ, ६६

अदहन शेख, ७०, १७५, २२७, २३६

अनन्त मनोहर जोशी, १७५

अनवर मौलाना, २१

अनूठा, २४१

अन्नपूर्णा, १६५, १६६

अबुल् फ़ज़ल, ७८, ९९, ११५, ११९, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२७, १२८, १२९, १३१, १९९, २००, २०१, २०२, २११, २१६, २१७, २२५

अबुल् हसन की प्रेयसी, २४१

अबू अब्दुल्लाह बिन हनीफ़, १६

अबू अब्बास साबिरी, १६

अबू तालिब मक्की शेख, १६

अबू बक्र तुसी, २६

अबू बक्र शहज़ादा, ३०

अबू सईद शेख, १६, ५९

अबू बक्र हज़रत, १०, ११

अब्दुर्रहमान, २०८

अब्दुल् अहद शेख; ७७

अब्दुल् ग़फ़ूर मौलाना, २१

अब्दुल् जलील बिलग्रामी, ८३, २०८

अब्दुल् हक़ चिश्ती, ७८

अब्बास, १७

अब्बास (द्वितीय), १३६

अब्बास अली खाँ बीनकार, २५४

अब्दुल् क़ादिर बदायूनी, १२१

अब्दुल् क़ुद्दूस गंगोही, ७७

अब्दुल्लाह, ८६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अब्दुल्लाह खाँ (आगरा), ५०
अब्दुल्लाह किरमानी, ६०
अब्दुल्लाह क़ुतुबशाह, १८५, २१६
अब्दुल्लाह बिन अली उल् हुकूम, १६
अब्दुल्लाह बिन मैमून अल् क़द्दाह, १२, १४
अब्दुल्लाह मरवारीर, ७०, २१७
अब्दुल्लाह मीर, २११, २३२
अब्दुल्लाह सूफ़ी, ५३
अभू नायक, ५७, १०८, ११०, २२६
अभिनव गुप्त, २०, १६८
अमजद अली खाँ, १६६
अमानी जान, १६१, २०१, २४६
अमीर अली जामदार, ६१, २२३
अमीर अहमद, १८८, २४७
अमीर खाँ, २१४
अमीर खाँ बीनकार, १६०, १६२, १६६, २०३, २४५, २५१
अमीर खुर्द, ४०, ६०
अमीर ख़ुसरो, १७, १८, २३, २५, २६, २७, २८, ३०, ३१, ३२, ३३, ३७, ३६, ४७, ६४, ६६, ६८, ८६, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, १०२, १११, १४४, २०३, २०६, २१०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५
अमीर मीनाई, १८६
अमीर शाही, ७२
अमृतसेन, १४३, १४६
अयूब, २१
अयोध्याप्रसाद पखावजी, १६७
अरबे बई, २२८
अरस्तू, ३३
अलाउद्दीन अली शाह, २५, ४६, ५६
अलाउद्दीन खाँ सरोदवादक, १६४, १६६, १६७
अलाउद्दीन खिलजी, २७, २८, २६, ३१, ३२, ३३, ३४, ४४, ५३, ५४, ६५, ६१, ६२, ६४, ६७, २२१, २२३, २२५
अलाउद्दीन फ़ीरोज़शाह, ६१
अलाउद्दीन मसऊद, २१
अल्लाउद्दीन हसन बहमनशाह, ४६, ४७, ४८
अलाउद्दीन (द्वितीय) बहमनी, ५०, ५१
अलाउद्दीन शेख, ४३
अलाउलमुल्क, २८
अली अकबर खाँ, १६६
अली अहमद साबिर, १५
अली नक़ी खाँ, २१६, २१७, २४४, २४५, २४६, २५०
अलीबख्श खाँ (दिल्ली), १४८
अलीबख्श (पटियाला), १४७, १४८
अलीबख्श (कसूर), १४८
अलीबख्श खाँ, १५३
अलीबख्श मियाँ, १६२
अलीबख्श सारंगीवादक, १८७, २१५, २२५
अलीबहादुर खाँ नवाब, २४५
अलीमर्दान खाँ, ८२, १३६
अली मीर सैयद, २११
अलीमुल्लाह खाँ, २४७, २५०
अली मुहम्मद खाँ नवाब, २४२, २५१, २५२
अली (हज़रत), १०, ११, १२, १३
अली हुसेन खाँ बीनकार, १६४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अली हुसेन खाँ (सहसवान), १५२
अल्ताफ़, २११, २२४
अल्लादिया खाँ, १४६, १५१, १५२, १५३, १५४, १६१
अल्लाह दाद ढारी, २१५, २१८
अल्लाह दाद सारंगीवादक, २०१
अल्लाहबन्दे खाँ, १५६, १५७, १६१, २०३
अशवेती मौलाना, २३६
असद खाँ, १३५
अहमद, १४
अहमद अली, २४९
अहमद अली शहनाईवादक, २४९
अहमद क़ुली खाँ नवाब, १६७, १८६, १८८, १८९, २११, २१९
अहमद अली खाँ सरोदवादक, १६४, १६५
अहमद खाँ, १४४, १४५, २०३, २४३, २४९
अहमद खाँ खानखाना, ४८
अहमद खाँ ख्वाजा, १५३
अहमद बहमनी, ५०
अहमद बिहारी, ४३
अहमदशाह, ८८
अहमदशाह गुजराती, ५०, ५५
अहमद शेख जौनपुरी, २३५
अहोबल, २१२, २१४

'आ'

आक़िल, २३४
आग़ा मोहम्मद, २३६
आज़म, ८५, २०८
आदिलशाह (द्वितीय), १८५, ११९
आबिद अली खाँ, १६५, १६७
आलम, ८७, २०८
आलमगीर सानी, ८८
आलमसेन, १५६
आशिक़ हुसेन खाँ, १६३
आशुधीर, ११७
आसकरन राजा, २०८
आसफ़ खाँ, ७८, २३७
आशफ़ जाह (प्रथम), १३८
आसफ़ुद्दौला, २०३, २०६, २१६, २४३, २४८

'इ'

इक़बाल खाँ, ६७
इनायत खाँ ध्रुवपदकार, १५७
इनायत हुसेन खाँ, १४९, १५१, १५२
इन्द्रजीत, २०८
इब्न सीना, १३
इब्नुरंसूल सैयद, २२६
इब्ने बतूता, ३४, ३५, ३८
इब्राहीम, २४९
इब्राहीम आदिलशाह, २३५
इब्राहीम आदिलशाह (द्वितीय), ७५, ७६
इब्राहीम क़ुली, २३५
इब्राहीम खाँ, २१५, २४१
इब्राहीम लोदी, ७१, १२५
इब्राहीम शर्क़ी, ६३
इमदाद खाँ, १४९
इमदाद हुसेन खाँ, १६३
इमरत सेन, १४२
इमादुद्दीन ख्वाजा, १५
इमादुद्दीन शेख, १९
इमादुल्मुल्क, ५२
इमामबख्श, १८२, १८७, २४५
इमाम बाँदी, १८७, २०५, २०६,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२४८
इमाम हुसेन (हज़रत), १३, १६, २५२
इरशाद अली मीर, १५५
इलियास हाजी, ६०
इल्मुद्दीन, ३७
इल्मुल् हक़, ५३, ५५
इसहाक़ ढारी मुल्ला, २३३
इस्माईल आदिलशाह, २३५
इस्माईल शेख़, १३
इस्लामशाह सूर, २३१

'ई'

ईराज तरसून बरलात, २१२, २२८
ईश्वर, २०८
ईश्वरी प्रसाद डॉक्टर, १८८, २१६, २४८
ईसा ख़ुदादी, २०२, २२१, २२४

'उ'

उजागरसिंह, १४९
उदयपुरी महल, ८१
उदयशंकर, १६५
उदयसिंह महाराणा, २३१
उदितनारायण सिंह, १८६, २०६, २४३, २४४
उद्धरणदेव, ६७
उमर हज़रत, १०, ११
उमराव ख़ाँ (दिल्ली), १४८
उमराव ख़ाँ बीनकार, १९०, १९९ २१४, २४४, २४५, २५१
उमाबाई, २०८, २४१
उलुग़ ख़ाँ, २६, ३४, ५३
उस्ताद मुहम्मद, ७८
उस्मान हज़रत, ११

'ए'

एक अन्धा, २४२
एमाद क़ाज़ी, २२०

'ओ'

ओंकारनाथ ठाकुर, १३२, १३६ १३७, १३८, १७३, १७४, १७५
औरंगज़ेब, ४३, ५७, ७६, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८८, १२०, १२१, १३३, १८५, १९९, २१५, २१९
औहादी, २२४

'क'

कदवा शेख़, २३, ९५, २२०, २२१, २२४
कन्हैया, २५०
कबीर क़व्वाल, २३९, २४६
कमला, ५३
कमलाबाई, २४७
कमलाम्बा, १७८
कमालबाई, ८७, १४०, १८६, २१०, २३९
कमालुद्दीन ख़्वाजा, ५३, ५६
कमालुद्दीन बियाबानी, १७८
कमालुद्दीन शेख़, ५७
कमालुद्दीन हुसेन, ७२, २२८
करीम ख़ाँ (करीमसेन), १८६, १८९, २२२, २४२
करीमुद्दीन (बयाना) १५,
करीमुद्दौला नवाब, २५१
कर्ण (गुजरात-नरेश), २९, ५३, ९४
कलीमुल्लाह ख़ाँ, ५२, २४३
कलीमुल्लाह शाह, ८५, ८६
कल्बें अली ख़ाँ (रामपुर-नवाब), १४६, १५८, १९०, १९१, २०१,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२०५, २४५, २४८, २४९
कल्याणसिंह, ६७
कल्लन खाँ, १५३, १५८, १६३
कल्लिनाथ, ६८, ७३, १०२, १०६
१९८, २२५
कल्लू ढारी, १८७, २०१, २०५,
२१५, २४९
कवीन्द्र सरस्वती, २०८
कसव कुव्वत ढारी, २३८
काज़िम अली खाँ (ख्याल-गायक),
१९२
काज़िम अली खाँ आरामुद्दौला, २४४
क़ादिरबख़्श, १४७
कामबख़्श, ८१, ८५
क़ायम अली, २५०
क़ायम खाँ कलावन्त, २४५
कालिदास त्रिवेदी, ८६, २०८
कालू मियाँ (पटियाला), १४२
काले कंका, २४२
काले खाँ, १४८
काले बी० आर०, १६२
काले मियाँ, १४७
काशीराम, २०८
क़ासिम अली, १४०, २३९
क़ासिम अली खाँ, २५१
क़ासिम अली खाँ नवाब, २४
क़ासिम कोहबर, २१०, २१२, २१४,
२२८, २३३
क़ासिम खाँ, २०९, २४९
क़ासिम चंगवादक, ७२
किफ़ायत अली, २४७
किरपा मृदंगराय, ८३, २१३, २३९
किशनसेन, ८०, २०८
किशन (कवि), २०८
किशनसेन नायक, २३८
किशली खाँ, ९१, २२३
कीरत, १०१, १०७, १०८, १२८, २२६
कीर्तिसिंह, ६७
क़ुतुब अली, १८८, २१६, २१७,
२४५, २४९
क़ुतुब अली खाँ, १९२
क़ुतुबुद्दीन ऐबक, १५, १७, १८, १९
क़ुतुबुद्दीन गुजराती, ५५
क़ुतुबुद्दीन ख़िलजी, १७, २१, २९, ३०,
३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ४०,
४४, ५३, ५९, ९१, ९२, ९४,
९६, २२३, २२५
क़ुतुबुद्दीन बख़्तयार काकी, १३, १५,
१७, १८, १९, २२, ३१, ४६,
५३, ५९, ७१, २२०
क़ुतुबुद्दीन मुनव्वर शेख़, ४३, ४४
कुतुबुद्दौला, १८८, १९२
क़ुतुबुलमुल्क, ५२
कुदऊसिंह पखावजी, १८८, २१३,
२१८, २५०
कुम्भनदास, २०८
कुम्भा, ६५, १७६, १९८
क़ुली क़ुतुबशाह, २३५
क़ुले मुहम्मद ऊदी, ७०, २२०, २१२,
२२७, २४१
कृष्ण, १००
कृष्णदेवराय, ६९, १७७, १८०, २३५
कृष्णराव मास्टर, १६२
केशवदास महाकवि, २०८
केसरबाई, १५४
केसकर बी० वी० १७६
कैक़ुबाद, २३, २४, २५, २६, ३३,
६२, ९२, ९३, ९५, १८७, २२३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कैखुसरो, २३
कोचक, ७२
क्लेमेण्ट, १५७, १९७
क्षेत्रज्ञ, १८४

'ख'

खजूरबाई, २४७
ख़तीरुद्दीन मलिक, २८
ख़फ़ी ख़ाँ, ८४
ख़वासी, २४१
ख़ादिम हुसेन ख़ाँ, १५२
ख़ादिम हुसेन ख़ाँ (ध्रुवपद-गायक,) २५४
ख़ादिम देहलवी मीर, २०३
ख़िज्र, २३४
ख़िज्र ख़ाँ, २८, २९, ३०, ३२, ३३, ६७, ९८
ख़िज्र ख़ाँ सैयद, ६३
ख़ुदाबख़्श घग्घे, १४२, १४३, १४६, १५१, १५८, १५९
ख़ुर्रम दाद, ७८, २३६
ख़ुरशीदबाई, ८७, २४७
ख़ुशहाल ख़ाँ, ७९, ८२, १३१, १३२, १३३, १३५, १३६, १३७, १३८, १९९, २००, २३८
ख़ुशहाल ख़ाँ (द्वितीय), १८६, २५२
ख़ुसरो ख़ाँ, २९, ३२, ३३, ३५, ५३, ८७, १३८, १३९, २१४
ख़ुसरो ख़ाँ कलावन्त, ९९, २३९
ख़ुसरो ख़ाँ मलिककुश्शर्क, ६३
खेमकरन, ५७, १०८, २२९
ख़ैरात अली ख़ाँ, १५३
ख़्वाजा अब्दुल्लाह मरवारीद, २२७
ख़्वाजा अली, २३३
ख़्वाजाबख़्श ढारी, २४५

'ग'

गंग, २०८
गंगा, ११७
गंगाधर, ११७
ग़ज़नी ख़ाँ, ६५
गणेश, ८१, ९०
गनपत बुवा पुरोहित, १६२
गनपतराव भैया, १५५, १५६, १६३, २०४
गनेशीलाल चौबे, १६८
ग़फ़ूर ख़ाँ, १६३
ग़फ़ूर ख़ाँ (गया-निवासी), १५५
गर्दे एम० बी०, १२४, १२५
ग़यासुद्दीन ख़िलजी, ६४, ६५, ६६, ६८, १०३
ग़यासुद्दीन तुग़लक़, १७, ३४, ३८, ३९, ६१, ९२, ९४, २२३
ग़यासुद्दीन बहमनी, ४८
ग़ाज़ी मलिक, ३५, ३६, ३७
गामू क़व्वाल, २०३, २०५, २०६, २४३, २४४, २४६
गिरिराज कवि, १८२
गिल्लू भाई, १५४
गुमान मिसिर, २०८
गुलबदन, १८७, २४८
गुलाब, २४१
ग़ुलाम अब्बास, २५४
ग़ुलाम अब्बास ख़ाँ, १५८, १५९
ग़ुलाम अब्बास रईस, २५१
ग़ुलाम अली ख़ाँ बड़े, १४८
ग़ुलाम इमाम, १४९, २४६
ग़ुलाम क़ादिर (जयपुर), १६०
ग़ुलाम ग़ौस ख़ाँ, १८८
ग़ुलाम नबी शोरी, २०६, २४३, २४४,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२४७,
ग़ुलाम, बाज़ीद खाँ, १६८
ग़ुलाम मुस्तफ़ा, १५२
ग़ुलाम मुहम्मद, २४६
ग़ुलाम मुहम्मद (बाँदा), २४८
ग़ुलाम मुहम्मद सारंगीनवाज, २१५, २४२
ग़ुलाम मुहम्मद सितारवादक, २१६, २१७
ग़ुलाम मुहीउद्दीन, २३७
ग़ुलाम रज़ा, २१६, २४८
ग़ुलाम रसूल क़व्वाल, १५१, २०३, २०६, २१०, २४३, २४५, २४६, २४७
ग़ुलाम रसूल खाँ, ८७
ग़ुलाम शादी, ७०, २१०, २२७
ग़ुलाम सरवर, २५४
ग़ुलाम सादात, २५४
ग़ुलाम हुसेन खाँ नवाब, १८७, २४८
ग़ैबुल्लाह, २१३, २२८
गोपाल, १११
गोपाल (द्वितीय), ५६, ११०, २२८, २२६
गोपाल कवि, ११४
गोपाल (कृष्ण), १८५
गोपाल नायक, ६६, ६७, ६८, ६६, १११, २२५
गोपीनाथ, ११५
गोविन्द, ११७
गोविन्द दीक्षित, ७६, १३४,
गोविन्दराव टम्बे, १५४
गोविन्दस्वामी, ११३, ११७, ११८, ११६, १२०, १२२, १४२, १४३, १४६
गौरीशंकर पण्डित, १७३
गौहर, १५५
ग्वाल, १६६, १६०, २०८
घनानन्द, ८७, २०८
घसीट खाँ हुरियारे, १५०, १५१, १८८, २०६, २१३
घसीट खाँ नक़्क़ारा, २४६
घासी राम, २१३, २४२
घूरन शेख, ७०, ७१, २०३, २२७, २३५, २४६
घूरन खाँ, १८८

'च'

चंगी, २४२
चंगेज खाँ, २६
चतुर नायक, ५७, १०८, १२८
चतुर्भुजदास, २०८
चत्र खाँ, २३६
चन्द मियाँ, १३२, २३०
चन्दाबाई, १८७, २४७, २५०
चन्दाबीबी, २५३
चन्दूलाल राजा, २५२
चन्द्रभागा, १५०, १५६, १८८, २०४, २४८
चमनी, २४१
चरजू, १६६, २१०, २३१
चाँद खाँ, १६६, २३०, २३३
चाँद मियाँ, १२२, १२३, १६६, २३१
चित्रा, ११७, १८७, २०५, २०६, २४८
चिन्तामणि, ८३, २०८
चिरजू, १२२
चुन्नीलाल भट्ट, १६६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'छ'

छज्जू खाँ, १५२, १८६, २४४, २४७
छज्जू खाँ कलावन्त, २१४
छज्जू खाँ ढारी, २०६
छतर खाँ, ७८
छत्रपति महाराज, १५३
छम्मन खाँ, १५३
छम्मन साहब, १६७, १६८, १७२, १९५, १९६, २०९
छज्जू खाँ, २१५

'ज'

जंगी (ग्वालियर), १५५
जगतकिशोर आचार्य, १६४
जगदेक मल्ल, २०
जगन्नाथ कविराय, ७९, ११७
जट्टा, २०३
जट्टो, २४८
जतन कथक, २१५, २१७, २५०
जद्दनबाई, १५६
जप्येश, १८२
जफ़र खाँ, ५३, ५४
जमालुद्दीन चिश्ती, १८८
जमालुद्दीन जुम्मन, ५५
जमालुद्दीन बसरी, २२
जमालुद्दीन शेख, ४३
जयकर एम० आर०, १५४
जयदेव, ६८
जयदेवसिंह, १९६
जयसिंह (अलवर-नरेश), १४४
जयसिंह राजा मिर्जा, १२६
जलाल खाँ कूर्ची, ११२, १२९
जलाल बिन कबीर, १४
जलालुद्दीन, ९३
जलालुद्दीन खिलजी, १७, २६, २७, २१३, २२१, २२३
जलालुद्दीन तबरेज़ी, १४, १८, ५९, ६१
जलालुद्दीन बुखारी, २२०
जलालुद्दीन मखदूम, २३५
जलालुद्दीन सुर्खपोश, १४
जहाँगीर, ७३, ७७, ७८, १०३, ११०, १२०, १२१, १२५, १३०, २०८, २३१, २३४, २३६, २३७
जहाँगीर खाँ, १५३
जहाँगीर दाद, २३६
जहाँदारशाह, ८६, ८८, १३८, २३९
जहूर खाँ (सारंगी), १८८, २४९
जहूर खाँ (दिल्ली), १४८, २१५
ज़ाकिरुद्दीन खाँ, १५६, १५७
जादी, १९१
जान अल्लाह, २५३
जानबख्श, २४८
जान मुहम्मद अरलात, २२८
जानी मियाँ, २०३, २०६, २२३, २४३
जाफ़र खाँ, १९९, २०५, २१०, २४४
जामी, ९२, ९४
जाहरिया, ३४
जियाउद्दीन बर्नी, ३२, ४०
ज़ियाउद्दीन रूमी, ३६
ज़ीनत, २४१
जीवन खाँ, २४४, २४६, २४७
जीवन खाँ हाजी, १४८
जीसुखबाई, १४७
जुनैद बग़दादी शेख, १२, १३, १४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जुम्मन खाँ, १६८
जुल्फ़िक़ार अली नवाब, २५१
जैनुल् आबिदीन, १३
जैनुद्दीन शेख, ४७
जोतसिंह पखावजी, २५०
जोतिन भट्टाचार्य्य, १६७
जोशी पण्डित, १४९
ज्ञान खाँ, २२३, २४१

'झ'

झबेर बा, १७३
झब्बू नक़्क़ारची, १८८, २४९
झूमन, १४१

'ट'

टोडरमल, २१८
डालू ढारी, २३९
डूँगरेन्द्रसिंह, ६७
ड्यूक ऑव् एडिनवरा, १९२

'त'

तक़ी, १४२
तन्नो, २४१
तरग़ी मंगोल, ३०
तरसून अली क़रावल, २२८
तवक्कुल हुसेन खाँ, १८९
तहमास्प, ७७
ताज खाँ, ८७, १४४, २०३, २०६, २१०, २४३, २४५, २५०
ताज खाँ डेरेदार, २१३
ताज खाँ पखावजी, २५०
तातार खाँ, ५३
तानतरंग खाँ, १२३, १२६, १३१, १३२, १३३, १९९, २३१
तानप्पा, ७६, १८४, २१९
तानरस खाँ, १४६, १४७, १४८, १५३, १८७, २४५
तानसिंह, २४७, २५०
तानसेन, ६६, ६९, ७३, ७५, ७७, ७८, ७९, ८२, १०८, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १९१, २००, २०८, २१०, २२८, २२९, २३०, २३१, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९
तानसेन (द्वितीय), २३४
तानसेन (तृतीय), १३३, १३४, १४०, १९९, २००, २०८, २३९
ताराबाई शिरोडकर, १६२
ताशबेग, २११, २३३
ताहा मियाँ, ६८, १०२, २२६
ताहिर बुखारी, २२८
तुकोजीराव होलकर, १६०
तुराब अली खाँ, २४५
तुर्कमान हज़रत, २७३
तुलसीदास, १८०
तुलसीदास कलावन्त, २३८
तुलसीदास गोस्वामी, १७७, १८३, १९९
तूफ़ान, २१२, २१३, २२७, २२८
तैमूर, ६३
त्यागराज, १६९, १८१, १८२, १८३, १८४, २१९
त्र्यम्बकराव, १४५

'द'

दत्तराम महापण्डित, १८९, २०८, २१९, २४५

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दरगाह क़ुली ख़ाँ, १३३, १३८, २००, २०६, २१०, २१५, २१६, २१७, २३९
दरगाही, २१३, २४२
दरिया ख़ाँ, ५६, १०७, १०८, ११०, २२८, २२९
दाऊद, ४८
दाऊद ढारी, २३१
दाग़, १८९
दाता गंजबख़्श, १३, १४, १६
दानियाल शाह, २०८
दारा, ७९, ८१, ८२, १३६
दावन ढारी, २१२, २३३
दावन मीर, २३४
दिलरस बानो, ८०
दिलाराम, ९३
दिलावर ख़ाँ, ६५
दिलीपचन्द्र वेदी, १५५, १६०, १६२
दीक्षित पण्डित, १४९
दीनदयालु वाणीभूषण, १७२
दुख़्तर ख़ासा, २७
दुरसाजी, २०८
दुर्गविजयसिंह, २४८
दुर्गा कथक, २५०
दूल्हे ख़ाँ, १६५
देव महाकवि, ८६, १३८, १४१, २०८, २३९
देवघर बी० आर०, १७०
देवल पण्डित, १५७
देवल देवी, २९, ३३, ९८
देवराय (प्रथम), ४९
देवराय (द्वितीय), ५१
देवी, २३४
दोस्त उस्ता, २१२, २३१
दौलत ख़ाँ, १२०, २०३, २४१
दौलत ख़ाँ (अल्लादिया ख़ाँ के कुटुम्बी), १५३
दौलतराव सिन्धिया, १४५
दौलतशाह, ९५, २३२

'ध'

धन्ना, २४२
धन्नू ढारी (सारंगी), १८७, २०१, २०५, २१५, २५०
धरमदास कलावन्त, २३८
धर्म्मदास, १९९
धूमनबाई, २०५, २४७
धोंधू, २१०, २३४
ध्रुवदासजी, ११७

'न'

नजमुद्दीन सग़रा, ५९
नज़रअली उस्ताद, २४२
नज़ीर ख़ाँ, १४९
नज़ीर ख़ाँ काले, १५२, १९५
नज़ीर ख़ाँ (जोधपुर), १५३
नज्जू डेरेदार, २१८, २५०
नतहरशाह सैयद, १४
नत्थन, १५८, २४६
नत्थन ख़ाँ, १४५, १४९, १५३, १५८
नत्थन ख़ाँ (आगरा), १४६, १५६, १६०
नत्थू ख़ाँ, १४५
नत्थे ख़ाँ, १४९, १५०, २४६
नन्हींबाई, १४९
नन्हे ख़ाँ, १६८
नबात ख़ाँ, २००, २३४
नबीबख़्श डेरेदार, २०१, २१६, २१७, २४९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नरहरि, २०८
नवाब अली खाँ, १७२, १९५
नवाब हुसेन खाँ, २०६, २१६
नसीर अमीनुद्दीन, १५८
नसीर मुईनुद्दीन, १५८
नसीरुद्दीन, खाँ, १५४
नसीरुद्दीन खाँ (अल्लादिया खाँ के पुत्र), १५४
नसीरुद्दीन खाँ (ध्रुवपद-गायक), १५७
नसीरुद्दीन खिलजी, ६६
नसीरुद्दीन चिराग़देहली, १४, १५, ४०, ४२, ४३, ४४, ४८, ५३, ५७
नसीरुद्दीन शेख, २३७
नसीरुद्दीन शेख गुजराती, ५६
नसीरुद्दीन हैदर, २०४, २५१
नादिरशाह, १८६
नानाराव, २४७
नान्यदेव, २०
नारायण, २१२, २१५, २१६
नारायण गोविन्द, १७५
नारायणदास, २४७
नारायणदास बैरागी, २४७
नारायण मिश्र, ११५
नासिर अहमद बीनकार, १८७
नासिर अहमद सैयद, २४८
नासिर खाँ, ५०, २१३
नासिर खाँ गुजराती, ५६
नासिर खाँ पखावजी, २५०
नासिर हाफ़िज़, २२८
नासिरुद्दीन क़ुबाचा, १९
नासिरुद्दीन, ३३, ३४, ३५
नासिरुद्दीन महमूद, २१, २२, २३
नासिरुद्दौला नवाब, २५३
निज़ाम खाँ कर्री, २४५
निज़ामशाह बहमनी, ५१
निज़ामी महाकवि, ९३
निज़ामुद्दीन औरंगाबादी, ८५
निज़ामुद्दीन चिश्ती, १३, १५, १७, २२, २३, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४२, ४३, ४६, ५३, ६०, ६१, ६५, ७१, ९०, ९१, ९२, ९३, ९५, ९६, ९७, १००, १२६, २२२, २२३, २२४
निज़ामुद्दीन मलिक, २४, २५
निज़ामुद्दीन शेख, १५
निवृत्ति बुवा सरनायक, १५४
निसार अली, २४४
निसार हुसेन खाँ, १५२
नुसरत खातून, २२१
नुसरत खाँ, ३५
नुसरत बीबी, २७
नुसरतशाह, ६१
नुसरतशाह (बंगाल), ६०
नुसरतुद्दीन मलिक, २८
नूर खाँ (कालपी), २४६
नूर खाँ (चौगोशिया), १८८, २४६
नूरबाई, २४१
नूरुद्दीन, १४
नूरुद्दीन फ़िरदौसी, ३६
नूरुद्दीन सूफ़ी, ५३
नूरुल्लाह मीरान सैयद, १०२, २२५
नेमत खाँ (सदारंग), ८५, ८६, ८७, ८८, ९९, १३२, १३८, १४९, १४०, १८९, १९९, २०१, २०३, २०४, २०५,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२०७, २०८, २१०, २१४, २१५, २१७, २३६

'प'

पद्माकर, १६६, २४१
पन्नाबाई, ८७, १४०, १६४, २१०, २३६, २४१
परमोल ख़ाँ, १३८, २३६
परवीन ख़ाँ, १२२, १६६, २१४, २३१
परवेज दाद, २३६
परशद्दू कथक, २०५, २०६, २४३, २४४, २४६
परिमलरंग, ८७
पाण्डवी, ६८
पाण्डवी नायक, २२७
पीरज़ादा, २३४
पीरबख़्श, १४५, १५८, २४६
पीर मुहम्मद शेख़, २०३, २०७, २०८, २१५, २३६, २३७
पीर मुहम्मद (सेनापति), ६६
पुण्डरीक, ७५, ७६, १३३, १८५
पुत्तन ख़ाँ, १६३
पुरन्दरदास, ६६, १७७, १७६, १८०
पूरनमल, १०६
पृथ्वीराज, १५, १७, १८, ५६
पृथ्वीराज कवि, २०८
प्यार ख़ाँ, १६१, १८६, १६६, २००, २०३, २०५, २१०, २१४, २१७, २४४, २४६
प्रकाश कत्थक, २४७, २५०
प्रतापसिंह सवाई, १६६
प्रियादास, ११७
प्रेमलता शर्मा डॉक्टर, १७३, १७४

'फ', 'फ़'

फ़क़ीरुल्लाह, १२१, १३१, २०१, २१०, २१३, २१७, २३८
फ़ख़रुद्दीन, ६०
फ़ख़रुद्दीन जरादी, १५, ४०, ४६, ६०
फ़ख़रुद्दीन मलिक, २४
फ़ख़रुद्दीन शाह, १८८
फ़ज़ल अली क़व्वाल, २४५
फ़ज़लुल्लाह मीर, ५०
फ़ज़ल अली शाह, १२६
फ़तह अली, १४८
फ़तह अली ख़ाँ, १५३
फ़तह अली (पटियाला), १४८
फ़रीद ख़ाँ पंजाबी, १४२
फ़रीदुद्दीन गंजशकर बाबा, १३, १५, १६, २१, २३, २६, २७, ३१, ४३, ४६, २२१
फ़र्रुख़सियर, ८६, ८८
फ़ीरोज़, १०
फ़ीरोज़ ख़ाँ 'अदारंग', ८७, ६६, १३६, १८६, १८८, १६६, २००, २१४, २१६, २१७, २३६, २४२
फ़ीरोज़ ख़ाँ ढारी, २०१, २१३
फ़ीरोज़ ढारी पखावजी, २३६
फ़ीरोज़ तुग़लक़, ४२, ४३, ४४, ५३, ६०, ६३, ६७, ११४
फ़ीरोज़ ब्रहमनी, १४, ४८, ४६, ५०, ५३, ५५, २२५
फ़ुतूहा, २२१
फ़ैज़ मुहम्मद ख़ाँ, १६१
फ़ैज़ुल्लाह ख़ाँ, २१७
फ़ैयाज़ ख़ाँ (आगरा), १५७, १५८,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१५९, १६३, १६७, १७५
फ़ैयाज़ खाँ, क़व्वालबच्चे, १४६

'ब'

बक़ा, २४६,
बंझू शेख, २०३, २३४
बख्त खाँ, १९९
बख्त खाँ गुजराती, २३८
बख्शू, ५६, ५७, ६८, ६९, १०१, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, ११५, ११६, १२१, १२७, १२८, १२९, १३२, १३३, १५०, १७७, २२७
बख्शू ढारी (तबलावादक), २०१, २०९, २१७, २१८, २२९, २३०, २३५, २४९
बज़्मी मौलाना, २२८
बदरुद्दीन इसहाक शेख, १५
बदरुद्दीन खाँ, १५४
बदरुद्दीन ग़ज़नवी शेख, १५, १९, २१
बदीउद्दीन, ७८
बनाई, ७०, २१०, २२७,
बन्दानवाज़ गेसूदराज, ७५
बन्दा वैरागी, ८५
बन्दीजान, १८८, २४७
बन्देअली खाँ बीनकार, १४२ १४३, १६०
बन्ने खाँ पंजाबी, १४९
बरकत अली सँवलिया, १८८, २१६, २४९
बरीद, ५२
बलबन, २१, २२, २३, ८९, ९१, २२०, २२३, २५२
बलदेव कवि, ११४
बलभद्र मिश्र, ११५
बल्लालसेन, ५९, ६१, ६२
बल्लो, १८८, २४८
बशारत अली खाँ, २४७, २५१
बशीर, ३२
बशीर खाँ गुडयानी, १५२
बशीर खाँ (ज़ोधपुर), १५५
बहराम, ९३, २२७
बहराम अली, २११
बहराम क़ुली, २३३
बहराम खाँ (शासक), ४७, ६०, १५६, १५७
बहरामशाह, २०, २१, २२
बहरूज सुल्तान, ६४,
बहलोल लोदी, ६०, ६४, ६५, ६७
बहलोल शेख, ७२
बहाउद्दीन ज़कारिया, १४, २३, ३२, ३६, ३७, ४३, ५९, ९५, १३४, २०९, २१०, २२०, २२३
बहाउद्दीन, बरनावी, २०७, २०८, २१०, २१४, २१५, २३५, २३६
बहादुर खाँ, २१४, २४४
बहादुर मलिक, ६४
बहादुरशाह (प्रथम), ८५, ८६, ८८, १३८, २०८
बहादुरशाह गुजराती, ५६, ६६, ७२, ७३, १०१, १०२, १०७, १०८, ११०, १२४, १२८, १७७, २२६, २२७, २२८
बहादुरशाह ज़फ़र, ८८, १४७, १८१, २१९
बहादुर हुसेन खाँ, १५१, १५२, १८४, १८९, १९२, १९४, १९७,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२४४
बाक़र अली खाँ, १४६, १५१, १६१, १६२
बाक़र तम्बूरची, २४२
बाक़र मुहतसिब, ५७
बाज़बहादुर, ६६, १२८, २०३, २२६, २३१
बाज़ीद खाँ, १६६, २३८
बाद खाँ, २३४
बापूराव केलकर, १६२
बाबर, ६१, ७०, ७१, ७३, १२४, १२५, १७७, २२७
बाबा आदम शरीफ़, ५६
बाबा दोस्त तूनक़तार, २२८
बायज़ीद क़रनावादक, २२७
बायज़ीद बुस्तामी, १२, १६
बारिकुल्लाह शेख़, ५३
बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर, १४६, १५०, १७१, १७२
बाल गन्धर्व, १६२
बाला गुरु पण्डित, १४६
बासत खाँ, १६२, १६६, २१४, २४४
बासत खाँ पीरज़ादा, २४७
बिक्रमाजीत, १०७
बिलास खाँ, १३२, १३३
बिसराम खाँ, ७६, १३१, १३४, १३६, १३७, २००, २३८
बीरमण्डल खाँ, १२३, १६६, २३१
बुक्क, ४७
बुग़रा खाँ, २२, २३, २४, २५, ६१, ६३, २२३
बुनियाद हुसेन मीर, १६०
बुन्दू खाँ सारंगीवादक, १६७
बुरहान निज़ाम, २३५
बुरहानी, १४४, २०३
बुरहानुद्दीन ग़रीब, १६, ४६
बू अली क़लन्दर शेख़, २७, २८, ६२
बेनीप्रसाद कथक, १८७, २५०
बैजू, ५६, ६८, ६६, ७३, ६८, १०१, १०२, १०३, १०६, १०७, १०८, ११०, १११, ११५, ११६, १२०, १२८, १३३, १५०, १७७, २१०, २२६, २२७, २२८, २२६, २३०, २३५
बैराम खाँ, १२४, १४२, १४३, १४६
बैराम खाँ खानख़ाना, २३१
बोले खाँ, ८१, २०१, २०३, २४१, २३४

'भ'

भगवानदास पखावजी, १२१, २१३
भगीरथ भट्टाचार्य, ११५
भन्नू, २०८
भरत, ७३, ८८, १०६, १७६, १६७, १६८
भवानीदास राजा, २५२
भवानीदीन पखावजी, २१३, २५०
भातखण्डे विष्णु नारायण, १००, १३५, १४०, १४५, १५२, १५७, १६५, १७२, १७३, १७६, १७७, १६०, १६२, १६५, १६६, १६७, १६८, २१४
भास्कर, २०
भास्करराव बखले, १५४, १६१, १७३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भावभट्ट, १७०
भीमपाल, २०
भूपत खाँ, १३२, १३६, १४०, २००, २३८
भोज, २०, ६५
भोलानाथ भट्ट, १६६, १७०

'म'

मक़बूल खाँ जहाँ, ४५
मकरन्द, १२८
मक्खन, १४४, २०३, २०७, २४३
मक्खू, ७८, २३६
मखदूमबख्श, २०६, २४६
मजदुद्दीन, ५६
मजनूं, ६३
मजनूं नानकशाही, १३६
मज्रः २४१
मतंग, १७६, १६७, १६८
मदनकिशोर, २०८
मदन खाँ ढारी, २०१, २३४
मदार खाँ, १४८
मदारी, २४६
मदारी खाँ, १८७
मधुभट्ट, ११५
मधुसूदन सरस्वती, ११५
मनरंग, १६४
मनोहर, २०८
मन्नी, २४१
मम्मी, १६१
मम्मी खाँ ढारी, १६१, २१८, २४६
मम्मू ढारी, १६१, २१८, २४६
मलकाजान (आगरा), १५६
मलिक अहमद, ५२
मलिक काफ़ूर २६, ३०, ३१, ३२, ५४, ६४
मलिक सुल्तान, ६४
मल्ही, ५७, १०८, २२६
मंसूर हल्लाज, १३
मसीत खाँ, २१६, २४८
महतावकुँवरिबाई, २५३
महबूब अली खाँ मीर, १४७, २५४
महबूब खाँ 'दरस', १६३
महमूद, ३७, ६८
महमूद क़व्वाल, १४३, २०२, २२०
महमूद खिलजी, ५५, ६५
महमूद ग़ज़नवी, १०, १३, १४, ६५, ६७
महमूद (ग़ज़ल-गायक), १०३, २२१
महमूद गवाँ, ५१
महमूद गुजराती, १०२
महमूद गुजराती (द्वितीय), ५६, १०७, २२७
महमूद (ग्वालियर), २२६
महमूद तुग़लक़, ६३
महमूद (द्वितीय, मालवा), ६६, २२८
महमूद फ़िरक़ीराक़, २२८
महमूद बींगड़ा, ५५, १०३
महमूद राजन, ५५
महमूदशाह, ५२, ६१
महमूदशाह बहमनी, ५१
महमूदशाह शर्क़ी, ६४
महमूद शेख, १५, १६
महेश (शंकर), ८१
माजुद्दीन शेख, १५, १६
माधवराव सिन्धिया, १६२
माधोसिंह जयपुर-नरेश, १४३
मानसिंह जयपुर-नरेश, १५३
मानसिंह तोमर, ६४, ६७, ६८, ६६, ७१, ७३, ७५, ७६, १०१,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१०३, १०६, १०७, १०८, ११०, ११४, ११५, ११६, १२४, १२८, १५०, १७७, १९९, २१५, २२६, २२९
मानसिंह कथक, २५०
मानिक वर्म्मा, १७१
मानी चकमक, २४१
मालती पाण्डे, १७१
मिनहाजुस्सिराज, २१
मियाँ जान खाँ, १४८
मियाँ लाल, २३१
मियाँ सुलेमान, १९२
मिसरी खाँ ढारी, १३२, २३९
मिसरीसिंह, १३२, २००
मीर अंजू, ७०, २२७
मीर अली सैयद, १८६
मीर आलम नवाब, २५३
मीर क़लन्दर, ७२
मीर खलील, ८०
मीर जान पैवन्दीजेवज़न, २२८
मीर मुहम्मद रंज, २४३
मीर दर्द ख्वाजा, २४२, २४३
मीर स्वालेह देहलवी, २३९
मीरा (गायिका), १११
मुआविया, ११
मुईनुद्दीन क़व्वाल, १४४
मुईनुद्दीन चिश्ती, १३, १४, १७, १८, २०, ७३, ७५, २०२, २०३, २२०
मुकर्जी डी० पी०, १६६
मुख़लिस, ७२, २११, २२८
मुख़्तार, ११
मुग़ल खाँ, २४६
मुजतमद खाँ, १२१
मुजाहिदशाह, ४८
मुत्तुस्वामी दीक्षित, १८२
मुनव्वर खाँ, १४५, २४५
मुन्नन खाँ सारंगीवादक, १६८
मुवश्शिर, ३२
मुबारक, ६३
मुबारक अली खाँ क़व्वालबच्चे, १४२, १४३, १४६, १४७, १५३, १५८
मुराद अली, २४५
मुराद अली खाँ, १४६, २५४
मुराद अली खाँ ढारी, २०१, २४६
मुराद अली खाँ (ध्रुवपद-गायक), २५४
मुराद अली खाँ सरोदवादक, १६८
मुराद खाँ (मेरठ), २४६
मुराद शाहज़ादा, ८५
मुर्शिद क़ुली खाँ, ८२, १३६, १३७
मुल्ला इसहाक़, २०१, २३१, २३४
मुल्ला सलामत, १२०
मुशर्रफ़ खाँ बीनकार, १४३
मुश्ताक़ हुसेन खाँ, १५२, १६२, १६४
मुसाहब अली खाँ, १४३
मुहम्मद, ३८, ७२
मुहम्मद (क़ुतुबुद्दीन खिलजी का पुत्र), ९४
मुहम्मद अकबर हुसेनी, ५०
मुहम्मद (शहीद शाहज़ादा), २२, २३, ९१, ९२, ९५, २२१, २२३, २५२
मुहम्मद अमीन, २३३
मुहम्मद अली, १४, २१४, २४९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुहम्मद अली खाँ, १६४
मुहम्मद अली खाँ कोठीवाल, १७२
मुहम्मद अली खाँ (बड़कू मियाँ), १६६
मुहम्मद अली खाँ, (सिकन्दराबाद), १५६
मुहम्मद अली वीनकार, २४४
मुहम्मद अली सारंगीवादक, १८७, २१५
मुहम्मद अली सूफ़ी, ५३
मुहम्मद असग़री ख्वाजा, १५
मुहम्मद आज़म चिश्ती, ५७, ७६
मुहम्मद आदिलशाह अदली, ६६, १११, १२८, १२६, २२८, २२६, २३०, २३१
मुहम्मद इमाम सैयद, ३१, ३७, २२१, २२४
मुहम्मद करम इमाम, १४५, १४६, १४६, २०१, २०३, २०४, २०५, २०६, २१०, २१४, २१५, २१७, २४३, २४५, २४७, २५१
मुहम्मद (क़व्वाल), २०२, २२१
मुहम्मद क़ासिम मिर्ज़ा, ८४
मुहम्मद किताब ख्वाँ, २४७
मुहम्मद क़ुली क़ुतुबशाह, २५२
मुहम्मद खाँ अलम, १५८
मुहम्मद खाँ (ग्वालियर), १४६
मुहम्मद खाँ ढारी, २०१, २३१
मुहम्मद खाँ क़व्वालबच्चे (बड़े), १४४, १४५, १४६, १४६, १५०, १५३, १५८, १७१, २०३, २०७, २४३, २४५, २४६, २४७
मुहम्मद खाँ (सहसवान), १६३
मुहम्मद (ग़ज़ल-गायक), २२४
मुहम्मद ग़ोरी, १०, १३, १५, १७, १८, ५३, ६५
मुहम्मद ग़ौस, ७१, ७२, ११३, ११६, १२०, १२३, १२४, १२५, १२६
मुम्मद ग़ौस अली, २५१
मुहम्मद ग़ौस शेख़, ६६
मुहम्मद जान, २२७
मुहम्मद जान (क़ानूनवादक), २११
मुहम्मद जान खाँ, १२६
मुहम्मद जुनैदी, २१
मुहम्मद जूना, ६३
मुहम्मद जोरावर अली खाँ, २५१
मुहम्मद तुग़लक़, २६, २६, ३७, ३८, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ५३, ६०
मुहम्मद दिलावर अली खाँ, २४७, २५१
मुहम्मद फ़ज़ल इमाम, २५१, २५२
मुहम्मद बाक़ी, २३७
मुहम्मद बिन क़ासिम, ६, १०, १६
मुहम्मद बख्तयार, ५६, ६१
मुहम्मद मासूम ख्वाजा, ८४, ८५
मुहम्मद (मुल्ला), २०६
मुहम्मद मूमिन, २३६
मुहम्मद मूसा ख्वाजा, १८, ३१, २१०, २२२, २२४
मुहम्मद रज़ा, २०४, २१६
मुहम्मदशाह गुजराती, ५६
मुहम्मदशाह गुजराती (द्वितीय), ५६
मुहम्मदशाह ज़रबख्श, ५५
मुहम्मदशाह बहमनी (प्रथम), ४७, ४८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मुहम्मदशाह बहमनी (द्वितीय), ४८, ५१
मुहम्मदशाह मियाँ, २४१
मुहम्मदशाह रंगीला, ८५, ८६, ८७, ८८, १०१, १३८, १३९, १४०, १४४, १५१, १८६, २००, २०१, २०३, २०६, २०७, २०८, २१०, २१३, २१४, २१५, २३६, २४२
मुहम्मद शेख, ७७
मुहम्मद सना चंगी, २१३, २२१
मुहम्मद सिद्दीक़, १४८
मुहम्मद (हज़रत), १०, १३, १६
मुहम्मद हुसैन, २१२
मुहम्मद हुसैन उस्ता, २३४
मुहम्मद हुसैन खाँ, १९४
मुहम्मद हुसैन खाँ ख्वाजा, २५३
मुहम्मद हुसैन खाँ (सहसवान), १५२
मुहिम अली बख्शी ख्वाजा, २२८
मुहीउद्दीन याह्या मदनी, ५७, ८४, ८५
मुहेरी हाफ़िज़, ७२
मेंडू खाँ, २४६
मेराज धौलपुरी, ११६, १२०, १२५, १२६, १२६
मेहदी बकावली हाफ़िज़, २२८
मेहदीसेन, १८६, १८९, २४२
मेहर अफ़रोज़, २७, २२१
मेहरबान मियाँ, १६१
मैरिस, १५७
मोघूबाई, १५४
मोतीबाई (बड़ी), १५६, १६१
मोती रबाबी, १६१
मोतीलाल भट्ट, १६६
मोमिन आरिफ़ुल्लाह, २०
मौज खाँ कलावन्त, १८७, १९९, २४५, २४६
मौजुद्दीन खाँ, १५६, २०४
मौदू खाँ (तबलावादक), १९१
मौलाबख्श (तलवण्डी), १६१
मौलाबख्श (साँकड़ा), १४२

'य'

यज़ीद, ११
यदुनाथ सरकार, ८४
यदुरूप नारायण, ११५
यार मुहम्मद, २२८
यारी, २४१
युवरंग, ८७
यूसुफ़ अली खाँ रामपुर-नवाब, १८९, १९०, १९१, २४४, २४९
यूसुफ़ आदिलशाह, ५२
यूसुफ़ उस्ता, २१२, २३३
यूसुफ़ खाँ, २४३, २४५, २४६

'र'

रघुनाथसिंह राजा, १८८, २०९, २४९, २५२
रंग खाँ, ५७, ७९, १०८, १३२, १९९, २२९, २३८
रंगसेन, १८८
रजब, ४५
रजब अली क़व्वाल, २४५
रजब अली खाँ, १४६, १९२
रजब अली खाँ बीनकार, १४२
रज़ा अली खाँ रामपुर-नवाब, १४४, १६३, १६४, १६७
रज़ा बियाबान, ६०
रज़ा हुसेन खाँ, १६५
रज़िया, २२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रज़ी, २४२
रणमल्ल, ४५
रतनसिंह राजा, १८६
रफ़ीउद्दीन हारून, १८, ३७, ४०
रफ़ीक़शाह, २४५
रमज़ान खाँ रंगीला, १५६
रमज़ानी नक़्क़ाल, २५०
रमणभट्ट, ११५
रविशंकर, १६५, १६६
रसबैन खाँ, ७६, ८३, १३१, १३४, १३६, २००, २३८
रहमत खाँ, १४६, १५३, १६०
रहमतुल्ला (गायक), २३३
रहमतुल्लाह शाह, २३६
रहमान क़ुली, २२८
रहमानबाई, २४२
रहीम, २०८
रहीम खाँ, १६६
रहीम खाँ, २०३
रहीम खाँ क़व्वालबच्चे, २०८
रहीम खाँ, २१४, २४१, २४५
रहीमनबाई, २४७
रहीमनबाई (चरखारी), १४६
रहीमनबाई, २४६
रहीमसेन, १३३, १४०, १६६, २००, २०८, २१६, २३६, २४८
राजकुँवरिबाई, २५३
राजा रामचन्द्र रीवाँ-नरेश, ११६, १२०, १२२, १२३, १२४, १२६, १३०, २३०
रामचन्द्र यादवनरेश, २२५
रामजनी, २४१
रामदास बाबा (कलावन्त), ६६, १२३, १२८, १६६, २१०, २२६, २३०, २३१
रामनाथ शास्त्री गोस्वामी, ११४
रामनिरंजन, १२०
रामब्रह्म, १८१
रामशरणदास लाला, १७२
रामसहाय कथक, १८८, २५०
रामसहाय बाबू, १८८; २०६, २४७, २४८; २५१
रामसिंह कुँवर, ८३
रामसिंह जयपुर-नरेश, १४२, १४३, १४६, १५८
रामनुजदास बैरागी, २४६, २४७
रामामात्य, ७४, ७५, १०६, १८१, १८४
राय कृष्ण, ११५, १५२
रियाजुद्दीन खाँ (ध्रुवपद-गायक), १५८
रुक्नुद्दीन (सुहरवर्दी), २१, ३८, ४१, ४३
रुक्नुद्दीन शेख़, २८, ३२
रुक्नुद्दौला बहादुर, २५३
रूपमती, ६६, २३१
रोरा क़व्वाल, २०३, २३६
रौशन अली मीर, १८८, २४०
रौशन खाँ डागुर, १६२
रौशन ज़मीर, ८३

'ल'

लक्ष्मण, ६७
लक्ष्मीनारायण, ६६
लखमीसेन, १०६
लज़्ज़तबख्श, १८८, २०५, २४८
लताफ़त खाँ, १६०
लतीफ़, २२४

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लतीफ़ खाँ, ८७, १३९, २३९
लतीफ़न, २४७
लतीफ़ मौलाना, २२१
लल्लू कथक, २५०
लालकुँवरि, ८६, २३९
लाल खाँ, ७९, ११०, १२६, १३१, १३२, १३४, १३५, १३६, १९९, २००, २३४, २३७
लाल खाँ (द्वितीय), १४०
लाल मियाँ, १२३, १९९
लाला, २३४
लीलावती शेरगाँवकर, १५४
लैला, ९३
लोचन, ६१, ६२
लोहंग, ६८, १०३, २२६

'व'

वजीउद्दीन यूसुफ़, ६५
वज़ीर खाँ (बाँदा), २४५
वज़ीर खाँ बीनकार, १५७, १६३, १६७, १६८, १६९, १७०, १७२, १९०, १९२, १९५, १९६, १९७, २१४, २४३, २४६
वज़ीरन (ध्रुवपद-गायिका), २४८
वज़ीर मिर्ज़ा (कदरपिया), २०४, २१०
वरदप्पा नायक, १७८
वली मुहम्मद खाँ, १९२
वल्लभदास दामुल, १९४
वसन्ती, १९९, २३८
वसालत अली खाँ, २५३
वाजपेयी, २१६, २१७, २४८
वाजिद अली शाह, ६४, ६६, १८६, १८९, २०१, २०४, २१०, २१२, २१६, २१७, २१८, २४७, २५०, २५१
वासुदेव मिश्र, ११५
वाहिद खाँ, २५३
वाहिद मिर्ज़ा (कश्मीरी), २५०
विक्रमदेव, ६७
विक्रमाजीत, ७१, १०१, १०३, १०८, १०९, १२५, १२८, १२९, २२६
विचित्र खाँ, १२३, १९९, २३१
विजयराघवराव, १८४, १८५
विजया, ११७
विट्ठल, ६४, ६५, १०३
विद्यापति, ६८
विमलकान्त रायचौधरी, १६६
विश्वनाथसिंह रीवाँ-नरेश, १४५, १६८, १८६
विष्णु, ८१
विष्णु दिगम्बर पलुस्कर, १५०, १७१, १७२, १७३ १७४, १७५, १९६
विष्णुनाथ, ११५
विष्णु नारायण भातखण्डे, १९४
विलायत अली ढारी, २१८, २५०
विलायत अली हाजी, २०१
विलायत हुसेन खाँ (आगरा), १०६, १६०, १६१
विलास खाँ, ७८, ७९, ८२, ११०, १२३, १२६, १३१, १३४, २००, २३४, २३८
वीरसिंहदेव, ६७
वृन्द, ८३, २०८
वेंकटमखी, ७६, ९८, १००, १३४, १८१, १८२, १९७, २०८, २१८, २१९
व्यास, ८१, २०८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

श

शकर, १४४, २०३, २०७, २४३, २४५
शकर खाँ, १५९
शंकरराव पण्डित, १४९
शब्बू खाँ, १४८
शम्भाजी, ८६
शम्सुद्दीन इल्तुतमिश, १७, १९, २०, २१, २२, ६५, ८६, १४४, २२०
शम्सुद्दीन बहमनी, ४८
शरणविहारी गोस्वामी डॉक्टर, ११४, ११५, ११७
शरफ़ोबाई, २४७
शरभोजी, १८१
शरीफ़ मौलाना, २३६
शर्फुद्दीन क़ाज़ी, १५, ४६
शर्फ़ुद्दीन याह्या, ७१
शहाबुद्दीन उमर, ३०
शहाबुद्दीन जाम, ३६
शहाबुद्दीन मलिक-उल्-उलेमा, ६३
शहाबुद्दीन सुहरवर्दी, १४, १८, ५९
शादी खाँ, २८, २९, ३०, ३२
शादी खाँ (खयाल-गायक), १८७, २०५, २०६, २४४, २४६, २४७, २४८
शारदातनय, २०
शार्ङ्गदेव, १९, २०, ७४, १०९, १३४, १७६, १९७, १९८, २१५, २१९, २२०
शालिग्राम बुवा, १५४
शाह आलम, ८८, ९९, १६९, १८१, २१६, २१७, २१९, २४२
शाह कमाल, १३९
शाह क़ुली, ७०, २११, २२७
शाह ग़ुलाम मुहम्मद, १३९
शाहजहाँ, ५७, ७९, ८०, ८२, ८३, ८५, १०३, १०८, ११०, १२०, १२१, १२६, १२८, १३१, १३३, १३४, १३६, १३७, २१५, २२७, २३७, २३८
शाहनवाज़ खाँ, ८०
शाह मीरानजी, १७८
शाह मुहम्मद उस्ता, २३२
शाह मुहम्मद शेख़, ५६
शाह रफ़ीक़, १९०
शाह रहमतुल्लाह, १३९
शिकोह जंग नवाब, २५२
शिरोमणि, २०८
शिवदानसिंह, १४६
शिवाजी, १८३
शिहाब खाँ, १२३, १९९, २००, २१४, २३१
शीरीं, ९३
शुजा, ८०, १३२, २३७
शुजाअत खाँ, ६६
शुजाअत खाँ सूर, २३१
शुजाउद्दौला, २००, २०३
शेख़ अहमद, ५३
शेख़ अहमद इमाम, ७७, ७८
शेख़ कमाल, २३९
शेख़ बन्दानवाज़ गेसूदराज़, १४
शेर खाँ, १५८
शेरशाह, ६१, ६६, १७७
शैख़ी नाई, ७०, ७६, २१०, २११, २१२, २१४, २२७
शोरी मियाँ; २०३
शौक़ी (आनन्द खाँ), ७८, १२६,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२३७
श्यामरंग, १५८
श्यामलाल बाबू, १५६
श्रीकण्ठ, ७६, १३८
श्रीकृष्णनारायण रातनजनकर, १५७, १६०, १७५, १७६, १७७, १६५
श्रीनिवास, १७८
श्रीभट्ट, ११५

'स'

सम्रादत ग्रली खाँ (छम्मन साहब), १५५, १६२, २४७
सज्जनसिंह महाराणा, १५६
सज्जाद हुसेन, १५५
सदारंग (नेमत खाँ), ७६, १४१, १५१, १५५, १८१, १८६, २००, २४१, २४२
सद्दू खाँ, १५७
सफ़दर जंग, १८६
सफ़दर हुसेन, १५६
सफ़ीउद्दीन शाहू, ६०
सफ़ी साहब ख़ादिम, २४८
सब्ज़ः, २४१
सयाजीराव गायकवाड़, १५७
सरमद, ८४, ८५
सरयू कालेकर, १७१
सरवर, ६३
सरशार, २०६
सरसरंग, १५८
सरसरूप, २४१
सरस्वती, ७५, ७६, ८२, १३०, १४१
सरस्वती (तानसेन की कल्पित पुत्री), १३२
सरस्वतीबाई (पुरन्दरदास की पत्नी), १७८
सरोद खाँ, १२३, १६६, २३१
सलमान पारसी, १२
सलारी, २१८, २४६
सलीम चिश्ती शेख़, ७३, ७६, ७७, १२६, १२६
सलीम (जहाँगीर), १२६
सवाद खाँ, २०१, २०३, २०७, २३८, २४१
सहगल के० एल०, १६०
सहचरिशरण, ११४
साक़ी दराज़, २८८
साँगा, ६६
साद, २२०
सादिक़ ग्रली, २१५
सादिक़ ग्रली खाँ, १४३, १४४, १६२, २०४, २१०
सादिक़ ग्रली खाँ राहतुद्दौला, २४४
सादिक़ ग्रली खाँ (लखनऊ), १५
सादिक ग्रली खाँ(सितारवादक), १६४
सादुद्दीन मुहम्मद, ६०
सादुल्ला खाँ नवाब, १८६, २१७, २४२, २५२,
सादुल्लाह लाहौरी, २३७
साबिर ग्रली, २४६
सामन्त, २०८
सालारजंग खाँ, २५१
सालिम खाँ डागुर, २३८
साहूजी, ८६
सिंहल, १६, २०
सिंहभूपाल, २०
सिकन्दर, ६३

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सिकन्दर लोदी, ६४,६८, १०१, १०२, १०३, १०८, १२५, १२८, २२५, २२६
सिकन्दरशाह गुजराती, ५६
सिपहरी मौलाना, २२८
सिराज क़ाज़ी, ४६, २२५
सिराज शेख़, ५०, ५३,
सिराजुद्दीन अली, १०
सीदी मौला, २६,२७
सुखबदन, १८७
सुखीसेन कलावन्त, १९९,२००,२१४ २३८
सुजान खाँ नक़्क़ारावादक, १८७, २४९
सुजान खाँ हाजी, १५८,२०९,२५४
सुदर्शनसिंह 'चक्र', ११८
सुधीनसेन, १३१,२३७
सुन्दरघन, २३७
सुन्दरदास, २०८
सुन्दरबाई, २४७
सुन्दरलाल, ८४
सुबहान खाँ, १२३,१९९,२३०,२३१
सुबुक्तगीन, ९, १०
सुरज्ञान खाँ, १२३, २३०,२३१,२३८
सुल्तान अहमद आख़्ता, २२८
सुल्तान अली खाँ नवाब, २४७
सुल्ताना, २४६
सुलेमान, २४६
सुलोचना यजुर्वेदी, १६४,१७१
सुहेल बिन अब्दुल्लाह, १६
सूरत खाँ गायक, २३४
सूरजमल, १०८
सूरतसेन, १२६,१३१,१३२,१३३
सूरदास कवि, १०१
सूरदास (गायक), १८०, १९९, २१०, २३१
सूरदास मदनमोहन, २०८
सेढू बाई, १८८,२४७,२४८
सैफ़ुद्दीन, २२२
सैफ़ुद्दीन ग़ोरी, ४७,४८
सैफ़ुद्दीन महमूद, ८९,९०
सैयद खाँ नोहार, २३८
सैयद मीर अली, २२७,२४७,२५१
सैयद मुहम्मद, ४८,४९
सैयद मुहम्मद सग़ारा, १९
सैयद हसन शेख़, ५३
सैयद हुसेन किरमानी, ४६
सोण्ठी वेंकटरमणैया, १८२
सोन वाजपेयी, २३४
सोना, २०३,२४३, २४७
सोमनाथ, ५३,९९,१३३
सोमराजदेव, ३०
सोहिलसेन, १३१,२३७,
स्वालेह रब्बानी, २०१, २३८

'ह'

हज़्रत बिन यूसुफ़, ११
हड्डू, २०३,२४१
हद्दू खाँ, १४५,१४६,१४९,१५०, १५१,१५२,१५३, १६०,१६३, १७१,२४६,२४७
हनुमान्, ७३
हफ़ज़ा खाँ (गुडयानी), १५२
हमजान, ७८
हमीदुद्दीन नागौरी, १४,१८,१४४, २०२,२२०
हमीदुद्दीन मौलाना, २२१,२२४
हमीरसेन, १२६,१३१,१३३,२३७
हम्ज़ा, २३६

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हम्दूनकसारः शेख़, १६
हयात सरसनैन, ८३, २३७
हरदेव (अहमद अयाज़), २६,२८,३१,
३३, ३४, ३७,३८, ३९, ४०, ४१,
४४,४६,४७,९५
हरिदास स्वामी, ६९, १०२, १०९,
११२,११३.११४, ११५, ११६,
११७, ११९,१२०, १२२, १८०,
२१४, २२९
हरिमती, ११७
हरिहर (द्वितीय), ४९
हश्मतजंग नवाब, २१६,२१७,२४९
हश्मत जान, १९१
हसन, ५१
हसन अली संजरी, १५,१८,२३,२९,
३१,४६,
हसन खाँ, २१४,२४९
हसन खाँ अफ़ग़ान, २३४
हसन (अम्बेठा), १४३
हसन खाँ ढारी सारंगीवादक, २०१,
२१५,२४८
हसन खाँ नौहार, २३८
हसन खाँ रबाबवादक, २४२
हसन निज़ामी ख्वाजा, १३९
हसन बख्श, २१५,२४९
हसन मुहम्मद ख्वाजा, ५६
हसन मुहम्मद चिश्ती, ५५, ५६, ५७,
७९
हसन रज़ा २४३,
हसन (शाहज़ादा), १४, ४६
हस्सू खाँ, १४५,१४९,१५०,१७१,२४६
हाफ़िज़ अली खाँ, १६७,१६८,१६९
हाफ़िज़ कवि, ४८
हाफ़िज़ हाजरा, २३६
हाफ़िज़ हुसेन सुल्तान, २३३
हामिद अली खाँ रामपुर-नवाब,१५६,
१५७, १६७, १७२, १९४, १९६,
२०९,२१४,२१५,२१७
हामिदुद्दीन शेख़, १५, ५३
हारिस बिन असद, १६
हारूँ रशीद ख़लीफ़ा, ११
हींगा, २४२
हीराबाई (जैनाबादी.बेगम), ८०,
८१,८२
हीराबाई, २४७
हुकूमत जंग, १८८
हुमायूँ, ५१,६६,७२,७३,७७,१०१,
१०२,१०७,१२४,१२८,१७७,
२१३,२२६,२२७,२३३
हुमायूँ बहमनी, ५१
हुशंगशाह, ५०,५५, ६५, ६७
हुसेन, ११
हुसेन अफ़ज़ाबाई, २५३
हुसेन अली खाँ नवाब, २४७, २५१
हुसेन ऊदी, ७०,२१२,२२७
हुसेन खाँ ढोलकवादक, २४२
हुसेन खाँ, २१३,२५४
हुसेन खाँ सरोदवादक, १६८
हुसेन निज़ामशाह, १८५,२१९,२५
हुसेनशाह शर्क़ी, ६०,६४,६७,६८,८७,
१०३,१७९,२०३,२०७,२१०,
२१५,२२६,२३५,२३७,२५०
हुसेनशाह सैयद, ६०,६१
हुसेनी, ५७, ८६, १०८, ११०, २२७,
२२९, २४८
हुसेनीबाई,१८८, २०५,२४७
हुस्सामुद्दीन मुलतानी, ५३
हेमूं, १२८,२२९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हैदर अली, १८६,२५२
हैदर अली खाँ नवाब, १५७,१८९, १६०,१६१,१६२,२०४,२४४, २४५
हैदर खाँ, २१७,२४४,२४६
हैदर खाँ (अल्लादिया खाँ के भाई), १५३
हैदर खाँ (दिल्ली), १४८
हैदर खाँ (बैराम खाँ के भाई), १५६
हैदर खाँ (सहसवान), १६३
हैदरबख्श (सारंगीवादक), १६३,१६०
हैदर मिर्ज़ा, २५४
हैदरी खाँ, १५०
होनावर कृष्णभट्ट, १७५
होलराय, २०८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पूरी पुस्तक में बृहस्पति यही कहना चाहते हैं कि 13 शताब्दि से 18 वीं शताब्दि तक भारत पर सूफी-संगीत छाया रहा और खुसरो ने ईरानी मुकाम पद्धति इसी माध्यम से सर्वत्र प्रतिष्ठित कर दी (यही इन्द्रप्रस्थ मत कहलाया)। गुलामवंश, खिलजी वंश, तुगलकवंश, (लगभग 13-14 वी शताब्दि 200 वर्ष) के सभी शासक किसी न किसी सूफी सन्त से प्रभावित रहे व उन्हें संरक्षण देते रहे।

अब प्रश्न यह है कि क्या सचमुच संगीत की जो अबाध धारा भारतवर्ष में चली आरही थी इस सूफी संगीत के कारण छिन्न भिन्न हो गई। क्या घरों-घरों में कव्वालियां गाई जाने लगीं और उन्होंने उस संगीत का स्थान ले लिया।
क्या ईरानी संगीत इतना प्रभावशाली था कि उसने हमारे संगीत को आक्रांत / धराशायी बना दिया। जो संगीत अपने जन्मस्थान में भी अपना विकास नहीं कर सका वह एक सशक्त विधा पर सचमुच में हावी हो सकता था। यदि सूफियों के पास लोग जाते भी थे तो मुरादें पूरी कराने के लिये उनके दरबार में बैठकर संगीत सीखने नहीं।
हमारे देश में लोग साधु-सन्तों-फकीरों के पास जाते ही रहते हैं परन्तु केवल अपने कष्टों का हल ढूंढने। इसके बावजूद भी मन्दिरों-मस्जिदों में ईश्वर के ही सामने (बिना किसी God-men की मध्यस्थता के) आत्मनिवेदन करने वालों की तुलना में इन सन्त-पास्तों की संख्या नगण्य है। मुकाम पद्धति को आज के संगीत का मूल बताने की आग्रह में लेखक ने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक
जो अपीप
भ्रमित का

सच
इतने सशक्त
जो भी थोड़े
उस सबको
जमाने की
धुनें जादीन्य
जल बिन्दु के

राजकमल से प्रक
आचार्य बृहस्पति

मुसलमान
और
भारतीय संगी

भारतीय संगीत के
की यह पुस्तक सां
एक मौलिक देन है
बातें कही गई हैं,
अत्यन्त अनर्गल
संगीत मुसलमानों
मुस्लिम प्रभाव प्र
के संगीत पर
आचार्य बृहस्पति
है और उन्होंने नि
के बाद इस पुस्त
का प्रतिपादन कि
आचार्य जी
फल होने के का
की दृष्टि से अ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

खुसरो, तानसेन तथा अन्य कलाकार

7·3

SCANNED

आम्नाय-ग्रन्थालय,
भारतनिधि, करौंदी
वाराणसी-5